जैनेन्द्र के उपन्यासो का मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन

जैनेन्द्र के उपन्यासो का मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन

[राजस्थान-विश्वविद्यालय की 'पी-एच०डी०' उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा



पूर्वोदय प्रकाशन
नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक पूर्वोदय प्रकाशन
(स्वत्वाधिकार)
पूर्वोदय प्रा० लि०
रजिस्टर्ड कार्यालय
७/८ दरियागंज नई दिल्ली ११०००२
मूल्य पैंतालीस रुपये
प्रथम संस्करण दिसम्बर १९७५

मुद्रक युवा मुद्रण ७ यू वजीरपुर इण्डस्ट्रियल काम्प्लेक्स
दिल्ली ११००५२

JAINENDRA KE UPANAYASO KA MANOVIGYANPARAK
SHAILEETATTVIK ADHYAYAN
(The Psycho Stylistic Study of Jainendra's Novels)
by Dr LUXMI KANT SHARMA

वात्सल्यमयी जननी की

पुण्य-स्मृति में,

जो इसे देखकर बहुत सिहाती !

—कान्त

जहा तक मेरा सम्बन्ध है मैं अपने लिखने में स्वैराचार के दोष से मुक्त नही हू। जो शब्द आया, मैंने स्वीकार किया है और वाक्य जैसा बना बनने दिया है। प्रेमचन्दजी ने एक बार मुझे कहा था 'जैनेन्द्र हिन्दी में तो चलो तुम चाहे जो लिख दो। साझ' लिखो कि 'समझ' लिख दो पर यह मनमानी तुम्हारी उर्दू में नही चल सकती।' मैं उर्दू की बात नही जानता। लेकिन वह भाषा दरिद्र है जो जिन्दगी का साथ देने के बजाय उस पर सवारी कसती है। जो हो, अपने अज्ञान को, अपने से उतारकर मैं अपने से अलग नही रख सका हू।'

—जैनेन्द्र

अनुक्रम

प्राक्कथन

किसी भी जीवित साहित्यकार पर शोध-काय करना खतरे से खाली नही है, क्योकि उसकी साहित्य रचना का क्रम आगे भी चलते रहने की सभावना है। ऐसी स्थिति म हम अपने निर्णयो को अन्तिम रूप नही दे सकते। पहले अनुसधान के क्षेत्र मे यह मान्यता थी कि तीन सौ वष पुराने साहित्यकार पर ही शोधकाय हो सकता है। इस मान्यता को वतमान युग ने झुठला दिया है और अब ऐसे सभी साहित्यकारो पर शोध-काय सम्पन्न होने लगा है, जो परिपक्वता एव विकास की चरम सीमा को स्पश कर चुके हैं। चूकि जनेन्द्र अब इस स्थिति मे आ गये हैं इसलिए उन पर शोध-काय करना मुझे सवतोभावेन समीचीन ही प्रतीत हुआ। यो भी जनेन्द्र-साहित्य पर लगभग एक दजन से ऊपर पुस्तकें निकल चुकी हैं। उनके उपन्यासो की विस्तार से अनेक प्रबन्धो म चर्चा हुई है। अब आवश्यकता इस बात की थी कि उनके उपन्यासो पर एक ऐसी दृष्टि स अनुसधान किया जाये जो उनका सर्वाधिक सबल अश समझा जाता रहा है। मनोविज्ञानपरक शलीतात्विक अध्ययन के सन्दभ मे मैंने जनेन्द्र के उपन्यासो पर एक विशेष दृष्टिकोण से शोध-काय सम्पन्न किया है। यही इस अनुसन्धान की इयत्ता है और यही इसका औचित्य।

जनेन्द्र के उपन्यासो का मनोविज्ञानपरक शलीतात्विक अध्ययन' नामक यह प्रबध मैंने डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के निरीक्षण मे रहकर प्रस्तुत किया है। निर्वैयक्तिक विषय प्रतिपादन तथा तथ्यपरक अनुसन्धान के जो प्रतिमान उन्होंने मेरे सम्मुख रखे थे उनका यथाशक्य परिपालन करने की मैंने चेष्टा की है। विषय की रूपरेखा और पल्लवन की प्रक्रिया के लिए मुझे डा० सत्येन्द्र का माग निर्देशन प्राप्त हुआ है, जिनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए मुझे कोई शब्द सक्षम प्रतीत नही हो रहा। प्रबध म मुझे दो घोडो पर सवारी करनी पडी है 'मनोविज्ञान और शली-तत्त्व। दो घोडो की सवारी का परिणाम

मार्ग जानने हो है गुण या गुण यहाँ है कि मैं बिना पत्र गाय अपनी अन्तिम मंजिल तक पहुँच पाया हूँ यद्यपि पटक खाने की प्रतिक्षण सम्भावना थी। मेरा शोध विषय एक नयी दिशा का उन्मोचन करता है और वह यह है कि नारी तत्त्व के माध्यम से हम किसी रचना के मानस-लोक में प्रवेश करें और वहाँ से नये-नये तथ्यों का उद्घाटन करें। यह प्रणाली हिन्दी में तो नया ही है विश्व साहित्य में भी अभी इस दिशा में अधिक काम नहीं हुआ है। इस दृष्टि से केवल जैनेन्द्र उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अन्य विभिन्न भाषाओं में भी कुछ छुटपुट प्रयास हुए हैं पर उनका प्रामाणिक आकलन और मूल्यांकन अभी सुलभ नहीं है।

मेरे शोध-कार्य में नारी-तत्त्व ने मेरा बड़ा काम किया है इसलिए विभिन्न उपन्यासों से मुझे व्यापक रूप में उद्धरण देने पड़े हैं और तब उनके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले गये हैं। आवश्यकतानुसार इन उद्धरणों का निर्वचन भी करना पड़ा है। यों जैनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि हमारे सामने एक नयी प्रभा से आलोकित हो उठी है। शोध-कार्य की वस्तुनिष्ठता एवं तथ्यपरकता में भी सृजनात्मक आलोचना के लिए कुछ-न-कुछ गुंजाइश रहती है जहाँ भी ऐसा अवसर मिला है मैंने उसका भरपूर उपयोग किया है। मेरा विश्वास है कि विशुद्ध शोध कार्य और विशुद्ध आलोचना की सीमा रेखाएँ एक-दूसरे से मिलती हैं और जब मैं इस कथन की पुष्टि डा० नगेन्द्र के एक निबन्ध में पाता हूँ तो मेरी प्रसन्नता एक गहरी आत्मिक एवं बौद्धिक परितृप्ति में परिणत हो जाती है आलोचनात्मक प्रतिभा के बिना मैं उत्कृष्ट अनुसंधान की कल्पना नहीं कर सकता। सत्य शोध के तीन सस्थान हैं—तथ्य-संग्रह विचार और प्रतीति। उपलब्ध तथ्य का विचार में परिणत किये बिना ज्ञान की सिद्धि सम्भव नहीं है और विचार को प्रतीति में परिणत किये बिना सत्य की सिद्धि सम्भव नहीं। तथ्य को विचार रूप देने के लिए चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है और विचार का प्रतीति में परिणत करने के लिए दर्शन अनिवार्य है—और ये दोनों ही साहित्यालोचन के अन्तरंग तत्त्व हैं। अतः उत्कृष्ट साहित्यिक आलोचना साहित्यिक अनुसंधान का उत्कृष्ट रूप है। (आस्था के चरण डा० नगेन्द्र पृ० ६३) इस तथ्य का मैंने यथामति निर्वाह करने का भरसक प्रयत्न किया है कहाँ तक सफल हुआ हूँ विज्ञजन ही बता सकेंगे।

२

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रस्तावना भाग में सर्वप्रथम मनोविज्ञानपरक नारीतात्त्विक

अध्ययन के अभिप्राय को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है और यह बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि उपन्यासालोचन में उसका क्या महत्त्व है। कोई भी लेखक जो कुछ लिखता है उसमें उसका स्वभाव संस्कार एवं रुचि प्ररुचि प्रतिबिम्बित होते हैं। उसकी अभिव्यंजना अन्य लेखकों की तुलना में कुछ विशिष्ट एवं व्यक्तिपरक होती है। जब हम यह कहते हैं कि सामान्य अभि व्यक्ति से भिन्न जो विशिष्ट अभिव्यक्ति होती है वही शैली-तत्त्व का मूला धार है, तो इसमें यही अभिप्राय है कि हम किसी लेखक की अभिव्यंजना के उन सूक्ष्म तत्त्वों का संधान करें, जो कि उसके शैली-तत्त्व को प्रभावित एवं नियमित करते हैं।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन की संभावनाएं अपरिसीम हैं। एक प्रकार से यह भी कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के कृतित्व का यही सर्वाधिक सबल अंग है। जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासों में भी जबकि उनकी औपन्यासिक कला क्षीण होती गयी है उनका शैली-तत्त्व काफी मुखर रहा है, या दूसरे रूप में हम यह भी कह सकते हैं कि उनके इधर के उपन्यासों का यदि कुछ मूल्य अवशिष्ट रह गया है तो उनकी जैनेन्द्रीय शैली ही है जो कि दर्शन एवं मनोविज्ञान में रुचि रखनेवाले पाठक के लिए अब भी आमन्त्रणकारी है।

शैली-तत्त्व के अध्ययन का इतिहास आरम्भ हुआ था निबन्ध के संदर्भ में, पर अब हम उसका प्रत्येक विधा के संदर्भ में उपयोग कर रहे हैं बल्कि आज तो मनोविज्ञान प्रक्रिया के स्वरूप दर्शन में भी उसका उपयोग होने लगा है। किसी भी लेखक की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियां उसके लेखन में प्रतिबिम्बित हुए बिना नहीं रह सकतीं। उसकी अन्तस्थ विषय वस्तु तक पहुंचने के लिए शैली तत्त्व ही एक प्रामाणिक सोपान है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों का अध्ययन विभिन्न कोणों से प्रस्तुत किया गया है। किसी ने उनके उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन किया है तो किसी ने मनो विज्ञान के आधार पर उनके उपन्यासों का परीक्षण किया है किसी अन्य ने औपन्यासिक विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में उनकी देन का मूल्यांकन किया है। प्रस्तुत प्रबंध में उनके उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। यह दिशा एक प्रकार से अब तक अछूती थी। निश्चय ही इस अध्ययन की एक संकुचित परिधि है और इससे कृति कार के व्यापक रूप का चित्र हमारे सामने नहीं आ पाता फिर भी इस अध्ययन से एक ऐसा सूत्र हमारे हाथ लग जाता है जिससे हम जैनेन्द्र की प्रतिभा के सर्वोत्तम अंग का आकलन प्रस्तुत कर सके हैं।

प्रस्तावना के उपरान्त प्रथम अध्याय में जैनेन्द्र के उपन्यासों का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थूल रूप में उनके उपन्यासों का इतिवृत्त और प्रयोजन स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। सर्वेक्षण में 'तपोभूमि' के विवरण को हमने जानबूझकर नहीं लिया है क्योंकि स्वयं जैनेन्द्र इस अपना उपन्यास नहीं मानते। उनके कृतित्व का बहुत कम अंश इस रचना में आ पाया है। अन्तिम उपन्यास 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' का विवरण अपेक्षाकृत विस्तार से किया गया है क्योंकि इन कृतियों का विवेचन मूल्यांकन अभी अधिक नहीं हुआ है। सर्वेक्षण में एक स्थूल रूपरेखा ही प्रस्तुत की जा सकी है। अधिक प्रसरण विश्लेषण साभिप्राय छोड़ा गया है क्योंकि परवर्ती अध्यायों में विभिन्न दिशाओं एवं कोणों से जैनेन्द्र के उपन्यासों का नया जोखा प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

द्वितीय अध्याय में प्रत्येक उपन्यास के कथानक के ढांचे को अत्यन्त संक्षिप्त रूप से निबद्ध करने की चेष्टा की गई है और उनके मनोवैज्ञानिक हेतुओं को आकार चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है। विभिन्न उपन्यासों के कथाओं के मूल में जो लेखकीय मनोभूमि रही है उसे स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। इनके मूल कथांशों के पल्लवन की प्रक्रिया एवं मनोभूमियाँ स्पष्ट करने में लेखक के औपन्यासिक अन्तर्लोक में प्रविष्ट होने की चेष्टा की गई है। इन कथाओं की प्रतिपादन-शैली के जो भी विविध वर्ग हैं, उनकी मनोभूमियों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार उपन्यासों के मूल स्रोत तक पहुँचने का यह एक विनम्र प्रयास है।

तृतीय अध्याय में जैनेन्द्र के उपन्यासों की वर्णन शैली का प्रतिपादन है। आरम्भ में वर्णनात्मक स्थलों का वर्गीकरण एवं विवरण प्रस्तुत किया गया है और इसी सन्दर्भ में प्राकृतिक वर्णनों से सबंधित स्थलों पशु पक्षियों पर्वत, सरिता सागर इत्यादि का तथा प्रात सन्ध्या एवं रात्रि की शैलीपरक भंगिमाओं को स्पष्ट करने के साथ-ही साथ विभिन्न ऋतुओं के वर्णनक्रम को भी विवेचित किया गया है। प्रत्येक वर्ग की वर्णन शैली की जो भी मनोभूमियाँ रही हैं उनका संधान करने की चेष्टा की गई है और अंत में इन वर्णनों में प्रयुक्त भाषा शैलियों का प्रतिपादन है और तब प्रत्येक उपन्यास के संदर्भ में उनकी विकसित होती हुई भाषा शैली का स्वरूप निरूपण है।

चतुर्थ अध्याय में संभाषणों एवं संवादों का तात्विक विवेचन है उनका वर्गीकरण है और फिर प्रत्येक वर्ग की प्रतिपादन शैली एवं मनोभूमियों को शब्दबद्ध करने की चेष्टा है। यही क्रम संभाषणों के संदर्भ में भी दोहराया गया है अर्थात् संभाषणों का वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रतिपादन-शैली एवं

उनकी मनोभूमिया का स्पष्ट करते हुए कुछ निष्कष निकाले गय हैं। इस प्रकार जनेन्द्र के सवादो एव सभाषणो का एक विस्तृत शोधपरक चित्र हमारे सामन आ जाता है। विभिन्न उदाहरणो द्वारा तात्त्विक विवेचन को सचित्र (इलुस्ट्रेटिड) रूप देने की चेष्टा की गई है।

पचम अध्याय के अतगत शली एव मनोवेग की विभिन्न परिभाषाएँ देते हुए जनेन्द्र के उपन्यासा म उनके रूप तथा स्थिति का विवेचन किया गया है। शली-तत्त्व के विवचन म हमने भारतीय काव्य शास्त्र म इसका जो भी रूप उपलब्ध था उसकी सक्षिप्त रूपरेखा देते हुए पाश्चात्य विचारकों के व्यापक विश्लेषण की चर्चा की है और शली के सवभाव रूप की स्थापना करने का प्रयत्न भी किया है। परस' से लगाकर अनन्तर' तक शली के जो भी मनोवेगात्मक रूप मिलते हैं उनको न केवल यहा उद्धृत ही किया गया है बल्कि उनका विवेचन एव निवचन भी किया गया है।

षष्ठ अध्याय म शली के विचारगत रूप का विवेचन है। इसमे यह बताने की चेष्टा की गई है कि विचार—चाहे वे हल्के-फुल्के हो या भारी भरकम दाशनिक—किस रूप म शली को प्रभावित एव नियन्त्रित करते हैं। इसी तथ्य का अध्ययन सभी उपन्यासो को दृष्टि म रखकर यहा प्रस्तुत किया गया है। विचार-तत्त्व की दृष्टि म जनेन्द्र के उपन्यास पर्याप्त बोझिल हैं किन्तु उनकी स्थिति उस नारियल के समान है, जो ऊपर से कठोर होते हुए भी अपने गभ म मधुर एव प्रवाही रस को धारण किये रहता है। जैनेन्द्र की वैचारिक रेखाए बडी सम्पन्न हैं, उनम आत्म अनात्म स लगाकर विश्व की सभी ज्वलन्त समस्याओ पर किसी न किसी रूप म विचार है। उनके परवर्ती उपन्यासो मे सामयिक राजनीति की गतिविधिया एव वयक्तिक जीवन का सकट, नयी पीढी के सदभ म पर्याप्त रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। जो लखक आरम्भ मे नर-नारी के अतद्वन्द्वो म निमग्न रहा था और जिसने क्रान्तिकारियों के अद्भुत जीवन की झाकी दी थी, वही सवदलीय सरकार, कामराज-योजना गाधीवाद इत्यादि के विचार प्रपचो म भी उलझा है और उसने एक व्यापक मानवीय सदेश दने की चेष्टा की है।

सप्तम अध्याय म मन के तीन स्तरो—चेतन अवचेतन और अचेतन—को व्यापक सदभ म समीक्षा की गई है। विभिन्न मनोवज्ञानिक सम्प्रदायो का प्रामाणिक सदभ देते हुए यह बतलाने की चेष्टा की गई है कि चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया में जनेन्द्र के उपन्यासो की क्या स्थिति है और उनकी भाषा शैली का क्या स्वरूप है। स्वभावत यह पक्ष भी जनेन्द्र के उपन्यासो का अत्यन्त समृद्ध रूप प्रस्तुत करता है। उनके सभी उपन्यासो से व्यापक रूप म उद्धरण

गया हुए यह स्पष्ट किया है कि ध्यान और अवचेतन का मानदण्ड किस रूप में अनुदित होता है और फिर किस रूप में पुनिरा-मन्वित होता है। अध्याय के अन्त में स्थापित रूप में निष्कर्षों को सूत्रबद्ध किया गया है।

षष्ठम अध्याय में युग के आधार पर परामानसिक स्थिति का विवेचन किया गया है और सर्वाधिक मात्रा तथा समस्त्रिक चेतना के प्रभावों को जैनेन्द्र के विभिन्न उपन्यासों में ढूँढ़ने की चेष्टा की गई है। परामानसिक स्थिति में व्यक्ति नित्य नित नवीन परिस्थितियों का कारण बनता है और किन किन प्रभावों वाली राहों पर मोड़ता है इसका व्यापक चित्र परस मनोविज्ञान के आधार पर स्पष्ट रूप में स्थापित किया गया है। परामानसिक स्थिति के निरूपण में भी जैनेन्द्र की देन कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती।

सप्तम अध्याय में जैनेन्द्र के उपन्यासों में अभिव्यक्तियों के जो भी अभाव-भाव मिलते हैं उनका विस्तृत अनुसंधान किया गया है। उनके उपन्यासों के विस्तृत पट पर जो भी प्रतीक उभरे गये हैं उनके स्वरूप को प्रतीक-योजना के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में काव्य शास्त्र हमारा संबल रहा है। प्रतीक-योजना के निरूपण एवं विवेचन में मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों से हमें आधार प्राप्त हुआ है। यह अध्याय एक प्रकार से प्रबन्ध का सार रूप कहा जा सकता है। इसका आधार पूरे प्रबन्ध में लगभग एक निराई जगह घेरता है। तालिकाओं के द्वारा अभिव्यक्तियों के विभिन्न अभाव-भावों को चित्र रूप में समझने की चेष्टा है। अध्याय के अन्त में अभिव्यक्तियों की परिगणना करके उनकी संख्या का निर्धारण एवं आनुपातिक रूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त नवनीत रूप में कुछ मूल्यवान् निष्कर्ष निकाले गये हैं।

अन्तिम अध्याय में शोध-कार्य के व्यापक प्रसार में से तात्विक रत्नों एवं बिन्दुओं को अलग करने की चेष्टा की गई है एवं शोध की उपलब्धियों का रेखांकन करने की चेष्टा की गई है। इसके साथ-ही साथ जैनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि में जो भी न्यूनताएँ परिलक्षित हुई हैं उनका भी तटस्थ भाव से निरूपित किया गया है। एक प्रकार से यह अध्याय सम्पूर्ण प्रबन्ध का लघु रूप है। इसी के दर्पण में हम उन निष्कर्षों के भी दर्शन कर सकते हैं जो कि हमारी अनुसंधान-यात्रा के दौरान हमें उपलब्ध हुए थे। एक वाक्य में कहना हो तो यही कहेंगे कि जैनेन्द्र मनोविज्ञानपरक शैली-तत्व के हिन्दी में न केवल प्रवर्तक प्रणेता ही हैं बल्कि उनकी देन अप्रतिम एवं अनुकरणीय भी प्रमाणित हुई है। सभी महानताओं के साथ कुछ-न-कुछ न्यूनताएँ तो लगी ही रहती हैं। ऐसी स्थिति में जैनेन्द्र उनसे कैसे बच सकते थे? इतिहास का निर्णय एवं साहित्य

लगाकर आवार चित्रो के आवरण तक म उनकी प्रेरणामयी उपस्थिति मरा सम्बल रही है। एक शब्द ही इस विद्यार्थी की गरिमा को प्रकट कर सकता है, और वह है कि इस सम्पूर्ण शोध अभियान म वह मेरा गतिचालक (डाइनमो) रहा है। मन और तन दोनो से ही मैं प्रभावी हू—मेरा प्रभाव दीघसूत्रता के तटो का सहज सस्पर्श कर लेता है पर तन को यह गतिचालक नियमाण रखे रहा और मन को डा० उपाध्याय की निर्वैयक्तिक एव वैज्ञानिक शोध प्रणाली आकृष्ट किये रही। इन्ही गहन प्रभावो स घिरा हुआ मेरा मन और तन जो तथ्य उत्खनन कर पाया है, वह प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के परिधान म आपके सम्मुख हैं।

मेरे पारिवारिक जनो को इस शोध-काय के दौरान अनेक कठिनाइया एव असुविधाओ को सहना पडा है। व मेरे काय के कारण न तो कही जा सके और न मनोरजन के उपकरण ही जुटा सके। यदि मेरी जीवन-सगिनी पारिवारिक उत्तरदायित्वो से मुझे मुक्त न रखती तो यह काय असभवप्राय था। कुछ तो अपने साहित्यिक-सास्कृतिक अभियानो के कारण और कुछ अपनी सीमित सामर्थ्य के कारण मैं अपनी गृहस्थी पर कम ही ध्यान दे पाता हू पर मेरी सहधर्मिणी ने इन सम्पूर्ण दायित्वो का वहन बडी योग्यता एव कुशलता से सम्पन्न किया है। यदि इनके प्रति मैं कुछ आभार प्रकट करूँ तो यह उन्हे प्रीतिकर न होगा इस लिए मौन ही रहता हूँ। मेरे परिवार के प्रत्येक सदस्य ने इस काय म कुछ न-कुछ और किसी न किसी रूप म इस प्रकार हाथ बटाया है कि उसका स्मरण करते ही मैं स्वय गौरवान्वित होता हूँ। विशेष रूप मे सुपुत्री कुसुम की प्रतिभा एव कलात्मक चेतना मेरे लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है उसने लेखन और साज सज्जा दोनो मे बडा योग दिया है।

अन्त मे अपने मित्रो विशेषकर जयपुर के अपने आतिथेय श्री चम्पालाल रांका का किन शब्दो में आभार प्रकट करू जिनको मौके-बमौके मैं अपनी आकस्मिक उपस्थिति स चमत्कृत विस्मित करता रहा हू। श्रीमती रांका ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद कभी मुझे यह महसूस नही होने दिया कि मैं बाहर का कोई व्यक्ति हू, उनके परिवार की अतरग सदस्यता का फल मुझे समय-समय पर मिलता रहा है। बधुवर मुकुल ने मुझे सदव इस काय के लिए प्रोत्साहित किया है। उन्हे जब मैंने फोन पर सूचित किया कि अब मेरा शोध प्रबन्ध समाप्ति के निकट है तो वे बड उल्लसित हुए और कहने लगे डा० सूयकात को तो हम खो बठे अब डा० लक्ष्मीकात हमारे बीच हैं (या होग) यह बडी प्रसन्नता की बात है। मित्रवर श्री मूलचन्द सठिया का यह निर्णायक वाक्य मेरे लिए बडा प्राणप्रद सिद्ध हुआ कान्तजी पूर्ण तो

ब्रह्म ही होता है, आप पूर्णता के चक्कर में पड़े बिना अपना काम पूरा कर डालिये। अन्तरंग मित्र श्री गोविन्द श्रीमाली ने प्रबन्ध को देखकर बड़ा सन्तोष प्रकट किया और मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। मेरे इन विद्वान् मित्र का सन्तोष बड़ा महँगा है, इसलिए मैं इसके मूल्य को किसी भी प्रकार कम नहीं आँक सकता।

स्वभावतः पुस्तकाधिकारी पुस्तक-दान में कृपण होते हैं (सामाजिक सन्तुलन के लिए यह आवश्यक भी है) परन्तु श्री जयदेव शर्मा ने (दयानन्द कालेज के पुस्तकाध्यक्ष) इस सम्बन्ध में जो औदार्यपूर्ण रुख अपनाया, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। सर्वश्री मम्बादत्त पन्त, नगेन्द्रकुमार, रामजीलाल शमन्द्र दशबन्धु कठास्थले जगदीश कु० मुन्नि श्रीवास्तव आदि अपने एम० ए० के प्रिय विद्यार्थियों से समय-समय पर जो सहायता मिली है उसके लिए मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना ही कर सकता हूँ। श्री रतनलाल बंसल ने टंकण-कार्य में जो तत्परता दिखाई है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अपने अन्तरंग सहयोगी प्रो० विजयकुमार आर्य प्रो० राम जसवाल एवं प्रो० ओमप्रकाश अग्रवाल का प्रबन्ध की साज-सज्जा के लिए और प्रो० जय प्रकाश गुप्त का कुछ व्यावहारिक सुझावों के लिए मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री माधवप्रसाद शर्मा और वाणिज्य संकाय के डा० के० एन० गुप्ता से समय-समय पर जो प्रोत्साहन मिला है उसके लिए मैं उनका अतीव कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त भी अनेक मित्रों सहकर्मियों एवं विद्यार्थियों से मुझे जो मौन सद्भावना मिली है उससे मेरी क्लान्ति का परिहार हुआ है और मैं उत्साहपूर्वक अपने पथ पर आगे बढ़ सका हूँ।

सबसे बाद में (किन्तु यह न समझा जाय कि इसका किसी भी प्रकार कम महत्त्व है) मैं आदरणीय जैनेन्द्रजी का पुण्य स्मरण करता हूँ जिनकी कट्टो, सुनीता मृणाल, कल्याणी सुखदा, भुवनमोहनी अनिता चन्द्री इला, नीलिमा भ्रमरा आदि के साथ मैं हँसा-खेला हूँ और जिनके सत्य, विहारी हरिप्रसन्न श्रीकान्त प्रमोद डा० असरानी कान्त लाल, हरीश, जितेन नरेश, कुमार जयवर्द्धन आचार्य सहाय प्रसाद ठाकुर, वीरेस्सर आदित्य प्रकाश आदि अनेकश अजीब पात्रों के साथ मैंने चेतन अवचेतन मनोवेगगत और विचारगत यहाँ तक कि परामानसिक स्थितियों के अनेकश आड़े तिरछे चित्र अपने शोध के कमरे से विभिन्न कोणों एवं आयामों में लिये हैं और उन्हें आपके विचारार्थ प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्रजी के उपन्यास-लोक का जो भी विवरण विश्लेषण एवं निर्वचन मैं कर पाया हूँ उसमें जैनेन्द्रजी से विभिन्न समयों एवं स्थानों में हुई मेरी वार्ताएँ बड़ी फलप्रद सिद्ध हुई हैं। उनकी शैली में कुछ ऐसी सम्मोह

लगता है कि मैं अपने आपको उनसे अलग नहीं रख सका हूँ। यह प्रभाव भी मेरी शोध रचना एवं अभिव्यक्ति में कहीं-कहीं मुखर हुआ है।

जैनेन्द्रजी के आलोचकों को भी मैं नहीं भूल सकता हूँ, जिन्होंने मेरे पथ को सुगम एवं व्यवस्थित बनाया है। सर्वाधिक ऋणी हूँ मैं डॉ० देवराज उपाध्याय का जिन्होंने अपनी असाधारण मनोदृष्टि एवं सूक्ष्मता से जैनेन्द्र के उपन्यासों का पर्यालोचन किया है। डॉ० रामरतन भटनागर की सुलझी हुई पुस्तक ने भी मेरे शोध के पाठ्य को बोना है और पथ को सुगम एवं प्रशस्त बनाया है। साहित्य जिज्ञासा में ज्ञानालय पर पुस्तक सामग्री जुटाकर मित्रवर डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने मेरे मार्ग को सुकर बनाया है। उनके शब्द-दर्शनियों के पारस्परिक विचार से मैं विशेष रूप से लाभान्वित हुआ हूँ। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने (डॉ० हजारीप्रसाद के उपन्यासों के विचारों के सन्दर्भ में) उपन्यासालोचन एवं शोध के जो नये प्रतिमान खड़े किये हैं उनसे एक वैज्ञानिक दृष्टि मुझे प्राप्त हुई है और जैनेन्द्र के उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक हेतुओं को आकार चित्रों द्वारा प्रकट करने की प्रेरणा मिली है।

यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि विभिन्न अध्यायों के लेखन-परिकल्पन में मुझे जैनेन्द्र के उपन्यासों को पुनः-पुनः पढ़ना पड़ा है (लगभग १० बार)। उन पर जो प्रमुख आलोचना एवं शोध-कार्य हुआ है उसका भी यथा सतर्कता से अनुशीलन किया गया है। जहाँ पर इन आलोचकों से मेरी असहमति रही है वहाँ मैंने अपने मत का विनम्रतापूर्वक प्रतिपादन किया है। सहमति की स्थिति में उनके मत को सीढ़ी बना आगे की बात कही गई है। वस्तुतः शोध-कार्य एक सामूहिक प्रयत्न का फल होता है। एक अनुसन्धाता जिस स्तर पर पहुँच जाता है, वहाँ से दूसरा अपना शोध अभियान आरम्भ करता है और विचार रत्नों अथवा तथ्यों को आकलित करने की चेष्टा करता है। इस सम्पूर्ण प्रयत्न में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह मेरे कहने की बात नहीं है इस सम्बन्ध में तो विशेषज्ञों का निर्णय ही मुझे शिरोधार्य होगा।

आशा करता हूँ कि इस शोध-कार्य से मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन का पथ प्रशस्त होगा और शोध से हिन्दी संसार को इस सन्दर्भ में विभिन्न कृती साहित्यकारों के अध्ययन सुलभ हो सकेंगे। यह डॉ० सत्येन्द्र की शोध-परियोजना का प्रथम पुष्प है अतः यह उन्हें ही समर्पित है। यह प्रबन्ध डॉ० नगेन्द्र और डॉ० देवराज उपाध्याय जैसे सुधी आलोचकों का सन्तोष एवं सराहना परीक्षक के रूप में प्राप्त कर सका यह मेरे लिए विशेष प्रसन्नता का विषय है।

यह संयोगजन्य पुण्यफल ही है कि मेरा शोध-कार्य जो कि गाँधीवादी तत्त्व

चिन्तक उपन्यासकार पर है गाधी शतवार्षिकी के पावन अवसर पर पूर्ण हुआ है। इति शुभम् ।

लक्ष्मीकान्त शर्मा
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
दयानन्द कालेज अजमेर

२ अक्तूबर गाधी शतवार्षिकी, १९६९

प्रस्तावना

१ मनोविज्ञानपरक शैली-तात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय और उसका महत्त्व

हम ससार मे जितने भी काय सम्पन्न करते है उन सबके पीछे कोई-न कोई मनोवज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है। कोई भी काय करने से पूव हम उसके बारे म सोचते हैं और तब उसे कायरूप म परिणत करते हैं। उपन्यास-लेखन के सन्दभ में शली-तत्त्व हमारे लेखन का बाह्य रूप है बाह्य होते हुए भी उसमे हमारे अन्तर की व्यजना रहती है। जब कोई उपन्यासकार कुछ लिखने बठता है तो उसे प्रकट करने का उसका अपना एक खास तरीका होता है। इसी खास तरीके को शली तत्त्व कहा जा सकता है। बफन ने कहा है कि शली ही व्यक्तित्व है। इसका यही तात्पय है कि प्रत्येक उपन्यासकार की शैली मे उसके व्यक्तित्व की अभिव्यजना रहती है। जो कुछ हम लिखते हैं उस पर हमारे व्यक्तित्व की छाप रहती है। चस्टरफील्ड ने शली' को 'विचारो का परिधान बताया है।'[१] विचारो के इस परिधान मे लेखक की मानसिक ग्रन्थियां, स्वभाव और सस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। इस चाहे विचारो का परिधान कह लीजिये या व्यक्तित्व की अभिव्यजना। इस प्रकार मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय यह हुआ कि हम किसी भी रचनाकार के शली-तत्त्व का जब अध्ययन करें तो यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि उसकी लेखन शली मे उसकी कौन सी मानसिक कुठाएँ, स्वभाव एव सस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। विचार और रूप एक दूसरे से गहन रूप मे सबधित हैं। विचार एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो कि किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्पक म आने पर प्रतिक्रियास्वरूप मन म प्रकट होती है। जब किसी विचार को हम शब्दा की सीमा म बाँधने लगते हैं तो शली का स्वरूप हमारे सामने उभरने लगता है। लेखक की अभिव्यक्ति म जो प्रचलित से भिन्न रूप होता है वही शली का

---

१ स्टाइल इज द ड्रेस आफ थॉटस—चस्टरफील्ड

मूलाधार है।

मनोविनानपरक गली-तात्त्विक अध्ययन का आज के युग म बटा महत्त्व है क्योकि वचारिक प्रक्रिया को विभिन्न विनान भापा गास्त्र एव सौ दय शास्त्र की जटिल प्रक्रियाए प्रभावित कर रही है। इस प्रभाव का क्षेत्र एक ग्रार बहुत विशाल है तो दूसरी ग्रोर बहुत सू म भी है। व्यक्ति का मन बडा सवेदनशील है उसम प्रत्यक घन्ना की कुछ-न कुछ पतिक्रिया होनी है। जब हम किसी उप यासकार के शली-तत्त्व का अध्ययन करते हैं, तो उसके मन के चेतन, अवचेतन एव अचेतन मे जो भी मानसिक प्रभाव स निहित होते हैं, उनकी बुनावट को उघेडकर देखने का प्रयत्न करते हैं। शली तात्त्विक अ ययन क परिणामस्वरूप हम बडी सुगमता स लेखक क मन के सस्कारा को उसका शली के माध्यम से प्रकट होत हुए दखते हैं और तब उनका सुगमतापूवक विश्लपण भी कर सकत हैं। इससे नय-नये तथ्या की प्राप्ति होगी ग्रौर हम लेखक के मनोलोक का सहज ही म विश्लेषण कर सकेंगे।

चतना जिस प्रकार विभिन्न गारीरिक प्रतिक्रियाग्रा म अपनी अभिव्यक्ति करती है उसी प्रकार हमारे विचार भी हमारी दनिक क्रियाग्रा म प्रतिफलित होने हैं। जब काइ भी लखक अपनी कथा का ताना बाना बुनता है ता उसे प्रकट करन क लिए एक विशेष प्रकार की गली की ग्रावश्यकता होनी है। उस कथा क रूप म उसके विचार भावनाएँ एव कल्पनाएँ अपने आपको नात अनात रूप म प्रकट करत हैं। ग्रात्मा ग्रौर शरीर म जिस प्रकार घनिष्ठ सबध है उसी प्रकार लेखक के मनाविज्ञान ग्रौर उसकी गली म भा अविभाज्य सबध है। उसकी रचना का जो भी रूप हम प्रत्यक्ष म दिखाई देता है उसके मूल मे कुछ ग्रत प्रेरणाएँ काय करती हैं। इन ग्रत प्रेरणाग्रों का सधान ही मनो विज्ञानपरक गली-तात्त्विक ग्रध्ययन का उद्दिष्ट है। रमणीय काया म रूप की जा लहर उस दीप्तिमान् करती है, वही लहरें सू म रूप म वचारिक काया को भी कचन की तरह निखार दती हैं।

२ जनेन्द्र के उप यासो मे मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक ग्रध्ययन की सम्भावनाएँ

हिन्दी म मनोवनानिक उप यास के पवतन का श्रेय प्राय जनेन्द्र को दिया जाता है। उनक उप यासा म गली तत्त्व भी सवथा एव सवदा मुखर रहा है। एमी स्थिति म जनद्र क उप यासा का मनाविनानपरक गली-तात्त्विक अध्ययन ग्रपरिसीम सम्भावनाग्रा से पूण है। उनकी वचारिक प्रतिक्रियाग्रा को उनके उप यासा क गली-तत्त्व म हम स्पष्ट रूप स मुखरित होता पात हैं। डा०

दवराज उपाध्याय की मान्यता है कि जनेन्द्र के पात्र 'कम रत' के स्थान पर चिंतन रत अधिक हैं। इसका स्पष्ट कारण स्वय इन उपन्यासो के स्रष्टा की जीवन स्थिति और वचारिक परिणति रही है। जो आदमी सोचता अधिक है और काम नाम-मात्र का ही करता है उसके चिंतन और लेखन म एक प्रकार से उसकी कमण्यता क अभाव की परिपूर्ति देखी जा सकती है। जनेन्द्र के मनो लोक म ऐसे ही पात्रा की अवतारणा होती है, जो कि चिंतन की रेखाओं से आप्लावित हात हैं और जिनके जीवन म कम का विशेष महत्त्व नही है। परख के सत्यधन स लगाकर अनन्तर के विचारक प्रसाद तक ऐसे ही पात्रो की भर मार है। जनेन्द्र के नारी पात्र अधिक मुखर एव क्रियाशील हैं। उनके ही हाथ म पुरुष पात्रा की नियति का सूत्र रहता है। यही कारण है कि कट्टो सुनीता मृणाल, अपरा इत्यादि अपने अपने उपन्यासो के मानसिक क्षितिज पर एक प्रमुख प्रभावशाली पात्र के रूप मे मडराती रही है।

जब हम जैनेन्द्र के उपन्यासा का मनोविज्ञानपरक शली-तात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत करने की सोचते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि के सर्वाधिक सशक्त तत्त्वो का ही अध्ययन प्रस्तुत करने की मनाभूमिका हमारे शोध प्रबन्ध का विषय बनेगी। जनेन्द्र के उपन्यासो को समझने एव उनका मूल्याकन करने म और उनके पात्रो के वशिष्ट्य का निर्धारण करने मे एक नयी ऐतिहासिक भूमिका का निर्माण हो सकेगा। अब तक हिन्दी के रचना कारा का अध्ययन इस पीठिका पर नही हुआ है अत यह एक नया पथ है और एक नये पथ के निर्माण का दायित्व भी गाधवर्ता की परिधि मे आ जाता है। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर हम इस बात का भी पता लगा सकेगे कि छायावाद ने न केवल हिन्दी कविता को ही समृद्ध किया, बल्कि उसका प्रदेय कथा साहित्य क निर्माण मे भी काफी उज्ज्वल रहा है। प्रेमचन्द के परम्परागत उपन्यास का जनेन्द्र ने एक नयी दिशा प्रदान की और वाह्य लोक से हटकर पात्रा के जीवन का अन्त प्रयाण की ओर उन्मुख किया। इससे यही प्रकट होता है कि वाह्य घटनाचक्र की अभिव्यक्ति स हमारा उपन्यासकार सन्तुष्ट नही हो सकता, उसे अपने पात्रो की मानसिक सम्पदा का भी लेखा जोखा प्रस्तुत करना होगा।

जनेन्द्र के सम्पूर्ण लेखन म सहज वार्ता शली का स्वाभाविक उन्मेष है। डा० देवराज उपाध्याय ने इसी बात को दृष्टि मे रखकर अपनी निम्न मान्यता बडे सटीक शब्दो म प्रकट की है 'जनेन्द्र की रचना म सवत्र यही चर्चात्मक शैली और भाषा पायी जाती है। उनकी पुस्तका को पढ़त समय मालूम होता है माना लेखक आपसे बातचीत कर रहा हो। उस बातचीत म कही कुछ गरमी

भी आ जाती हो पर ठीक उसी सहज और स्वाभाविक ढंग से जैसे हम और आप कभी-कभी बातचीत करते गरम हो उठते हैं।[2]

अपने कथन के समर्थन में डा० उपाध्याय ने कल्याणी के प्रथम अनुच्छेद को लिया है। जब कभी उधर में निकलता हूँ मन उदास हो जाता है। कोशिश तो करता हूँ कि फिर उधर जाऊँ ही क्या ? लेकिन बेकार। सच बात यह है कि अगर मैं इस तरह एक एक राह मूँदना चलूँ तो फिर सुखी रहने के लिए दुनिया विधर और कौन शेष रह जायगी ? या सब रह जायगा। पर रहना नाम जिन्दगी का नहीं है—जिन्दगी नाम चलने का है।

सर्वत्र जनेन्द्र की यही भाषा और शैली है। उर्दू से घृणा नहीं अंग्रेजी से परहेज नहीं संस्कृत से दुराव नहीं। उनके यहाँ भेदभाव की बू तक नहीं। केवल ध्यान है तो स्वाभाविकता की सहजता की और बोधगम्यता की।[3]

मेरा अनुभव तो यह है कि जनेन्द्रजी की लेखन शैली प्याज का व्यक्तित्व धारण किए हुए है, जिसकी परतों पर परतें खोलते जाते हैं और अंदर से अत्यन्त ही स्निग्ध एवं उज्ज्वल रूप जैसे निकलता है वैसे ही जनेन्द्र भी बात में से बात निकालते हैं और वह बात बड़ी गहरी और सटीक भी होती है। जनेन्द्र के चिंतन और लेखन की यह एक महत्त प्रक्रिया है। जनेन्द्र के मनोविज्ञानपरक मनोतात्त्विक रूप ने हिन्दी-उपन्यास की धारा को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। उनके इस तत्त्व का अत्यन्त ही परिष्कृत रूप हम अज्ञेय के नदी के द्वीप में मिलता है। नये उपन्यासकार यद्यपि जनेन्द्र के प्रभाव को नकारते हैं फिर भी उनकी लेखन शैली और शिल्प विधान में अप्रधान रूप से जनेन्द्र का प्रभाव मुखरित हो उठता है। अपने कथन के समर्थन में धर्मवीर भारती राजेन्द्र यादव कमलेश्वर और शिवानी के उपन्यासों को प्रस्तुत करना चाहूँगा। मनो-तात्त्विक अध्ययन की सम्भावनाओं में जनेन्द्र से लगाकर अत्याधुनिक उपन्यासकारों तक ऐसी प्रच्छन्न धारा चली है जिस सतह पर जाकर उसका विश्लेषण एवं वर्गीकरण किया जा सकता है और इस दृष्टि से हम अपने शोध-कार्य की नवीन उपलब्धियों से अनुप्राणित कर सकते हैं। यहाँ यह बात भी विस्मृत नहीं की जा सकती कि समय के साथ-साथ जनेन्द्र का मनो-तत्त्व अपनी चरम सीमा तक पहुँचकर जीवन्तता के अभाव में क्षीण हुआ है और उसकी इधर की परिणति कुछ-कुछ चिंताजनक भी हो चली है।

---

२ डा० देवराज उपाध्याय जनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ० ६३।

३ वही।

३ शैली-तत्त्व के अध्ययन का इतिहास और उसमें मनोविज्ञान प्रक्रिया के स्वरूप-दर्शन का निरूपण

शैली तत्त्व के अध्ययन की प्रवृत्ति अधिक प्राचीन नहीं है। उपन्यास के संदर्भ में तो इसका विवेचन नितान्त आधुनिक प्रवृत्ति है। सैद्धान्तिक आलोचना के ग्रन्थों में इसका पृथक विवेचन तो नहीं मिलता किन्तु रस के साथ शैली को भी समाविष्ट कर दिया गया है। सर्वप्रथम 'साहित्यालोचन' में डा० श्याम सुन्दरदास ने 'रस और शैली' शीर्षक प्रकरण लिखा और उसका विस्तार से विवेचन किया। डा० दास की मान्यता है कि 'रस' साहित्य का भाव पक्ष है और 'शैली' उसका कला-पक्ष। भारतीय साहित्यशास्त्र में रीति और वृत्ति का विशद विवेचन मिलता है। इस रीति और वृत्ति को शैली की पूर्वजा कहा जा सकता है, किन्तु विस्तार एवं पृथकता से इसका विवेचन तभी से आरम्भ हुआ, जब से हम अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्त्य साहित्य के संसर्ग में आये।

शैली-तत्त्व का विवेचन, निबन्ध के संदर्भ में अधिक हुआ है। 'हिन्दी गद्य शैलियों के विकास'[४] से लगाकर 'गद्य मीमांसा'[५], 'हिन्दी साहित्य में निबन्ध'[६] आदि पुस्तकों से नवीनतम 'साहित्य विज्ञान'[७] तक इसी प्रक्रिया का पल्लवित रूप मिलता है। कथा-साहित्य के संदर्भ में भी इसकी चर्चा गौण रूप में हुई है, किन्तु इधर शैली तत्त्व को कलाकार की अन्तरात्मा में प्रविष्ट होने का एक प्रामाणिक साधन माना जाने लगा है। जब हम किसी उपन्यासकार के शैली तत्त्व का जिक्र करते हैं तो उसके मनोलोक में प्रविष्ट होने का यह एक महत्त्वपूर्ण सोपान सिद्ध हुआ है। इसकी सहायता से उसकी अंतश्चेतना की परत पर-परत खुलती जाती है और हम शब्द चयन, वाक्य रचना, पद विन्यास एवं मुहावरों के प्रयोग से यह बतलाने में सफल हो पाते हैं कि अमुक रचनाकार का कैसा स्वभाव एवं संस्कार है। उसकी रुचियां और अरुचियां उसकी लेखन शैली में तीव्रता के साथ अभिव्यंजित होती हैं। जब विलियम हैजलिट कोई निबन्ध लिखता था, तो रोमन साम्राज्य को गाली दिये बिना उससे नहीं रहा जाता था। इसी प्रकार चार्ल्स लैब भी अपनी सौम्य एवं परिष्कृत रुचि को नितान्त वैयक्तिकता के माध्यम से प्रकट करता था। ए० जी० गार्डिनर जब 'अल्फा ऑफ द प्लाऊ' के नाम से लिखता था, तो उसकी शैली का प्रायः

---

४ हिन्दी गद्य शैली का विकास डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा।
५ हिन्दी गद्य मीमांसा डा० रमाकान्त त्रिपाठी
६ हिन्दी साहित्य में निबन्ध प्रो० ब्रह्मदत्त शर्मा।
७ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त।

साहित्य रसिकों को मुग्ध कर देता था।

हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में यही बात नयना की गंगा और 'मजदूरी और प्रेम' के लेखक सरदार पूर्णसिंह के संबंध में कही जा सकती है। प्रारंभ में जैनेन्द्र की निबन्ध रचनाओं को लक्ष्य बनाकर यही कहा गया था कि वे हिन्दी के विनियम हैं निम्न हैं क्योंकि उनमें बुद्धि-तत्त्व अधिक प्रधान रहा है। राग तत्त्व एवं वयक्तिकता की पुट सियारामशरण गुप्त के निबन्धों[8] में पायी गई इसलिए उन्हें हिन्दी का चार्ल्स लैम्ब बताया गया। इससे पूर्व चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबन्धों एवं कहानियों में भी एक विशिष्ट व्यक्तित्व की अभिव्यंजना मिलती है। इधर कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, कुट्टिचातन (अज्ञेय) और विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों को लेकर भी शैली-तत्त्व की बात प्रायः सुनी गई है।

कथा साहित्य के सन्दर्भ में शैली को महत्त्वपूर्ण स्थान सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद ने दिलवाया। उनकी कहानियों और उपन्यासों में एक विशिष्ट गद्य काव्यात्मक शैली का अनुगमन किया गया है। इन्हीं के कुछ बाद पांडेय बेचन शर्मा उग्र ने भी शैली की सनसनाहट और ताम झाम से साहित्य-पाठकों को चमत्कृत किया था।[1] उग्र जी के बाद संभवतः जैनेन्द्र ही हिन्दी-कथा-साहित्य में एक शैलीकार के रूप में अवतरित हुए। इनके कुछ ही बाद इन्हीं [redacted] प्रेरणा लेकर अज्ञेय ने भी अपनी पृथक् शैली का निर्माण किया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बाणभट्ट की आत्मकथा में संस्कृतनिष्ठ कथा शैली का स्वर मुखर किया। शिवानी के नये उपन्यासों में एक ओर हजारीप्रसाद जी की संस्कृत निष्ठ शैली का तो दूसरी ओर निहायत ही बोलचाल की शैली में जैनेन्द्र का असर देखा जा सकता है। उनके व्यंग्य यशपाल की चुभती हुई फब्तियों का स्मरण कराते हैं। निर्मल वर्मा, उषा प्रियम्वदा, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, कमलेश्वर, मोहन राकेश आदि दर्जनों कथाकारों में अब शैली का विशिष्ट रूप प्रतिबिम्बित होने लगा है।

शैली-तत्त्व ने किसी कलाकार के मनोलोक में पहुँचने का एक सुगम साधन प्रस्तुत कर दिया है। किसी भी लेखक का शब्द चयन, उसकी वाक्य

---

८ जैनेन्द्र के विचार, सम्पादक प्रभाकर माचवे। प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई।

९ झूठ-सच, सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी।

१० उग्र जी की श्रेष्ठ कहानियाँ, विशेष रूप से मेरी माँ शीर्षक कहानी।

रचना एव मुहावरो की अभिव्यक्ति से तथा विराम चिह्नो के प्रयोग से हम उसकी मनोरचना का सहज ही अनुमान लगा लेते हैं। निराला जब कोई कविता या कहानी लिखते थे तो उसका रचना विन्यास इतना पृथक होता था कि हमें यह अनुमान करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी कि यह सिक्का निराला की ही टकसाल में ढला है। आनुवशिकी के सूक्ष्म अध्ययन के इस युग मे जहा शरीर विज्ञान के नये-नये तथ्यो पर प्रकाश पड़ा है, वहीं शैली-तत्त्व के अनुसधान की अधुनातन प्रवृत्ति ने एक नये रहस्य-लोक के द्वार खोल दिए है। मनोविज्ञान की नयी-नयी उद्भावनाओं ने इस शैली-तत्त्व को और भी अधिक मुखर किया है। इसी सदभ मे डा० गुलाबराय इस प्रकार लिखते हैं—' मनुष्य क्षणिक मनोदशाओं (मूड्स) का समूह-सा दिखायी देता है और अवचेतना का द्वार खुल जाने से मानसिक जीवन और भी सकुल हो गया है।'[11]

पश्चिम म जेम्स जायस[12], वर्जीनिया वुल्फ[13] के उपन्यासो ने मनोवैज्ञानिक शैली की दृष्टि से धूम मचा दी थी। अर्नेस्ट हेमिग्वे और डी० एच० लारेन्स ने आदिम मनोवृत्तियो की झलक दिखाकर मानव-जीवन को जब बेनकाब किया, तभी से मनोवैज्ञानिक शैली को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। योरप और अमेरिका म इन कलाकारो का मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आलोचको मे एफ० एल० ल्यूकस ने 'स्टाइल' नामक ग्रन्थ लिखकर साहित्य जगत् म शैली-तत्त्व की प्रतिष्ठा की। इसी दृष्टि म फ्रेंच उपन्यासो का मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। भारतीय साहित्य म अभी यह एक नयी दिशा समझी जाती है और इसी के सदभ म जैनेन्द्र के उपन्यासो पर प्रस्तुत अध्ययन एक विनम्र प्रयत्न है।

यह बात अब निर्विवाद समझी जाने लगी है कि किसी साहित्यकार के शैली-तत्त्व से ही हम उसके मनोलोक में प्रवेश कर सकते हैं और उसकी सूक्ष्म तम अन्तर्वृत्तियों का उत्खनन किया जा सकता है। आधुनिक युग मे जिस प्रकार भौगोलिक सर्वेक्षण एव उत्खनन द्वारा प्राचीनतम सभ्यताओ एव सस्कृतियो का अनुसधान किया जा रहा है, उसी प्रकार स्रष्टा के शैलीतात्त्विक अध्ययन के द्वारा उसके मनोविधान का सर्वेक्षण किया जा सकता है और यह बतलाया जा सकता है कि वे कौन सी मूल प्रवृत्तिया हैं जो लेखक को साहित्य रचना के लिए उत्प्रेरित करती हैं और सृजन के क्षणो म किसी भी लेखक की

---

११ काव्य के रूप डा० गुलाबराय (पृ० १८४, चतुर्थ सस्क० १९५८)।
१२ यूलिसिस जेम्स जायस।
१३ मिसेज डलोवे वर्जीनिया वुल्फ।

कल्पना एव मनोवेगा को परवान चढाती हैं। शल्य क्रिया के द्वारा जिस प्रकार हम मानव शरीर की विकृतिया एव सौष्ठव का परिज्ञान कर सकते हैं, उसी प्रकार मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अनुसधान भी एक प्रकार की साहित्यिक शल्य क्रिया है जिसके द्वारा हम रचना विधान के अन्त सूत्रा का अन्वेषण कर सकते हैं। नये जीवन-मूल्या की तलाश म शलीतात्त्विक अध्ययन किसी दिन एक अमोघ अस्त्र प्रमाणित हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम पर्याप्त सजगता एव निष्ठा क साथ इस नयी दिशा म अग्रसर हो।

८ जैनेन्द्र के उपन्यासो पर हुए अध्ययन का ऐतिहासिक क्रमानुसार पूर्ण विवरण

जनेन्द्र के सम्बन्ध म सवप्रथम लिखने का श्रेय सम्भवत डा० प्रभाकर माचवे को है। उन्ही ने सवप्रथम जनेन्द्र के निबन्धो को लेकर एक पुस्तक प्रकाशित की जनेन्द्र के विचार'। इस पुस्तक की भूमिका इसलिए महत्त्व पूर्ण है कि उसमे न केवल जनेन्द्र के विचारो का दोहन ही किया गया है, बल्कि उनकी विशिष्टताओ की सभावनाओ का एक पूर्वाभास भी इस भूमिका म प्रस्तुत किया है। यही पुस्तक बाद म किंचित् सशोधनो एव परिवधनो के साथ 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' के नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के सिलसिले म कुछ लोगो ने प्रभाकर माचवे के काम को ठीक वसा ही महत्त्वपूर्ण बतलाया जसाकि डॉ० जानसन के सदभ मे बास्वेल ने किया था। हालांकि यह बात स्पष्ट है कि जनेन्द्र जानसन नही हैं और यह भी उतना ही स्पष्ट है कि प्रभाकर माचवे भी बास्वेल की तरह जीवनीकार नही बन सके।

इस पुस्तक की भूमिका मे माचवेजी ने जनेन्द्र के शली-वशिष्टय क सबध म इस प्रकार विचार व्यक्त किए हैं 'उनके साहित्य म सबसे प्रथम और विशेष गुण, उनकी भावरम्य सहज वार्तालाप-शली के अन्तगत उनकी विचार प्रवत्तकता है। उनके विचारो का चाहे प्रत्याख्यान हम करें पर यह तो हम कदापि कह ही नही सकते कि वे पाठक या श्रोता के मन म विचार लहरियाँ नहीं उठाते सहजता उनके विचार का उत्स है। वही उनके विचारो की ऋजुता और प्रवहमानता का आधार है, और वही उनका साध्य भी है। जनेन्द्र ऐसी सुलझन हैं जो पहेली से भी अधिक गूढ हो, वे इतने सरल हैं कि उनकी सरलता भी वक्र लगे। वे इतने निरभिमान हैं कि वही उनका अभिमान है।"

---

१४ साहित्य का श्रेय और प्रेय जनेन्द्रकुमार। प्रस्तावना प्रभाकर माचवे। पृ० १२ १३, (पूर्वोदय प्रकाशन द्वितीय आवृत्ति, जनवरी '६१)।

। यद्यपि उपर्युक्त बात जैनेन्द्र के निबन्धो के संबध म कही गयी है, पर यही बात प्रकारान्तर से जनेन्द्र के उपन्यास-लेखन म भी केन्द्र बिन्दु बन गयी है ।

-जनेन्द्र के प्रथम उपन्यास 'परख' के प्रकाशन पर और उसके साथ-ही-साथ कुछ कहानियो के लेखन के संबध म स्वर्गीय प्रेमचन्द ने 'हस म लिखा था "उनमे अन्त प्रेरणा और दार्शनिक संकोच का सघर्ष है, इतना हृदय को मसोसने वाला इतना स्वच्छन्द और निष्कपट, जस बन्धनो मे जकडी हुई आत्मा की पुकार हो ।, उनमे साधारण सी बात को भी कुछ इस ढग से कहने की शक्ति है जो तुरन्त आकर्षित करती है । उनकी भाषा म एक खास लोच, एक खास अन्दाज है ।"[१५] प्रेमचन्द के प्रस्तुत उद्धरण मे भी उनक शली-तत्व, उसके लोच एव अन्दाज की बात कही गयी है ।

- जब साहित्य सन्देश ने अक्टूबर नवम्बर, १९४० म अपना 'उपन्यास अक' प्रकाशित किया, तो जनेन्द्र पर स्वर्गीय नन्ददुलारे वाजपेयी और प्रभाकर माचवे ने अपने विचार प्रकट किये थे । वाजपेयीजी ने अपने निबन्ध म जहा एक ओर जनेन्द्रजी के उपन्यास लेखन की कुछ असगतियो की ओर हिन्दी-पाठको का ध्यान आकर्षित किया था वही प्रभाकर माचवे ने उनकी कुछ विशेषताओ पर सवप्रथम अपने विचार जाहिर किये थे । इन निबन्धो मे जनेन्द्र की न्यूनताओ और उपलब्धियो का समझने का एक प्रारंभिक प्रयत्न है । इसके बाद संवत् १९९७ म हिन्दी उपन्यास[१६] पर एक सुलझी हुई पुस्तक शिवनारायण श्रीवास्तव ने प्रस्तुत की । जनेन्द्र की उपन्यास-कला पर इसमे विशद विवेचन है । इस पुस्तक म 'परख' से लगाकर सुनीता तक ही जैनेन्द्र की उपन्यास-कला का विवेचन हो पाया है । श्रीवास्तवजी ने जहा उनक रचना-सौष्ठव की प्रशसा की है वहीं उन्होने उनकी भाषा मे आने वाले अंग्रेजीपन की शिकायत भी की है । भाषा की दुरूहता पर भी उन्हें आपत्ति है । अपनी पुस्तक के नये संस्करण म उन्होने अपने अध्ययन को अद्यतन बनाने की चेष्टा की है पर फिर भी उनके विवेचन की परिधि मे जनेन्द्र का सपूर्ण औपन्यासिक कृतित्व नही आ पाया ।

आचाय रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास मे जनेन्द्रकुमार, के तपोभूमि' और 'सुनीता' का नामोल्लेख मात्र ही मिलता है । शुक्लजी ने वर्तमान उपन्यासो के भेद के प्रसग म चौथे सूत्र के अन्तगत यह लिखा है "अन्त वृत्ति अथवा शील वचित्र्य और उसका विकास क्रम अंकित करने वाले, जस,

---

१५ 'हस वर्ष-सख्या ४ । (सरस्वती प्रेस, बनारस) ।

१६ हिन्दी-उपन्यास शिवनारायण श्रीवास्तव । प्रकाशक सरस्वती मदिर, काशी ।

प्रेमचन्दजी का गबन जनेन्द्र का तपोभूमि, 'सुनीता।'[17] इससे अधिक आचार्यप्रवर और कुछ न लिख पाए।

१९४१ म ही श्री विनोदशंकर व्यास ने उपन्यास-कला नामक पुस्तक प्रस्तुत की। इसम हिन्दी उपन्यासो पर भी एक अध्ययन है, किन्तु इस अध्याय म जनेन्द्र का कोई उल्लेख नही मिलता। श्री नरोत्तम नागर ने प्रगतिशील युग के प्रारभ म जबकि उस पर फ्रायड के मनोविश्लेषण का भी प्रत्यधिक प्रभाव पड रहा था एक पुस्तक लिखी 'गुलुरमुग-पुराण'। इस पुस्तक म जनेन्द्र के प्रारंभिक उपन्यासो का कुत्सित मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। 'कुत्सित' मैंने इसलिए कहा कि नागरजी अपनी बात को इतने अडिग विश्वास के साथ कहते हैं कि वहा उदार चिन्तन एव मनन के लिए कोई गुजाइश नही रह जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कृति लेखक के विकृत मानस की उपज है। यद्यपि इस मनोविश्लेषण म भी कुछ सत्यांश या अर्द्धसत्य हो सकते हैं पर फिर भी यह कुत्सित समाजशास्त्रीय प्रयत्न की ही तरह कुत्सित मनोविश्लेषण (वलगर साइको एनेलसिस) कहा जा सकता है।

जनेन्द्र के उपन्यासो पर सवप्रथम पुस्तक[18] श्री रघुनाथसरन झालानी की मिलती है। इन्होने अपनी एम०ए० की परीक्षा म लघु प्रबध के रूप म जनेन्द्र के उपन्यासो का विवेचन किया है। यह वास्तव म जनेन्द्र के उपन्यासो को समझने का प्रारम्भिक प्रयत्न कहा जा सकता है। किन्तु इस पुस्तक म सात उपन्यासो पर ही विचार किया जा सका है। लघु प्रबध होने के कारण इसकी कुछ सीमाए भी रही हैं। इस पुस्तक की विशेषता यही है कि स्वय उपन्यासकार के निकट-सम्पर्क म रहकर श्री झालानी ने अपने सुलझे विचार व्यक्त किए हैं।

जनेन्द्र पर पहली व्यवस्थित एव सर्वांगपूर्ण पुस्तक डा० रामरतन भटनागर लिखित 'जनेन्द्र साहित्य और समीक्षा'[19] है। इसम विस्तार से इनके उपन्यासो का विवेचन किया गया है। इसका प्रकाशन-काल सन् १९५८ है अत स्वाभाविक ही था कि इसम १९५६ स प्रकाशित 'जयवर्धन' तक ही विचार हो सका। डा० भटनागर ने बडे परिश्रम के साथ उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व का

---

१७ हिन्दी-साहित्य का इतिहास (पृ० ५४२, पाचवा सस्क० स० २००६)।

१८ जनेन्द्र और उनके उपन्यास रघुनाथसरन झालानी (प्रथम सस्करण १९५६)।

१९ जनेन्द्र—साहित्य और समीक्षा रामरतन भटनागर (साहित्य प्रकाशन दिल्ली)।

विवेचन किया है और उनके दृष्टिकोण म सवत्र व्यापकता की ही प्रधानता रही है। जैनेन्द्र की प्रतिभा के विभिन्न आयामो को उन्होंने सफलता के साथ शब्द बद्ध किया है। इस पुस्तक मे जनेन्द्र के मनोविज्ञान और शली पर भी अलग अलग अध्याय हैं किंतु शली-तत्त्व के विवेचन म उन्होने बडी सक्षिप्तता से काम लिया है। केवल साढ़े-तीन पष्ठो म ही उन्होने शली के प्रकरण को निबटा दिया है। मनोविज्ञान वाले अध्याय मे भी वे अधिक विस्तार म नही गय हैं, फिर भी जैनेन्द्र की औपन्यासिक सभावनाओ पर अत्यन्त ही स्वच्छ शली मे उन्होने सूत्र-बद्ध विचार प्रस्तुत किये है। आशा की जाती है कि अपनी पुस्तक के नये सस्करण मे वे 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' पर भी अपना सुलझा हुआ मत प्रकट कर सकेंगे।

इसके बाद श्री सत्यप्रकाश मिलिन्द क सपादन म 'जनेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई। यह पुस्तक कुछ-कुछ अभिनन्दन-ग्रन्थ की शली म सम्पादित की गयी है इसलिए इसम आलोचनात्मक स्वर गौण हो गया है। इस पुस्तक मे भी जनेन्द्र की प्रतिभा के विविध पक्षो का उद्घाटन है—कहीं गभीर रूप म, तो कही बचकाने ढग से। इस पुस्तक मे कुछ निबध सस्मरणात्मक भी हैं और कुछ अत्यन्त सक्षेप म श्रद्धाजलि की टोन मे लिखे गए हैं। श्री सत्यप्रकाश मिलिद न एक प्रकार से इस पुस्तक मे जनेन्द्र के साहित्यिक प्रमुखता का पत्रकारीय सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है, किन्तु स्वय उनकी भूमिका बडी नश्वर है और उनका निबध भी सस्मरण की सीमा स आगे नही बढ पाया है। गम्भीर कोटि के लेख इस पुस्तक मे कम ही हैं।

श्री बाकेविहारी भटनागर न साहित्यकार अभिनदन ग्रथमाला मे 'जनेन्द्र व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक' शीर्षक स एक पुस्तक सम्पादित की है। इसका प्रकाशन काल जनवरी १९३५ है। यह पुस्तक तीन खण्डो मे विभाजित है १ जीवन और व्यक्तित्व, २ मूल्याकन ३ सृजन। इस पुस्तक म जनेन्द्र के उपन्यासो पर डा० रामरतन भटनागर का एक सक्षिप्त-सा निबन्ध है, जिसमे केवल 'व्यतीत' तक ही औपन्यासिक विवेचना की गई है। यह निबन्ध भी एक प्रकार से परिचयात्मक सा ही है। अन्य निबन्धो का सबध जनेन्द्र की प्रतिभा के अन्य रूपो से है, किन्तु ये बहुत वजनदार निबन्ध नही हैं यहा तक कि स्वय सम्पादक महोदय ने भी कोई विशेष सयोजनीय निबध प्रस्तुत नहीं किया है। मिलिंदजी या भटनागरजी अपनी पुस्तका के भूमिका रूप मे यदि विस्तृत एव

---

२० जनेन्द्र व्यक्ति कथाकार और चिन्तक स० बाकेबिहारी भटनागर (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्रथम सस्करण, जनवरी १९३५।)

समीक्षात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुआ तो पुस्तकों का महत्त्व बढ़ गया था।

अब डा० देवराज उपाध्याय द्वारा लिखित 'जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'[21] विचारणीय है। इस पुस्तक में छः विस्तृत आलोचनात्मक निबन्ध हैं। सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास की व्याख्या को स्पष्ट किया गया है और बतलाया गया है कि किन्हीं उपन्यासों की तुलना में हिन्दी उपन्यासों में क्या कमियाँ हैं। दूसरे निबन्ध में जैनेन्द्र के उपन्यासों और उनके दृष्टिकोण पर विचार किया गया है। तीसरे और चौथे निबन्ध में क्रमशः जैनेन्द्र के उपन्यासों की भाषा और टेकनीक पर अलग से सुलझे हुए विचार प्रस्तुत किये गये हैं। पाँचवें निबन्ध में जैनेन्द्र के कथा-साहित्य पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है और अन्तिम निबन्ध में विस्तार के साथ जैनेन्द्र के उपन्यासों के मनोविज्ञान की चर्चा की गयी है।

डा० उपाध्याय की अन्य पुस्तकों की तरह ही इस पुस्तक में भी जैनेन्द्र के उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक एवं शिल्प-पक्ष में देखा-परखा गया है। उपाध्याय जी के विवेचन की सबसे बड़ी विशेषता है उनका अंग्रेजी और संस्कृत-साहित्य का अगाध अध्ययन और उसके आलोक में जैनेन्द्र की उपलब्धियों एवं न्यूनताओं पर विचार करना।

उनकी आलोचना-शैली की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी जीवन्तता एवं हास्य विनोदप्रियता। हिन्दी और मनोविज्ञान के क्षेत्र में उनकी देन अप्रतिम है किन्तु उनकी सम्भावनाओं का सर्वोत्तम रूप अभी प्रतीक्षित है। डा० उपाध्याय जैनेन्द्र के उपन्यासों में मनोविश्लेषण के दर्शन करते हैं किन्तु डा० गणेशन ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन'[22] में इस मान्यता का बड़े विस्तार के साथ प्रतिवाद किया है और उनका निष्कर्ष है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में ऐसे मनोविश्लेषण का अध्ययन नहीं मिलता।

डा० देवराज उपाध्याय ने ही अपने शोध प्रबन्ध (प्रकाशन-वर्ष १९५३) 'आधुनिक हिन्दी-कथा साहित्य और मनोविज्ञान'[23] में जैनेन्द्र के उपन्यास और मनोविज्ञान पर एक अध्याय प्रस्तुत किया है। इस शोध प्रबन्ध में स्थान-स्थान

---

२१ जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डा० देवराज उपाध्याय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

२२ हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, डा० गणेशन (पृ० ३०३, प्रथम संस्करण सन् १९६२, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली)।

२३ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, डा० देवराज उपाध्याय (साहित्य भवन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १९६३, यह शोध प्रबन्ध १९५४ में स्वीकृत हुआ था।)

पर जनेन्द्र के उपन्यासो की और उनके वशिष्टय की चर्चा आयी है, किन्तु शली तत्त्व की दृष्टि से उन्होंने अधिक विचार नही किया है। नवीनतम पुस्तक 'जनेन्द्र के उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' म भी उनकी भाषा शली पर केवल नौ-दस पृष्ठ लिखकर चलता कर दिया गया है, जो कि अपर्याप्त है। यो उनका शोध प्रबन्ध अत्यन्त विस्तृत एव विचारोत्तेजनापूर्ण है और इससे आलोचको को एक नयी दिशा भी प्राप्त होती है।

सन् १९६० मे डा० सुषमा धवन ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी उपन्यास'[२४] मे मनोविश्लेषणवादी उपन्यासो के अन्तगत जनेन्द्र की औपन्यासिक स्थिति पर बड ही सुघरे रूप मे विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका यह विवेचन 'व्यतीत' तक ही हो पाया है, क्योकि बाद के उपन्यास उनकी विवेचन की परिधि के बाहर थे। प्रत्येक उपन्यास का परिचय और उसकी मूल समस्या का विवेचन, उसकी उपलब्धिया एव न्यूनताएँ—इस दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध का विशेष महत्त्व है। शैली-तत्त्व की दृष्टि से केवल कुछ सकेत मिलते हैं, अधिक विवेचन नही।

सन् १९६२ मे डा० गणेशन का शोध प्रबध 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन' प्रकाशित हुआ, यद्यपि इसका लेखन और स्वीकृति-वष १९५८ है। इस प्रबन्ध मे पाश्चात्य उपन्यासो के विराट परिप्रेक्ष्य मे डा० गणेशन ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मौलिक विवेचना की है। वे यद्यपि अहिन्दी भाषी हैं, फिर भी उनकी लेखन शैली कही भी केवल अग्रेजी शब्दो को लेकर नही चलती, सभी पारिभाषिक शब्दो के उन्होंने उपयुक्त हिन्दी रूपान्तर भी दिये हैं। उनके प्रबध म एक अध्याय है 'उपन्यास में मनोविज्ञान'। इसी अध्याय के अन्तगत जनेन्द्र के उपन्यासो की चर्चा करते हुए उन्होंने डा० देवराज उपाध्याय की गैस्टाल्टवादी मान्यताओ का खडन किया है। डा० गणेशन का पाश्चात्य उपन्यासो का अध्ययन अत्यन्त गहन है इसलिए उसके आलोक म सभी दृष्टियो से तुलना करते हुए उन्होंने हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मौलिक विवेचना प्रस्तुत की है। कहीं-कहीं यह तुलनात्मक विवेचना पाश्चात्य उपन्यासो के गहन कान्तार मे विलीन होती-सी प्रतीत होती है। इस प्रबन्ध मे भी शली-तत्त्व की दृष्टि से विशेष विवेचन नही है, यद्यपि उसके सकेत यत्र-तत्र मिलते हैं। वचारिक दृष्टि से इस प्रबन्ध का विशेष महत्त्व है, क्योकि इससे हिन्दी उपन्यासालोचन के नये क्षितिज उद्घाटित होते हुए प्रतीत होते हैं।

डा० रणवीर राग्रा का 'हिन्दी-उपन्यास मे चरित्र चित्रण का विकास'[२५]

---

२४ हिन्दी-उपन्यास डा० सुषमा धवन (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ३१)।

२५ हिन्दी-उपन्यास मे चरित्र चित्रण का विकास डॉ० रणवीर रांग्रा।

एक सुलभा हुआ शोध प्रबंध है। इसमें चरित्र चित्रण और उसके विकास की दृष्टि से हिंदी उपन्यास पर विचार किया गया है। इसी संदर्भ में डा० राय ने जनेन्द्रजी के विभिन्न पात्रों की चरित्र रेखाओं को प्रस्फुटित किया है। चूंकि मनोविज्ञानपरक मनोतात्विक अध्ययन उनके विषय की परिधि से बाहर था इसलिए इस संबंध में कोई विचार नहीं हो सका है।

डा० सुरेश सिन्हा ने 'हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना' विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। इसमें केवल जनेन्द्र की औपन्यासिक नायिकाओं पर ही विचार है। इसी प्रकार डा० प्रतापनारायण टंडन ने हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता डा० श्रीनारायण अग्निहोत्री ने हिंदी उपन्यास-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन' डा० इन्दिरा जोशी ने 'हिन्दी-उपन्यासों में लोक-तत्त्व', डा० प्रेम भटनागर ने हिन्दी-उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य आदि विषयों पर अपने अपने शोध प्रबंध प्रस्तुत किये हैं। इन सभी प्रबंधों में अपनी अपनी दृष्टि से जनेन्द्र के उपन्यासों पर विचार किया गया है, किन्तु अपनी सीमित परिधि के कारण इनमें मनोविज्ञानपरक मनो-तत्त्व पर कोई विचार नहीं हो सका है, अथवा यत्र-तत्र कुछ संकेत एवं टिप्पणियां ही लिख दी गई हैं।

उपाधिपरक शोध प्रबंधों के अतिरिक्त भी हिन्दी उपन्यास पर विवेचना हुई है। इस प्रकार के ग्रन्थों में डा० सुरेश सिन्हा द्वारा लिखित हिंदी-उपन्यास उद्भव और विकास डा० मक्खनलाल शर्मा द्वारा लिखित हिंदी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा महेन्द्र चतुर्वेदी कृत हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण डा० प्रतापनारायण टण्डन प्रणीत हिंदी-उपन्यास उद्भव और विकास आदि दर्जनों ऐसे ग्रन्थ बाजार में सुलभ हैं जो कि उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों की आवश्यकता-पूर्ति के प्रयत्न मात्र हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी उपन्यास पर तीन दिशा प्रेरक आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं एक है नेमिचन्द्र जैन द्वारा लिखित अधूरे साक्षात्कार दूसरा है, डा० इन्द्रनाथ मदान द्वारा लिखित आज का हिन्दी उपन्यास और तीसरा है डा० रामदरस मिश्र द्वारा लिखित हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा। अधूरे साक्षात्कार में स्वर के बहुचर्चित उपन्यासों की मूल्यांकन की दृष्टि से मौलिक विवेचना की गयी है। जनेन्द्र के जयवर्धन पर भी इस पुस्तक में एक निबंध है। इनका निष्कर्ष है "मानवीय अनुभूति की क्षीणता के कारण जयवर्धन अपनी संभावनाओं को साकार नहीं कर सका—कलाकृति के रूप में जयवर्धन अन्ततः ऐसा मरुस्थल है जिसमें भाव और विचार की व्यापक और संभावनापूर्ण धाराएं क्रमशः सीमाहीन बालू में लुप्त होकर मरी

चिका मात्र रह जाती है।"[26] इस पुस्तक मे एक अध्याय है 'रूप, शिल्प और भाषा', इस अध्याय म लेखक ने बहुत ही सक्षेप म भाषा के अन्तर्गत शैली-तत्त्व पर भी विचार किया है। दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है 'आज का हिन्दी-उपन्यास' जिसम प्रेमचन्द के 'गोदान' से लगाकर निर्मल वर्मा के 'वे दिन' तक एक नयी दृष्टि स विचार किया गया है। इस पुस्तक म जैनेन्द्र के 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' पर लेखक ने इन उपन्यासो की राह स ही गुजरने का प्रयास किया है। लेखक का निष्कर्ष इस प्रकार है इनकी राह से गुजरने पर मुझे यह भी लगा है कि हिन्दी-उपन्यास को अभी तक अपना मुहावरा ही नही मिल सका है। इतना कहा जा सकता है कि हिन्दी-उपन्यास अपने मुहावरे की खोज म सलग्न अवश्य है।"[27] मनोविज्ञानपरक शैली-तत्त्व की दृष्टि से इस पुस्तक म भी विवेचना नही के बराबर है। रामदरस मिश्र की पुस्तक[28] सर्वेक्षण-माला के अन्तर्गत प्रस्तुत की गयी है। उन्होने अपनी पुस्तक म विभिन्न उपन्यासकारो के प्रतिनिधि उपन्यासो की चर्चा की है। जैनेन्द्र के केवल दो उपन्यासो 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' की ही विवेचना की गयी है। शैली-तत्त्व पर विशेष चर्चा नही है हा, मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की प्रवृत्तियो पर सक्षिप्त एव प्रारम्भिक विवेचन अवश्य है।

शिवदानसिंह चौहान द्वारा लिखित 'हिन्दी-साहित्य के अस्सी वर्ष' म भी जैनेन्द्र के उपन्यासो का प्रगतिशील दृष्टिकोण स सक्षिप्त विवेचन मिलता है। डा० भोलानाथ के 'हिन्दी साहित्य' (१९२६ स १९४७) मे भी जैनेन्द्र के उपन्यासो का उल्लेख आया है। इसी प्रकार डा० रामगोपालसिंह चौहान के 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य, (१९४७ से १९६२) मे भी जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासो पर परिचयात्मक ढग से विचार किया गया है। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त के 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' मे भी जैनेन्द्र के उपन्यासो की सक्षिप्त आलोचना मिलती है। अन्य इतिहास-ग्रन्थो एव पत्रिकाओ म भी जैनेन्द्र के उपन्यासो के उल्लेख मिलते हैं किन्तु मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक दृष्टिकोण से कही भी व्यवस्थित विचार नही हुआ है। सन् १९६५ ३६ म प्रसिद्ध त्रैमासिक पत्रिका 'आलोचना' का 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषाक' श्री शिवदानसिंह चौहान

२६ मधुरे साक्षात्कार नेमिचन्द्र जैन, पृ० १०५।

२७ आज का हिन्दी-उपन्यास डा० इन्द्रनाथ मदान, ('अपनी बात' म से—प्रथम सस्करण १९६६)।

२८ हिन्दी-उपन्यास एक अन्तर्यात्रा डा० रामदरस मिश्र (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सस्करण १९६८)।

के सम्पादकत्व में पांच खण्डों में निकला। यह एक विशाल एवं योजनाबद्ध प्रयत्न था। इसके दूसरे खण्ड में उपन्यास की विधा पर दो सुन्दर निबंध प्रकाशित हुए हैं डा० रामगोपालसिंह चौहान का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य शीर्षक के अन्तर्गत 'जीवन-यथार्थ और युग के केन्द्रीय प्रश्नों का स्थापन' और डा० रणवीर रांग्रा का हिन्दी-उपन्यास और स्वप्न विश्लेषण'। 'पुनर्मूल्यांकन' के अन्तर्गत डा० गोपालराय ने 'सुनीता' की व्यवस्थित आलोचना की है। पहले निबंध में 'सुखदा' की चर्चा आयी है दूसरे निबंध में प्रसंगगत रूप में 'कल्याणी' और 'सुनीता' का विश्लेषण दर्शाया गया है। डा० गोपालराय ने अपने निबंध में विषय-क्षेत्र शिल्पविधान और भाषा की दृष्टि में सुनीता पर विचार किया है। इसमें भाषा-शैली के संबंध में केवल एक संक्षिप्त अनुच्छेद मिलता है। उनका निष्कर्ष द्रष्टव्य है 'जैनेन्द्र की भाषा की यह विशेषता इतना आयासित है कि यह कहीं-कहीं अभिव्यक्ति की विसंगतता मात्र प्रतीत होती है पर सूक्ष्म अवलोकन में स्पष्ट है कि जैनेन्द्र की भाषा मस्तिष्क की भाषा है जो उपन्यास के विषय के सर्वथा अनुकूल है। भावानुरूपता संक्षिप्तता संगीतता नाटकीयता और अर्थगर्भत्व की दृष्टि में 'सुनीता' की भाषा सराहनीय है।'[२६]

डा० दवीशंकर अवस्थी द्वारा सम्पादित 'विवेक के रंग' में 'जयवर्धन' पर यशपाल का सुचिन्तित एवं विस्तृत निबंध है 'पकड़ के बाहर का यथार्थ'। यशपाल ने प्रस्तुत निबंध में 'जयवर्धन' उपन्यास की वैचारिक रचनाओं को स्पष्ट करते हुए कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो इस प्रकार हैं

१ 'जयवर्धन' की कहानी पाठक का विश्वास पाने योग्य नहीं बनी। पहला कारण तो उसमें पृष्ठभूमि का नितान्त कमी है। वह वार्तालापों की डायरी मात्र है। (वार्तालाप विश्वासयोग्य रोचक कहानी नहीं बना सकते ऐसा नहीं कहा जा सकता है।)

२ कहानी में विश्वास और रोचकता उत्पन्न न कर सकने का कारण पात्रों का निर्जीव और प्रायः एक सा होना है।

३ जयवर्धन पढ़ने के श्रम को उसकी भाषा और भी कठिन कर देती है। भाषा सामाजिक अभिव्यक्ति का साधन है। उसे सुलभ और सुबोध बनाये रखने के कारण ही व्याकरण की आवश्यकता हुई है। भाषा के मनमाने प्रयोगों और नियमों की अवहेलना अहं और स्वरति की उच्छृंखलता-मात्र है। यदि नागरिकता के साधारण नियमों—उदाहरणतः सड़क पर चलने के नियमों का

---

२६ 'आलोचना' का 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक' (भाग २ जुलाई १९६५)

पालन सामाजिकता के नाते आवश्यक है, तो भाषा के नियमों की ही अव-हेलना क्यों की जाय ?[1]

इधर विश्वविद्यालयों मे जैनेन्द्र के उपन्यासो पर लघु प्रबंध के रूप मे पुन कुछ प्रयास हुए हैं। इन पंक्तियों के लेखक के निर्देशन म रमेशचन्द्र मिश्र ने 'जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रो का मध्यवर्गीय महिला जीवन पर प्रभाव' विषय पर अपना लघु प्रबंध इसी वर्ष प्रस्तुत किया है। इस लघु प्रबंध मे गहरी अन्तर्दृष्टि के साथ जैनेन्द्र के उपन्यासो का मध्यवर्गीय महिलाओ पर जो प्रभाव पड़ा है उसका सर्वेक्षण किया गया है। शैली-तात्त्विक अध्ययन इस प्रबंध की परिधि से परे रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध म इसी अनजानी एव अछूती दिशा की ओर बढने का मैंने एक प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से न केवल भारतीय भाषाओ के धरातल पर बल्कि विश्व साहित्य म केवल फ्रेंच उपन्यासो का एकाकी अध्ययन ही सुलभ है। फ्रेंच उपन्यासों स भारतीय पाठक एव विद्वान् अधिक परिचित नही हैं इसलिए इस दिशा में जो काम हुआ है वह हमारे लिए अधिक सहायक सिद्ध न हो सका।

५ इस अध्ययन की अपर्याप्तताओ पर प्रकाश तथा इस अनुसधान का महत्त्व

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे जनेन्द्र के उपन्यासो के मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन की रेखाएँ सुस्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार के अध्ययन म जनेन्द्र के उपन्यासो की अन्य विशेषताओं एव न्यूनताओ पर प्रकाश नही डाला जा सका। हमारे कार्य का पथ सकीर्ण है और हम एक सुनिश्चित पथ से ही, शोध प्रक्रिया क माध्यम से, कुछ निष्कर्ष निकालने हैं ऐसी स्थिति म जनेन्द्र के उपन्यास लोक की वचित्र्यमयी भगिमाओ की ओर हम दृष्टिपात नही कर सकते, यद्यपि अध्ययन की इस प्रक्रिया म मन अनेक बार उन समस्याओ की ओर भी उन्मुख हुआ है, किन्तु हमने प्रयत्नपूर्वक अपनी सुनिश्चित दिशा की ओर ही अपने चिन्तन को क्रियाशील रखा है।

किसी भी उपन्यासकार का मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन इस दृष्टि से किया जाता है कि उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम स उसकी मानसिक प्रवृत्तियों तक हम पहुँच सकें और यह पता लगाने की चेष्टा करें कि उस लेखक

---

३० विवेक के रग सम्पादक डा० देवीशकर अवस्थी, पृ० २४०-४१-४४ (भारतीय ज्ञानपीठ काशी)।

के क्रिया-कलाप का अंतिम प्रयोजन या हेतु क्या है। विचार-तत्त्व और शैली एक-दूसरे में अविच्छिन्न रूप में जुड़े हैं। शब्दों में जैसे अर्थ भरा रहता है वैसे ही शैली के परिधान में उसके विधाता का मूल आशय निहित रहता है। शब्द और अर्थ आत्मा एवं शरीर की ही तरह अविभाज्य हैं। इसी प्रकार जब हम किसी लेखक का शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं तो उसके मनोविज्ञान को समझने में भी बड़ी सुविधा रहती है। किसी भी उपन्यासकार की शैली में उसकी मानसिक प्रवृत्तियों के मूल बिन्दुओं का संधान किया जा सकता है। जब बफन ने "शैली ही व्यक्तित्व है" कहा था तो उसका यही अभिप्राय था कि हम लेखक की शैली में उसके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब देखें। इस दृष्टि से हमारे साहित्यकारों के कृतित्व पर विचार करने की महती आवश्यकता है, क्योंकि इससे नयी-नयी दिशाओं का उन्मोचन होगा और हम उनकी साहित्यिक सृष्टि को अच्छी तरह हृदयंगम कर सकेंगे। जिस प्रकार सृष्टि में हम किसी अद्भुत शक्ति का अप्रत्यक्ष हाथ देखते हैं, उसी प्रकार किसी रचनाकार की शैली से हम उसके व्यक्तित्व की रेखाओं को, उसके स्वभाव और संस्कारों को तथा रचना के प्रयोजन को भलीभाँति समझ सकते हैं।

मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन शोध-कार्य की एक नयी दिशा है। इसलिए इसमें जोखिम भी बहुत है। अपने पथ का स्वयं निर्माण करना होता है। और कभी-कभी तो इस नयी दिशा की पथरीली चट्टान पर चिंतन की धारा को काफी ऊँचे से छोड़ना होता है ताकि शोध क्रिया की ऊर्जा उत्पन्न हो सके। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जैनेन्द्र के शैली-तत्त्व के माध्यम से ही उनके मनोविज्ञान को शब्दबद्ध करने की चेष्टा की गयी है। यदि नये शोधकर्ता इस दिशा की ओर उन्मुख हों तो वे विभिन्न कवियों, कहानीकारों, उपन्यासकारों एवं नाटककारों का शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० सत्येन्द्र ने मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन को एक शोध-परियोजना के रूप में परिकल्पित किया। इसी योजना का यह प्रबन्ध प्रथम पुष्प है।

आशा की जाती है कि इस दिशा में आगे बढ़कर सर्वप्रथम हिन्दी के कृती उपन्यासकारों का शैलीतात्त्विक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकेगा।

परिच्छेद—१

जैनेन्द्र के उपन्यास एक सर्वेक्षण

१ परख (१६२६)

परख हिन्दी का पहला मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। कट्टो सत्यधन बिहारी, गरिमा आदि प्रधान पात्रो के मानस की गहराई म पैठने पर हम वहा एक सघष दृष्टिगत होता है। यह सघष हृदय और बुद्धि का है। हृदय यहा व्यक्ति स्वातन्त्र्य का तथा बुद्धि सामाजिक रूढियो की प्रतीक है। सत्यधन एक आदशवादी युवक है। वकालत उसने पास करली है लेकिन शुरू नहा की क्योकि उसके विचार म वकालत मे देश के सत्यानाश के अलावा कुछ भी धरा नही है। नगर के कोलाहल से दूर गाव मे वह एक सीधी सादी सभ्यता के व्यर्थ आडम्बर से अछूती गवई किशोरी की प्रतिमा को अपने मानस म प्रतिष्ठित कर लेता है। तभी एक दिन बिहारी अपनी बहिन गरिमा के विवाह की बात निश्चित करने आ पहुचता है। बुद्धि का एक झटका लगने पर सत्यधन गरिमा से विवाह करने का सहमत हो जाता है उधर सत्यधन की प्रेरणा से बिहारी व कट्टो विवाह-सूत्र म बध जाते हैं। यह परिणय दहिक न होकर आत्मिक है। जिस कट्टो को उसन अपने ही हाथ से दूर फेंक दिया था उसके महान त्याग का अनुभव (४० हजार के नोट हाथ मे देना) उसके मन को कचोटने लगता है। बिहारी और कट्टा भी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। बिहारी एक कृषक का जीवन व्यतीत करने किसी गाव को प्रस्थान कर जाता है। कट्टो अपने गाव जाकर बच्चियो को पढाने का काम सम्हाल लेती है।

परख की कथा क्रमिक एव सुसगठित है। कट्टो से लेखक की आत्मिक

जिज्ञासा को तृप्ति मिलती है। सत्यधन व्यावहारिक जगत की यथार्थता को प्रतिबिम्बित करता है। सत्यधन की दुर्बलता कट्टो के चरित्र को और निखार देती है। इसके विपरीत बिहारी जो कि नायक नहीं है अपने जीवन में सिद्धान्तों की दृढ़ता लिए हुए है। कट्टो और बिहारी के परिणय में लेखक ने एक नवीन भावना नूतन आदर्श प्रस्तुत किया है। भौतिकता को भेदकर आत्मिकता की गहराई में पैठकर परख के स्रष्टा ने जिस का निरूपण किया है उसके साथ सौन्दर्य और मंगल स्वतः खिंच आए हैं। दोनों में अपने स्व का दान ही है लेना कुछ नहीं।

२ सुनीता (१९३५)

जनेन्द्र के प्रथम उपन्यास परख में पात्रों के मानसिक विश्लेषण का प्राधान्य होने पर भी औपन्यासिक तत्वों की अवहेलना नहीं की गई परन्तु सुनीता में मनोविश्लेषण को ही अधिक महत्व देकर लेखक दार्शनिक बन बैठा है। सिद्धान्त-स्थापन के मोह में पड़कर उसने पात्रों को कठपुतलियों की भांति नचाया है। इस उपन्यास का केन्द्र हरिप्रसन्न है उसी को लेकर सब घटनाएं घटती हैं। वह एक क्रान्तिकारी है जो अपने मित्र श्रीकान्त के आमन्त्रण पर उनकी गृहस्थी में जाकर रहने लगता है। यहीं निरुपम रूपसी सुनीता से उसका परिचय प्रगाढ़ता में परिणत हो जाता है। इसी बीच श्रीकान्त कार्यवश कहीं बाहर चला जाता है तब हरिप्रसन्न सुनीता को अर्द्धरात्रि के समय अपने दलवालों के सान्निध्य में ले जाने का उपक्रम करता है जिससे कि वे उससे नारी के रूप में प्रेरणा ले सकें। ऐसे समय हरि का दमित काम अनायास ही फूट पड़ता है। वह अपने कर्तव्य को भूलकर सुनीता को समूची पा लेना चाहता है। सुनीता के निर्वसन सौन्दर्य दर्शन से हरि की दमित वासना शान्त होती है और वह सुनीता को उसके घर पहुंचाकर सदा के लिए पलायन कर जाता है। सुनीता जिसने पति के आग्रह से हरि की इच्छा के सम्मुख आत्म-समर्पण किया था, पूर्ववत् पति के प्रेम की पात्री बनी रहती है।

सुनीता में जनेन्द्र का लक्ष्य कहानी कहना नहीं है अतः पात्र भी कम हैं सुनीता हरिप्रसन्न और श्रीकान्त। इसमें कथा के सहज विकास का उतना ध्यान नहीं रखा गया जितना पात्रों के मानसिक विश्लेषण का। हरिप्रसन्न को हम एक साथ ही शिल्पी, कलाकार दार्शनिक और क्रान्तिकारी के रूप में पाते हैं किन्तु उसकी वास्तविक आकांक्षा का पता अन्त तक नहीं चलता। क्रान्तिकारी हरिप्रसन्न और उसके दल का उल्लेख होने पर भी उनके क्रिया-कलाप की कोई स्पष्ट रूपरेखा उपन्यास में नहीं है। रवि बाबू के घरे-बाइरे के सदीप

तथा हरिप्रसन्न का लक्ष्य एक ही है—एक ओर देश और दूसरी तरफ पराई स्त्री का प्रेम, परन्तु दोनो के वाय और माग भिन्न हैं। सदीप शक्तिशाली खलनायक है पर हरिप्रसन्न म शक्ति का स्फुरण नही है। भारतीय सभ्यता एव सस्कृति म जनेन्द्र ने ही इस प्रकार का यह पहला उदाहरण प्रस्तुत किया है, जहा एक मित्र ने दूसरे मित्र के जीवन को सहज करने के लिए अपनी स्त्री को साधन बनाया हो। सुनीता की दृष्टि पति पर बराबर है, परन्तु प्रेमी पर नही है ऐसा भी नही कहा जा सकता। इससे विपरीत घरे-बाइरे की विमला सदीप से हटकर अपने पति निखिलेश के प्रति एकनिष्ठ हो जाती है। परन्तु सुनीता हरिप्रसन्न की काम हिंसा को शात करने की चेष्टा जी जान से करती है।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के मत मे सुनीता और हरिप्रसन्न का व्यवहार कृत्रिम भाव प्रवणता के माध्यम से वासना का उद्रेक करता है जो उपन्यास की भूमिका के वक्तव्य के प्रति स्वय एक चुनौती है। पात्रो की मानसिक विकृतिया पर आध्यात्मिकता का आवरण चढाया गया है। सुनीता' के पात्रो की असाधारणता केवल एक आवरण के कारण है वह आवरण है एक अस्पष्ट भावात्मकता और गोपनीयता का। मैं उसे सच्चा आदशवाद नही कह सकता।[1]

जनेन्द्र के अपने शब्दो मे 'निस्सन्देह, जो 'घर और बाहर' म है, वही सुनीता मे भी है।—वही समस्या है। अनजाने ऐसा नही हो गया है जान बूझकर ऐसा हुआ है। किन्तु घर और बाहर की समस्या तभी तो बनी जब कि वह जगत की समस्या है। उसे उस रूप म रवि बाबू से पहले भी लिया गया। उन्होंने भी लिया है और पीछे भी लेंगे। घर को बाहर के प्रति निरभिलाषी एव विमुख होकर ही अपने को निष्पक्ष करना होगा। पर मेरे मन को समाधान नही मिला। मैंने 'सुनीता' मे अपनी बुद्धि के अनुसार दुस्साहस पूवक भी समस्या को ठेलकर आगे बढाया है। असल मे घर और बाहर मे परस्पर सम्मुखता ही मैं देखता हू।[2]

नरोत्तम नागर 'शुतुरमुग पुराण' लिखकर यह दिखाते हैं कि दमित इच्छाओ का विस्फोट ऐसी ही कृत्रिम प्रणालियो से होता है जिन्हें जैनेन्द्र जी रहस्यात्मक रूप देकर छिपाना चाहते हैं। वास्तव मे उपन्यास की मूल

---

१ हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, पृ० १६१ ६२ प्रथम सस्करण हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

२ साहित्य का श्रेय और प्रेय पृ० ११३, ११४ ११५ ११६ द्वितीय आवृत्ति १९६१।

समस्या स्वच्छन्द प्रेम और विवाह व्यक्ति एवं समाज के संघर्ष की है। उसमें समझौते का संगीत नहीं, विद्रोह का व्यंग्य है। 'सुनीता' में लेखक ने नारी के तन-मन के द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है, विवाह-बन्धन के भीतर रहकर नारी क्या अपनी प्रेममयी मूल प्रकृति को कुण्ठित नहीं कर रही है? उपन्यास में सामाजिक प्रतिबन्धों के साथ ही नारी-नर के सहज आकर्षण का भी निदान का प्रयत्न किया गया है। सुनीता के लिए घर भी महत्त्व रखता है और बाहर भी, पति भी और प्रेमी भी। इस प्रकार प्रेम के रूप में व्यक्ति और विवाह के रूप में समाज के संघर्ष की समस्या को उठाकर बिना स्पष्ट समाधान के उसे वहीं छोड़ दिया गया है।

३ त्यागपत्र (१९३७)

'त्यागपत्र' एक नारी के अतृप्त जीवन की करुण कहानी है जो सम्भवतः एक सच्ची घटना के आधार पर लिखी गई है। इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं प्रमोद और उनकी बुआ मृणाल। वास्तव में प्रमोद तो एक द्रष्टा व कथाकार है जो अपनी बुआ मृणाल की जीवन-कहानी कहता है। मृणाल बचपन में ही माता पिता से वंचित होकर अपने भाई के संरक्षण में रहने लगती है परन्तु भाभी के कठोर एवं कड़े अनुशासन के सम्मुख वह प्रसन्नचित्त व हँसमुख बालिका अपने आप में सिमटी सी सहमी-सी रहती है। उसे सहज स्नेह की झलक अपने भतीजे प्रमोद में मिलती है, वह उसके सुख-दुख का साथी है, उसी के आगे वह अपने जी की बातें कह पाती है। अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते समय उसे अपनी सहेली शीला के भाई से प्रेम हो जाता है, इस प्रेम की टोह लगते ही उसकी भाभी उसे निर्दयतापूर्वक पीटती है और फिर एक वृद्ध व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है। यौवन की प्रकृत उमंगों को दबाकर रखने एवं उनकी सहज अभिव्यक्ति न कर पाने से उसका जीवन अनिश्चय दुःखमय हो जाता है। स्वभाव से सरल होने के कारण वह एक दिन अपने प्रेमी के एक पत्र का उल्लेख पति से कर देती है जिससे वह अत्यधिक विक्षुब्ध हो जाता है और चरित्रहीनता का आरोप लगाकर उसे घर से बाहर निकाल देता है। ऐसी स्थिति में वह एक कोयले के व्यापारी के चंगुल में फँस जाती है पर कुछ समय बाद वह भी उसे छोड़ देता है। तब उसे आश्रय मिलता है निम्नतम स्तर के लोगों के बीच जहाँ उसे घातक रोग जकड़ लेता है। उसकी ऐसी ही शोचनीय अवस्था में उसके पास आ पहुँचता है उसका भतीजा प्रमोद जो उसे अपने घर ले चलने का आग्रह करता है। लेकिन मृणाल उसके पास न जाकर उससे बहुत-सा धनराशि की सहायता चाहती है जिसके द्वारा अपने आस-पास के

पतित लोगो का कुछ उद्धार कर सके। वह ग्रुग्रा की कुछ सहायता तो करता है, लेकिन फिर अपने व्यवसाय के चक्कर म पडकर उसकी कभी खोज-खबर नही लेता। इन्ही परिस्थितियो मे मणाल का देहावसान हो जाता है और तब प्रमोद आत्मग्लानि से आनात हो जजी से त्यागपत्र द देता है।

उपन्यास की सभी घटनाए मणाल के जीवन के इन गिद घूमती हैं। वह एक अतृप्त और अभुक्त वासना लिए हुए हैं, जो उसके जीवन मे एक अद्भुत गति एव शक्ति का सचार करती है। बूढे पति और कोयले वाले से उसका समझौता जीवन पर एक तीखा व्यग है। जनेन्द्र का जीवन-दशन गाधी नीति म परिलक्षित होता है। मनोविश्लेषण की शब्दावली म यह आत्मपीडन है। सचमुच जो शास्त्र मे नही मिलता वह ज्ञान आत्मव्यथा म से मिल जाता है। प्रस्तुत उपन्यास मे आत्म व्यथा म जीवन की शक्ति का मूल स्रोत माना गया है। कष्ट मे आनन्द की भावना पाना अहिंसा है। अनिच्छा स विवाह होने पर पति की दासी बने रहना अहिंसावाद या गाधीवाद का दूषित रूप है। श्री नन्द दुलारे वाजपेयी के मतानुसार उपन्यास का दोष मणाल के चरित्र की अति रजना और अस्पष्टता है।

'त्यागपत्र की शली मे वक्रता और तीखापन है जो कभी कभी असह्य हो जाता है। मणाल का कोयले वाले के साथ भाग जाना खटकता है और अस्वा भाविक जान पडता है। मणाल म असाधारणता है। डा० नगेन्द्र की दृष्टि मे जनेन्द्र की शैली सचेत है जागरूक है। सर एम० दयाल का जजी से त्यागपत्र उपन्यास शिल्पी का अद्भुत कौशल है। वास्तव मे त्यागपत्र एक भयानक और हृदय को त्रस्त कर देने वाली जीवन की दुखान्त विभीषिका के रूप मे उपस्थित किया गया है। उसके चरित्र की मूल भावना उसके अपने शब्दो मे मिल जाती है मैं समाज को तोडना फोडना नही चाहती हू। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या कि किसके भीतर बिगडेंगे ? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हू कि समाज से अलग होकर उसकी मगलाकाक्षा म स्वय ही टूटती रहू।

यह सामाजिक विधान पर तीखा व्यग तो है पर इससे व्यक्तिगत कुण्ठा का समाधान नही होता। मणाल और प्रमोद की अशक्तता खीज और निराशा, हताश मन स्थिति की उपज और ह्रासोन्मुख सस्कृति की दन है। मानसिक रोग अव्यवस्था तथा विकृत समाज का वरणन है। इसकी भाकी प्रस्तुत उप न्यास मे मिलती है। यह मध्यवर्गीय सामाजिक समस्या के आधार पर खडा किया गया है जिसम व्यक्ति पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण प्रेम की चरम परिणति विवाह म देखना चाहता है परन्तु समाज उसके इस आदर्शवाद के

मार्ग में बराबर बाधा ही उपस्थित करता है। विषम विवाह अथवा विफल प्रेम उपन्यास की मूल समस्या है।

४ कल्याणी (१९३९)

कल्याणी की कहानी में परिस्थितियों के बंधन में जकड़ी हुई एक नारी का करुण क्रन्दन सुनाई देता है। कल्याणी असरानी डाक्टरनी है तथा उनके पति मि० असरानी डाक्टर हैं। कल्याणी का उदार मन रूढ़ियों के बंधन में न बंधकर मुक्त वातावरण में पनपना चाहता है। डाक्टर असरानी में रूढ़िवादी संस्कार बड़ी दृढ़ता से जड़ जमाये हुए हैं। वह चाहते हैं कि श्रीमती असरानी आदर्श गृहिणी बनें। कल्याणी स्वयं भी गृहस्थी बन कर रहना चाहती है, परन्तु गृहस्थी की आर्थिक स्थिति उनसे परिश्रम की अपेक्षा करती है। उनकी समस्या यह है कि उनका विवाह और डाक्टरी पत्नीत्व एवं निजत्व परस्पर मेल नहीं खाते। डाक्टरी के सिलसिले में उन्हें अच्छे-बुरे सब प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आना होता है। डा० असरानी पत्नी के प्रति बड़े शंकालु एवं सन्देहशील रहते हैं। एक दो बार कल्याणी पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाकर वह उन्हें निर्दयतापूर्वक पीटते भी हैं किन्तु विवाह में बंधकर उसकी मर्यादा को मानकर चलने के प्रयत्न में कल्याणी पति के निर्मम अत्याचार का प्रतिवाद न करती हुई, मूक भाव से सब सहन कर लेती है। पति उन्हें घर की आर्थिक सम्पन्नता का साधन बनाए रखना चाहते हैं। पर साथ ही उनका स्वतंत्र आचरण उन्हें सहन नहीं है। पति की इच्छा के सम्मुख अपने निजत्व को बरबस दबाये रखने के प्रयत्न ने उनके जीवन को अतिशय दुःखमय बना दिया है। अपने जीवन के समस्त असन्तोष, कष्ट एवं सन्ताप को लिए वह सदा के लिए मूक हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में जैनेन्द्र आधुनिक नारी की समस्या को लेकर चले हैं। कल्याणी विलायत से डाक्टरी पास करके आती है और पति के साथ रहकर डाक्टरी करती है। उसके सम्मुख एक ओर विलायती वैभव विलास और शिक्षा संस्कृति की भौतिक चकाचौंध है और दूसरी ओर भारतीय गृहस्थी का प्राचीन आदर्श। इन दोनों विरोधी आदर्शों की विषमता के संघर्ष में पिसते हुए वह स्वयं समाप्त हो जाती है। कल्याणी के जीवन की समस्या उनके अपने शब्दों में मिल जाती है "विवाह से पहले मैं मुक्त थी। विवाह बिना मैं रह सकती थी। मेरा बोझ मुझसे उठ सकता था। विवाह से स्त्री पत्नी बनती है। पत्नी यानी गृहिणी। पत्नी से पहले स्त्री कुछ नहीं होती, बस वह कन्या होती है। पर मैं कुछ थी। निरी कन्या न थी, डाक्टर थी। अब सवाल है मेरी शादी और मेरी

डाक्टरी, मेरा पत्नीत्व और निजत्व ये परस्पर कैसे निभें ?" इससे स्पष्ट है कि उसका व्यक्तित्व दुविधाग्रस्त है और उसका चरित्र अस्पष्ट है।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है 'जनेन्द्र अपने पात्रो का सुस्पष्ट व्यक्तित्व नही देते, न उनके जीवन मे सुख दुख को सुलझे हुए रूप म हमारे सामने रखते हैं। इससे होता यह है कि उनके पात्र एक बडी हद तक रहस्यवादी बने रहते हैं। पात्रो का व्यक्तित्व और उनकी समस्या ही ठीक तरह से समझ म नहीं आती। यह अस्पष्टता यो तो उनके प्राय सभी उपन्यासो मे है पर 'त्यागपत्र और कल्याणी म इतनी बढ़ी हुई है कि पाठक किसी निर्णय पर पहुच ही नही पाता।'[३]

५ सुखदा (१९५२)

'सुखदा' म क्रान्ति की कथा वर्णित हुई है परन्तु यह सच है कि उसमे क्रान्ति का गौरव प्रकट नही हुआ है। सुखदा एक सम्पन्न घराने की लाडो मे पली लडकी है। उसका विवाह उसके माता पिता के स्तर से थोडा उतरकर एक सहृदय व्यक्ति स होता है। आर्थिक दृष्टिकोण के वैषम्य के कारण पति पत्नी म मनोमालिन्य बढने लगता है। सुखदा का नौकर गगासिह एक दिन काम छोडकर चला जाता है और उसके दूसरे-तीसरे दिन वह पत्रो म उसके चित्र देखती है कि वह एक क्रान्तिकारी है और गिरफ्तार कर लिया गया है। उसके कारण देश मे एक बिजली दौड जाती है। सुखदा का जीवन भी सहसा एक नई दिशा पकड लेता है और वह क्रान्ति की ओर मुड पडती है। पति के प्रति वितृष्ण होकर वह सार्वजनिक जीवन म प्रविष्ट होती है जहा वह हरीश के सम्पर्क मे आती है जो उसके मन म यह भावना उत्पन्न करता है कि नारी एक शक्ति है और देशोद्धार के लिए उसका सहयोग अनिवार्य है। इसी सिलसिले म वह हरीश के साथी लाल के सम्पर्क म भी आती है जो उसके सौन्दर्य के प्रति आसक्त है, किन्तु उसके सबध मे दलवालो की अच्छी धारणा नही है। सुखदा लाल के प्रेम म विभोर हो उठती है परन्तु वह उसे छोडकर चला जाता है। इसी बीच हरीश दल भग करने का निश्चय करते हैं—कारण है गाधीवाद। हरीश अपने मित्र कान्त को, जो कि सुखदा का पति भी है प्रेरित करते हैं कि वह उन्हे गिरफ्तार करवा के पुलिस से ५००० रुपये का इनाम ले ले। कान्त यत्रचालित-सा ऐसा करके रुपए लाकर सुखदा को दे देते है। पति के इस व्यवहार से सुखदा के मन को इतना भयकर आघात पहुचता है कि वह

३ हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, पृ० १६२।

उन्हें छोड़कर अपनी मां के पास चली जाती है और फिर क्षयग्रस्त होकर अस्पताल में पहुंच जाती है।

इस प्रकार 'सुखदा' का समस्त वातावरण नैराश्य और कुंठा की भावनाओं से आक्रान्त है। यथार्थ से यह बहुत दूर है—सामाजिक यथार्थ से भी और वैयक्तिक यथार्थ से भी क्योंकि न यह समाज के प्रति सच्चा है न व्यक्ति के प्रति। जीवन कहीं उसमें है ही नहीं। जनेन्द्र की रचनाओं में अन्तर्जगत की कथा है। सुखदा की अतृप्ति और लालसा ने ही उसके सभी कार्यों की गति को निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार वह भाव-जगत् की नायिका है कर्मजगत् की नहीं। पात्रों की दृष्टि से यह उपन्यास निष्फल है। इन पात्रों का स्वतन्त्र अस्तित्व है ही नहीं वे तो केवल अपने नियन्ता के निर्देश में परिचालित होते हैं। इस उपन्यास के पात्र न केवल विलक्षण हैं वरन् वे जीवित हाड़ मांस के ही नहीं हैं। वे केवल अमूर्त विचार हैं जिनके आधार पर कुछ घटनाओं को खड़ा कर दिया गया है। नैराश्य के इन पुजारियों के सम्मुख अन्धकार है निविड़ अन्धकार ! पर अंधकार में जीवन कब पनप सका है ? इसीलिए क्या वह उचित नहीं है कि वे प्रकाश में आयें जहां जीवन है उद्दाम जीवन दुर्दमनीय स्फूर्ति—जीवन की यह लौ कब बुझी है ?

६ विवर्त (१९५३)

सुखदा की कहानी से बहुत कुछ मिलती-जुलती कहानी विवर्त की है। जितेन एक अंग्रेजी पत्र के सम्पादकीय में काम करता है। भुवनमोहिनी एक धनी मानी व्यक्ति की लड़की है। भुवनमोहिनी को जितेन से प्रेम है और वह उससे विवाह करना चाहती है। परन्तु आर्थिक वैषम्य को लेकर दोनों में झगड़ा हो जाता है और मोहिनी उससे विवाह करने से इनकार कर देती है। तत्पश्चात उसका विवाह बैरिस्टर नरेशचन्द्र से सम्पन्न हो जाता है और दूसरी ओर जितेन क्रान्ति की राह पर चल पड़ता है। मोहिनी के विवाह के चार वर्ष बाद अकस्मात जितेन एक क्रान्तिकारी के रूप में एक मेल ट्रेन को उलटकर उसके घर शरण लेने के लिए आता है। वह घायल हुआ है और कुछ दिन मोहिनी के घर रहकर उसकी सेवा-सुश्रूषा से स्वास्थ्य लाभ करता है। जाते समय वह उसके आभूषण ले जाता है जिन्हें कि उसके साथी बेचकर नकद बनाने का सुझाव प्रस्तुत करते हैं पर वह सुझाव प्रस्तुत करता है कि भुवनमोहिनी को उड़ा लाया जाए और उससे पचास हजार रुपए लेकर उसके आभूषण लौटा दिये जायं। मोहिनी को पकड़कर लाने पर वह उसके सामने पचास हजार रुपयों की मांग करता है परन्तु वह ऐसा करने में असमर्थता जताती

है। फिर अपने प्रेम के वशीभूत होकर जितेन के पैर पकडकर उन्हे चूमती है और उससे दया की याचना करती है। इससे जितेन इतना द्रवित हो उठता है कि अपने समस्त दल के भरण-पोषण का भार मोहिनी पर छोडकर स्वय पुलिस को आत्मसमर्पण कर देता है।

यह एक पराक्रमी पुरुष की कहानी है जो अपराध की राह पर चल पडता है। इसमे विषम विवाह अथवा विफल स्नेह के आधार पर मानवीय भावो का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। उपन्यास के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि अपराध व्यक्ति के स्वभाव का नही है। मानो कही दवाव है, ग्रथि है विवर्त है जिसके कारण स्वभाव विभाव को अपना लेता है। सामाजिक दवाव, मानसिक दवाव मानसिक ग्रथि भावात्मक विवर्त ही स्वभाव को विकृत बना देते हैं।

'विवर्त' मे भारतीय क्रान्तिकारियो का वर्णन है परन्तु क्रान्तिकारियो का जो जीवन उनका जो दर्शन जनेन्द्र ने प्रस्तुत किया है वह हमारे ज्ञात इतिहास से मेल नही खाता। यह उपन्यास कालातीत और काल निरपेक्ष है। काल निरपेक्षता उपन्यास का गुण कदापि नही हो सकता क्योकि उसका सबसे बडा बल मानवता है और मानव-जाति निरपेक्ष नही हो सकती। जनेन्द्र जीवन की ऐहिक समस्याओ की चिन्ता नही करते उनके लिए भाव-जगत् ही चिरन्तन समस्या है।

७ व्यतीत (१६५३)

'व्यतीत' आत्मकथात्मक शैली मे लिखी गई कहानी है जिसमे नायक जयन्त के अतीत अनुभवो को वाणी दी गई है। हृदय तथा बुद्धि आदर्श भावना जगत् और व्यावहारिक जगत् के सघर्ष मे निरन्तर जूझते रहने के बाद जयन्त के हाथ लगती है केवल जीवन की व्यर्थता की भावना। इस जीवन की घोर असफलता उसे जड बना देती है। अपने जीवन की परिस्थितियो से परास्त होकर वह यह सोचने को विवश हो जाता है कि 'जीवन व्यर्थ भार ही है। क्यो कही क्से कभी देकर खो नही सका, ताकि कुछ पा जाता और यो भटकता न फिरता। लेकिन सुनता हूँ दूसरा भी जन्म है। अब तो उसी मे आस है।'[४] जयन्त के सम्मुख न कोई वतमान है और न ही भविष्य विगत की स्मृतियो के सहारे वह जी रहा है। आर्थिक विपन्नता उसे कितना निष्क्रिय बना देती है, यही भावना उसके मन को घुन की तरह खाती रहती है। वह कवि है उसमे

४ व्यतीत पृ० १६६ ७०।

भावना की गहराई है लेकिन उसके भाव-जगत् की आन्तरिकता व्यावहारिक जगत् की यथार्थता से मेल नहीं खाती जिसके फलस्वरूप अपने जीवन से निराश होकर वह समाज और उसकी व्यवस्था पर तीखे व्यंग्य कसता है।

वह अनिता और चन्द्रकला (चन्द्री) को लेकर उलझन में पड़ जाता है। चन्द्रकला से विवाह करने का निश्चय भी हो जाता है। अनिता से उसका गहरा स्नेह है। इसी उधेड़बुन में पड़कर वह पैंतालीस वर्ष बिता चुकने पर जीवन की व्यर्थता का बोध पाता है जो चारों ओर से उसकी शिरा शिरा को बेधकर उसे जर्जर कर देती है। हिसाब की दुनिया में कवि का जीवन असंगत है। चन्द्री से उसका विवाह हो जाने पर अनिता के उछाह की सीमा नहीं रहती। लेकिन चन्द्री जयन्त पर पूर्ण अधिकार चाहती है इसी कारण दोनों में दुराव पैदा हो जाता है। अनिता का प्रेम और चन्द्री से विवाह विषम विवाह की समस्या को उपस्थित करता है। जयन्त अन्त में स्वयं को निपट अकेला पाता है जब दोनों उसके जीवन से चल देती हैं तो वह अनुभव करता है आत्मा अकेला आता अकेला जाता है बाकी बीच का झमेला ही तो है। चलो झमेला कटा राह साफ हुई आगे उसका अन्त भी साफ दीखता है।[५] जीवन की व्यर्थता की भावना घनी हो जाती है जो जयन्त की जीवन-कहानी का सार है उपन्यास का सार है और आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति का परिणाम है। कथानक शिथिल होते हुए और चरित्र चित्रण क्षीण होने पर भी व्यर्थता का भाव लेखक के मन को जकड़ रहता है और यही बार-बार उभर कर सामने आ जाता है।

८ जयवर्धन (१९५६)

जैनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि में जयवर्धन एक भिन्न व्यक्तित्व रखने वाला उपन्यास है। इसमें पचास साल बाद के भारत का एक कल्पना चित्र जय और इला की कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास को एक विशुद्ध राजनीतिक उपन्यास कहा जा सकता है क्योंकि देश की राज-व्यवस्था और शासन-स्तरीय गतिविधि पर तात्त्विक चिन्तन और विश्लेषण प्रस्तुत करना ही इस उपन्यास का मुख्य विषय है। यह उपन्यास डायरी शैली में लिखा गया है और डायरी लिखने वाले हैं विलबर ल्हूस्टन। डायरी शैली और दीर्घकलेवरता की दृष्टि से यह उपन्यास जैनेन्द्र के उपन्यासों में एक पृथक् अस्तित्व रखता है। इस प्रयोग के प्रति स्वयं लेखक के मन में शंका है जयवर्धन पाठक के पास आता रहा है पर वह नहीं सकता कितना वह

५ व्यतीत पृ० १२६।

पयास सिद्ध होगा। प्रयोग की दृष्टि से इसे अभिनव कहा जा सकता है कतु चित्रण की अविश्वसनीयता के कारण यह उपन्यास उस ऊंचाई को प्राप्त ही कर सका जिसका दावा प्रकाशक ने किया है बेकेन, ग्रुएन, मॉलरा म्मू जहा चुक गये, ज्यां पाल सार्त्र जहा रह गये—वही से अगले सोपान का आरम्भ है जनेन्द्र की यह कालजयी कृति—जयवधन।'

इस उपन्यास की कथा का केन्द्र बिन्दु है—राष्ट्राधिप जयवधन। अन्य प्रमुख बिन्दु हैं—आचाय स्वामी चिदानन्द, तथा एलिजाबेथ जिसे सक्षेप म लेजा भी कहा गया है। ये भिन्न भिन्न राजनीतिक विचारधाराओ का प्रतिनिधित्व करते हैं। आचाय गाधीवाद का स्वामी चिदानन्द भारतीय सस्कृति के पुनरुत्थान तथा राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ की हिन्दूवादी नीति का नाथ और लिजा वामपन्थी—विशेष रूप से साम्यवादी विचारधारा का। जयवधन मे नेहरू के व्यक्तित्व का आभास है और आचाय मे गाधीजी की रीति नीति देखी जा सकती है। हर पार्टी जयवधन को अपदस्थ करने की चेष्टा करती है। जयवधन की आर्थिक सामाजिक वदेशिक नीतियों तथा शासन व्यवस्था से उनका कहा कसा और किन बातो पर विरोध है और उनकी नीतिया क्या हैं?—इनका कही भी वणन स्पष्ट रूप से उपन्यास म नही आया है। विरोध का जो स्पष्ट उल्लेख हुआ भी है, वह इला और जयवधन के सबध को लेकर ही। इला आचाय की पुत्री है और जयवधन की प्रेमिका। दोना साथ साथ एक ही महल म रहते है लेकिन विवाह नही करते क्याकि आचाय की अनुमति उन्ह प्राप्त नही है। दोनो का प्रेम वासनाविहीन (प्लटानिक) प्रेम का आदश है। मिस्टर हूस्टन को सभी पात्रा का विश्वास प्राप्त है। जयवधन विभिन्न दना के सदस्यो को एकत्रित कर उनके सम्मेलन म उयुक्त शासन व्यवस्था का भार सौंप कर बिना बताये एकाएक सब-कुछ छोडकर चला जाता है और कह जाता है कि जब तक सम्मेलन कोई निणय नही कर पाये आचाय के निर्देशन स शासन का सचालन हो। अन्तत वह इला से विवाह भी कर लेता है किन्तु विवाह के अगले ही दिन उसे भी छोडकर पलायन कर जाता है। इस प्रकार जयवधन' भी जनेन्द्र के अन्य उपन्यासा की तरह प्रेमी पात्रा की परम्परा मे ही आ जाता है—स्त्री से प्रेम करना और उस पाने के समय छोड कर भाग जाना।

इस प्रकार यह उपन्यास कला की दृष्टि से तो उपन्यास बन ही नही पाता क्योकि इसकी कोई कथा नही जिसके सघष म पात्रो का चरित्र, कथा की घटनायें और विचार उभरे हो। चरित्र जस है वसे ही बने रहते हैं—लेखक के हाथ की निर्जीव कठपुतली-से। इनमे चरित्र निर्माण का अभाव है।

कथा अत्यन्त नीरस है और अस्पष्ट उलझे हुए दार्शनिक स्तर के राजनीतिक चिन्तन में पाठक उलझ कर कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकाल पाता। चिन्तन की दृष्टि से भी यह कोई मौलिक कृति नहीं कही जा सकती क्योंकि इसका सारा चिन्तन पुराना है राज-व्यवस्था के ट्रस्टीशिप का चिन्तन। अन्त में बिना किसी निश्चय के बीच में ही शासन भार को छोड़कर जयवर्धन के चले जाने से उपन्यास का अन्त तो कहीं भी ले जाकर नहीं छोड़ता। प्रस्तुत उपन्यास भविष्य की गलत तस्वीर तो पेश करता ही है वर्तमान का भी सही चित्रण नहीं कर पाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि जैनेन्द्रजी के लिए उपन्यास एक विवशता है जिसे वे अपने विचारों के प्रकाशन के लिए उसकी लोकप्रियता के कारण अपनाते हैं। समसामयिक समस्याओं के प्रति उपन्यासकार में जागरूकता है और वह उन्हीं समस्याओं को अपने ढंग से विवेचित करता है। इस प्रकार उनके उपन्यासों में कथ्य ही प्रधान है पर उस कथ्य के परिधान के लिए वे अधिक चिन्ता नहीं करते। सहज और जटिलता दोनों ही उनमें हैं। यदि कोई सहजता को सराहता है और जटिलता में उलझ जाता है तो लेखक की कला से।

श्री यशपाल ने जयवर्धन पर विस्तार से विवेचन किया है और इसकी वैचारिक असंगतियों पर भरपूर प्रकाश डाला है। अपने निबन्ध के अन्त में वे जयवर्धन की भाषा-शैली पर इस प्रकार लिखते हैं जयवर्धन पढ़ने में श्रम को उसकी भाषा और भी कठिन कर देती है। भाषा सामाजिक अभिव्यक्ति का साधन है। उसे सुलभ और सुबोध बनाये रखने के लिये ही व्याकरण की आवश्यकता हुई है। भाषा के अन्य प्रयोगों और नियमों की अवहेलना अहम् और स्वरति की उच्छृंखलता मात्र है। इस अन्तिम वाक्य से मैं अपनी किंचित् असहमति प्रकट करना चाहता हूँ। यहाँ भाषा के नियमों की बात बड़ी कठोरता से कही गई है और उस पर अहं और स्वरति का भी आरोप लगाया गया है। आंशिक रूप से यह बात जैनेन्द्र में हो सकती है किन्तु इसका यह मन्तव्य नहीं है कि कोई लेखक भाषा में नये प्रयोग न करे। यदि भाषा को सामान्य अभिप्राय से लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ की ओर ले जाना है तो लेखक को बहुत-कुछ छूट देनी ही होगी। भाषा के सम्बन्ध में जैनेन्द्र एक प्रयोक्ता रहे हैं और उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नयी उठान एवं निखार दिया है। ऐसी स्थिति में उन पर अहं और स्वरति का आरोप लगाना समीचीन

---

६ विवेक के रंग सं० डा० देवीशंकर अवस्थी पृ० २८४।
प्रथम संस्करण १९६५ भारतीय ज्ञानपीठ बनारस

प्रतीत नहीं होता।

६ मुक्तिबोध (१९६५)

मुक्तिबोध' जनेन्द्रजी का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है। इसका कथानक सीधा सरल और सपाट है चूंकि सहाय अपनी कहानी को आत्मकथात्मक शैली में कहते हैं इसलिए उनका जीवन चिन्तन, मनन एवं कर्म के माध्यम से सर्वाधिक मुखर हुआ है। वे चिन्तन, मनन के अधिक निकट हैं, कर्म उनमें स्वतःस्फूर्त नहीं है। कभी वे ठाकुर द्वारा कभी नीलिमा द्वारा और एकाध अवसर पर राजश्री एवं भानुप्रताप द्वारा परिचालित दिखाए गए हैं। सहाय का जीवन आड़ी तिरछी रेखाओं में प्रभावित नहीं होता। उनका सुस्पष्ट जीवन-दर्शन है। वे गांधीवाद से भी हल्के रूप में प्रभावित हैं। राजश्री पूरे अर्थों में पति की अनुगता है यह जहां मतभेद भी रखती है वहां भी वह पूरी छूट देती है कि वे अपनी मनचीती करें। वह पति को प्रेरणा-दात्री प्रेयसी तक स्वयं टेलकर पहुंचाती है। उधर नीलिमा में भी अद्भुत मर्यादा-बोध है, वह सहाय के चाहने पर भी उन्हें शराब नहीं पिलाती क्योंकि पहली बार उन्हें पिलाकर वह अपने सिर पर पाप मोल नहीं लिया चाहती। सहाय का लड़का वीरेश्वर, उनका तीव्र आलोचक है वह उनके खोखले आदर्शवाद पर डट कर प्रहार करता है। इधर कुंवर भी अपने श्वसुर साहब के प्रताप एवं प्रभाव का लाभ उठाना चाहता है और इसीलिए वीरेश्वर के प्रति सदय बनता है। उसके मन की भूख और महत्वाकांक्षा को वह खूब समझता और उसी के माफत वह सहाय का प्रभावित करना चाहता है, पर सहाय हैं जो उसे हाथ तक नहीं रखने देते और बड़ी निर्ममता एवं बेलागपन का परिचय देते हैं। अंजलि के आंसू उन्हें पिघला नहीं सकते उसकी गलबहियां उन्हें प्रभावित नहीं कर पातीं क्योंकि वे मिनिस्टर बनने वाले हैं और ठाकुर ने उन्हें समझा रखा है कि वे कुंवर के जाल में न फंसें क्योंकि ये दिन बड़े निर्णायक हैं।

कुल मिलाकर यह एक पारिवारिक कहानी ही लगती है जिससे पति-पत्नी के सम्बन्ध मित्र मित्र के सम्बन्ध, पिता-पुत्र एवं पुत्री के सम्बन्ध एवं श्वसुर जामाता के सम्बन्ध और सर्वोपरि रूप में प्रेमस प्रेयसी के सम्बन्धों के बारे में लेखक अपना मन्तव्य प्रकट करना चाहता है नीलिमा के पति दर ऊपर-ऊपर या बाहर-बाहर ही रहे हैं उनका व्यक्तित्व कहीं भी नहीं उभर पाया है। वे एक-दूसरे (पति-पत्नी) से आजाद हैं। यह क्या लेखक के द्वारा आगामी मानवीय सम्बन्धों की भूमिका है?

कम-से कम इतिवृत्त के साथ जनेन्द्र के उपन्यास आरम्भ होते हैं और प्रबुद्ध

कृति है और कि इसे उपन्यास कहने में पाठक को जितनी कठिनाई होती है उतनी ही समीक्षक को ऊहापोह की अनुभूति होती है। ऐसी कृतियों से जनेन्द्र अपने उन आलोचकों की चुनौती को ही नकारात्मक रूप में स्वीकार कर रहे हैं जिनका यह कहना है कि कथाकार जनेन्द्र चुक गए हैं और हर प्रौढ़ कलाकार की तरह वे अपने आपको दुहराने लगे हैं यद्यपि इस वृत्ति से औसतन नए उपन्यासकार को भी बरी नहीं किया जा सकता।

यहां प्रश्न यह उठता है कि हर कथाकार अपने आपको दोहराता क्यों है? इस प्रश्न का स्पष्ट ही यह उत्तर दिया जा सकता है कि हमारे कथाकारों की जीवनानुभूति बहुत ही सीमित एवं सकुचित होती जा रही है। जीवन के विराट प्रसार से एवं बहुरंगी वैविध्य से उनका सम्पर्क नहीं रहा। नया उपन्यासकार यह सोचता है कि होटल और रेस्तरां की दुनिया में सारा हिन्दुस्तान सिमट आया है! जनेन्द्रजी फोन और ट्रंक-काल करके ही आधुनिकता से अपना सान्निध्य सिद्ध करना चाहते हैं। प्लेन में उड़कर और वातानुकूलित रूम में बैठकर उन्हें आधुनिकता की अनुभूति हो जाती है। आबू पर्वत पर इन प्राणों का जो संगम हुआ है वहां के जीवन की झलक इस उपन्यास में लेशमात्र भी नहीं है। आबू के प्राकृतिक अंचल की छवि और परम्परागत कला की झांकी भी इस उपन्यास में विरल है। ऐसा प्रतीत होता है कि वनानी के स्थान और राज्यपाल के राजकीय निवास तक ही आबू का जीवन सीमित हो गया है। आबू रोड का भी प्रासंगिक रूप में ही जिक्र आया है। यह कहा जा सकता है कि जो लेखक मन की सूक्ष्मवृत्तियों का चितेरा हो उसे जीवन के इन बाह्य आयामों से क्या प्रयोजन है किन्तु इस उत्तर से हमारी चेतना को समाधान नहीं मिलता। सूक्ष्म चिन्तन में भी चारों ओर का परिवेश एक स्वाभाविक दीप्ति ला सकता था और तब उपन्यास का चित्र अधिक विश्वसनीय भी होता। किन्तु जनेन्द्रजी तो ट्रंक काल पर बम्बई, कलकत्ता नैनीताल और माउंट आबू को जोड़ देते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में जीवन का एक सतही चित्र अपनी सम्पूर्ण व्यावहारिक कृत्रिमता को लेकर उभर आता है और पाठक कदम-कदम पर 'बोर' होने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो लोग दिल-बहलाव के लिए उपन्यास पढ़ते हैं वे तो इसे चार-पांच पृष्ठ पढ़कर ही छोड़ देंगे और जिन पाठकों को जनेन्द्र की मनस्विता एवं विचारशीलता में आस्था है वे भी धीरज के पहाड़ को छाती पर रखकर ही इस औपन्यासिक कांतार को पार कर सकेंगे। जनेन्द्र का औपन्यासिक शिल्प एवं उनका मनोविश्लेषण अब एक ऐसी सीमा पर आ गये हैं, जहां जीवन की ऊष्णता का सर्वथा अभाव है एवं वैचारिक ऊहापोह ही, जो कि

अनेक स्थलों पर कोरा वाग्विलास ही बनकर रह गया है, पाठक को झुंझलाहट तक की स्थिति तक पहुंचा देता है।

यदि हम जनेन्द्र के संपूर्ण औपन्यासिक परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखकर विचार करें, तो अनन्तर में कोई नवीनता नहीं है। जनेन्द्र जिस बात का आरम्भ में ही कहते आ रहे हैं उनकी ही एक पुनरावृत्ति प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है। आरम्भ में जब लेखक पत्नी से विदा होकर अपरा के साथ कूपे में यात्रा करता है तब पाठक का कौतूहल कुछ उद्दीप्त होता है किन्तु यही अपरा आबू पर्वत के जीवन में जब परिचारिका एवं सेविका के स्तर पर उतर आती है और अन्त में यही नारी जब आदित्य के साथ अहमदाबाद और बम्बई की ओर उड़ चलती है, तो उसके इन तीनों रूपों में कोई अन्तर्धारा प्रवाहित होती हुई नहीं लगती। यों मुझे यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि अनन्तर में जो नारीपात्र पाठक को सर्वाधिक प्रभावित करता है, वह अपरा ही है, पर उसके चरित्र में तारतम्य का अभाव है और उसके व्यवहार में संगति की जगह असंगति ही अधिक प्रबल है। अपरा जैसी असामान्य नारी के लिए इस प्रकार का आचरण कोई बहुत विस्मयकारी बात तो नहीं है, किन्तु उसके व्यवहार में यह बात पुनः पुनः रेखांकित होती है कि वह एक खंडित व्यक्तित्व की नारी है और जीवन को भोगने के लिए या जैसे जीवन को 'सामान्य' बनाने के लिए वह कृतसंकल्प है। जहां तक स्वयं लेखक का प्रश्न है उसकी पत्नी और पुत्री का प्रश्न है जामाता का प्रश्न है इन सब पात्रों को असामान्य बनाने में अपरा की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। हमारे समाज में एक स्वेच्छाचारिणी नारी को लेकर जो भी प्रतिक्रियायें व्यक्त हो सकती हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति रामेश्वरी और उसकी पुत्री चारू के व्यवहार में मुखरित हुई है।

अपरा की तुलना में वनानी एक सशक्त नारी पात्र है। वह जिस निष्ठा से शांतिधाम की योजना को कार्यान्वित करना चाहती है उससे एक प्रबल आदर्शवाद की अभिव्यंजना होती है, किन्तु आज के इस यथार्थ-संकुल युग में उसके आदर्शवाद का क्या मूल्य है? अततः उसका आदर्शवाद भी समझौता करता हुआ-सा प्रतीत होता है और तब हम सोचने लगते हैं कि हमारी राजनीति, हमारा दर्शन, सभी सुविधा पर आश्रित हैं और कि अर्थचक्र इतना प्रबल है कि वह अपने कुंजल्क में किसी को भी नहीं छोड़ता। आदित्य के अर्थचक्र में विचारी वनानी का आदर्शवाद छटपटाता-सा प्रतीत होता है और यह भी कितना प्रबल व्यंग्य है कि उसे आर्थिक सहायता एवं सहानुभूति एक ऐसी नारी से मिलती है जिसको स्वयं वनानी कोई बहुत अच्छा नहीं समझती और जिसको स्वीकार करने में भी उसे हिचकत-सी महसूस होती है। यह वनानी के व्यक्तित्व

पर अपरा के व्यक्तित्व की विजय है। प्रकारान्तर से आदर्शवाद पर यथार्थवाद की विजय है। वनानी का अहम्, उसका तीखा व्यक्तित्व, जो आरम्भ में उभरता नजर आता था, वही अन्त में पराजित होता है। पाद और सामन्ती पर भी अपरा ने जो जादू की छड़ी घुमाई है और उन्हें भी एक स्त्रियाणी हिन्दू नारी के स्तर से ऊँचा उठाकर एक मुक्त मानवीय गरिमा प्रदान की है, उससे अपरा के व्यक्तित्व की विजय-दुन्दुभि ही अन्त में बजती हुई-सी प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपरा ही लेखक के कथ्य की संवाहिका है।

एक बात यहाँ और स्पष्ट करना होगी कि वनानी के शान्तिधाम सम्बन्धी योजना में हुए सम्बन्धों के अन्तिम अवस्था की भी अनुगूंज सुनाई पड़ती है। प्रसाद के गवाक्षों में आत्म-स्थापना का दौर चला था वह यद्यपि अपना अनुशासन सिद्ध कर चुका है फिर भी उसका अंश कहीं न कहीं कथाकारों की कृतियों में अपने आपको अभिव्यंजित करता हुआ-सा प्रतीत होता है। इस तरह और यह बात है कि शान्तिधाम की योजना केवल सूक्ष्म हो रही है, उसका प्रथम विस्तार और कार्यक्रम तथा अन्तिम उद्देश्य पाठक के सामने नहीं आ पाया। लेखक की ओर से केवल चलताऊ विवरण ही दिया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से इस शान्तिधाम की निरर्थकता से लेखक भी आश्वस्त है।

पुरुष-पात्रों में सागर और उसके जामाता प्रान्तिय के समानान्तर ही गुरु आनन्दमाधव का व्यक्तित्व भी आदि से अन्त तक चलता है। जो लोग जैनेन्द्र के जीवन से परिचित हैं उन्हें गुरु आनन्दमाधव के व्यक्तित्व में यदि महात्मा भगवानदीन की प्रतिध्वनि सुनाई पड़े तो यह कोई आश्चर्य की बात न होगा। गुरु आनन्दमाधव सम्पूर्ण उपन्यास के व्यवहार की दृष्टि से संयोजन-सूत्र भी कहे जा सकते हैं। व्यवहार की दृष्टि से मैंने इसलिए कहा कि विचार की दृष्टि से उपन्यास की बागडोर स्वयं लेखक और अपरा के हाथों में सम्भली हुई है। मान्य राज्यपाल का जो उल्लेख आया है उसमें भी स्वर्गीय सम्पूर्णानन्द की प्रतिच्छवि देखी जा सकती है। गांधी के बाद का भारत गांधी के स्वप्नों के अनुरूप सिद्ध नहीं हुआ, यहाँ व्यथा लेखक और मान्य राज्यपाल का संयोजन बिन्दु है किन्तु ऐसा क्यों हुआ इसकी गहन विवेचना भी तो अपेक्षित था और जो नहीं मिल पाई तथा जिसके न मिल पाने के कारण ही लेखक का उद्देश्य विचारों के अधर में ही लटका रह गया।

प्रान्तिय की चरित्र रेखाएं काफी सुस्पष्ट हैं। एक महत्वाकांक्षी औद्योगिक प्रतिभा की पूरी सम्भावनाएं इस व्यक्ति में हैं। आधुनिक जीवन की ललक भी इस व्यक्ति में पाई जाती है। वह अपनी कामनाओं को दाम्पत्य की परिधि में ही सीमित नहीं रखना चाहता। लावण्यवती अपरा ने उसे मोहा है पर

इनके सम्बन्ध भी सूक्ष्ममात्र रहे हैं उसका कोई विस्तृत विवरण हमें नहीं मिलता। पाठक या श्रोता की कल्पना पर ही उसे छोड़ दिया गया है। अपरा और आदित्य के संबंधों को लेखक ने रहस्य के ताने बाने से बुना है। अपरा के शरीर पर पड़े हुए काले दाग क्या आदित्य की अतृप्ति के परिचायक हैं, और क्या इससे यह सोचा जाए कि अपरा एवं आदित्य के सम्बन्ध मानसिक ही थे? यही कारण है कि वह एक प्रबल आत्मविश्वास के साथ रामेश्वरी और चारु के सामने आई और उनकी आशंकाओं एवं संदेहों को निराकृत कर सकी। अपरा जैसी यथार्थवादी नारी की अन्तिम परिणति लेखक के आदर्शवाद में ढक सी गई है और उसके जीवन की ललक की क्या इसे ही अन्तिम परिणति माना जाए? इस सम्बन्ध में लेखक मौन है और सम्भवतः वह पाठक को भी मौन के परिवेश में बन्दी किया चाहता है।

अन्त में हम 'अनन्तर' के उद्देश्य को चारु के उस कथन में रूपायित हुआ पाते हैं जिसमें वह अपनी मां रामेश्वरी को जो कि चित्रलिखित सी अवस्था में पहुंच गई थी उसको सहज बनाने के लिए चारु ने उपन्यास के अन्त में इन शब्दों में मार्मिक अपील की है

'अम्मा, इसने सीधे आकर मुझसे कहा कि उनको मैं प्यार करती हूँ। इसके लिए सजा देना चाहो तो सजा दो, माफी दे सको तो माफी दे दो। तुम्हारे वह पति हैं इसलिए प्यार तुम्हारा फर्ज हो सकता है। मेरा फर्ज नहीं है, फिर भी प्यार है। इसलिए शायद पाप हो। तो मैं सजा के लिए तुम्हारे पास आ गई हूँ। कहती हूँ कि तुम, या तुम्हारी मां, अपने हाथ से मुझे जहर तक दें तो उसी क्षण खाकर मैं मर सकती हूँ। मैं तो नहीं दे सकी मां तुम चाहो तो दे दो! और चाहो तो माफ कर दो।' इसी क्षमादान में 'अनन्तर' की परिसमाप्ति अनुगुंजित होती है और यही मानवीय प्रेम संकीर्ण शारीरिक सीमाओं से ऊंचा उठकर आत्मिक जगत में प्रवेश करता है। रचनाकार का अपरा के सृजन में और 'अनन्तर' के तानेबाने में यही संदेश है। किन्तु अन्त में मैं यह कहना चाहूंगा कि जैनेन्द्र जैन के 'अनन्तर' में यह जीवन के साथ अधूरा साक्षात्कार है और कि इसकी अनुभूति अत्यन्त क्षीण है। सुनीता, त्यागपत्र जैसी सबल कृतियों का स्रष्टा 'अनन्तर' में क्या अपनी औपन्यासिक साधना का समाधि लेख लिखने जा रहा है? और वह भी औपन्यासिक आत्मकथा के रूप में।

---

७ अनन्तर पृ० १५१ प्रथम संस्करण, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

परिच्छेद—२

●

कथा-शैली

●●●

जैनेन्द्र के उपन्यासों में शुद्ध कथाओं का विवरण : इन कथाओं की उद्भावना का मूल और उसकी लेखकीय मनोभूमि

१. परख

कथानक का ढाँचा

'परख' का प्रमुख पात्र सत्यधन छद्म आदर्शवादी है, व्यवहार में जिसका भौतिकता की ओर रुझान है। गँवई किशोरिका कट्टो के प्रति उसमें आकर्षण का उदय होता है, किन्तु परिस्थितिवश समर्पिता कट्टो को छोड़ मित्र बिहारी की बहन गरिमा से उसका विवाह सम्पन्न होता है। वह कट्टो के लिए अपने स्थान पर बिहारी का विकल्प प्रस्तुत कर स्वयं पल्ला झाड़कर अलग हो जाता है। फिर गरिमा के साथ उसका वैवाहिक जीवन भी आर्थिक कारणों से दुःखद बन गया है। इधर बिहारी और कट्टो भी विवाह-सूत्र में बँधते हैं, किन्तु यह परिणय दैहिक न होकर आत्मिक है। अंततः आर्थिक रूप से विपन्न सत्यधन को पचास हजार के नोट देकर कट्टो अपने महान् त्याग का परिचय देती है और उससे अभिभूत सत्यधन और बिहारी अपना अपना जीवन जीते हैं।

हेतु

'परख' का मूल अभिप्राय एक नायिका प्रधान उपन्यास की परिकल्पना है। गँवई किशोरिका कट्टो के विभेद में सत्यधन का छद्म-आदर्शवाद अपना नकाब हटाने के लिए विवश होता है और अन्ततः कट्टो की गौरव-गरिमा में उपन्यास के सूत्र तिरोहित हो जाते हैं।

२ सुनीता

कथानक का ढाचा

श्रीकात अपने मित्र हरिप्रसन्न के अभाव मे विरह-सतप्त है। उसका मित्र हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी है, जिसका दुनिया से कोई लगाव नही है। श्रीकात अपनी सौन्दयमयी पत्नी सुनीता के माध्यम से हरि को सहज करना चाहता है। हरि और सुनीता का सम्पक प्रगाढ होता है और स्थिति कुछ ऐसी उत्पन्न होती है कि हरि सुनीता को निरावरण देखना चाहता है किन्तु उसके रूप का भेद नही पाता और भाग खडा होता है। सुनीता पति के उत्कट प्रेम और विश्वास को पुन प्राप्त करती है और पति उसे माध्यम बनाकर उसके प्रति आभारी है।

हेतु

वस्तुत सुनीता मे घर और बाहर की समस्या ही प्रधान होकर आई है। पति और प्रेमी के पृथक् अस्तित्व उभर कर सामने आए हैं जसे उपन्यासकार यह सकेत कर रहा हो कि एक नारी के लिए उसका पति ही सब-कुछ नही है, उसका प्रेमी भी हो सकता है। यही मूल समस्या अन्य उपन्यासो म भी जीवन के विविध परिप्रेक्ष्य मे उभर कर आई है।

३ त्यागपत्र

कथानक का ढाचा

'त्यागपत्र' बुआ मृणाल और भतीजे प्रमोद के सबधो की कहानी है। मृणाल पर अपनी भाभी का कठोर अनुशासन है। यही कारण है कि शीला के भाई से जो उसका प्रणय सबध स्थापित हुआ था, वह टूट गया और वह एक अधेड से व्यक्ति के गले मढ दी गई। मृणाल अपनी आत्मा के बोझ को हलका करने के लिए अपने प्रसग का पति से जिक्र करती है जिस पर उसका पति उस चरित्रहीना घोषित कर निष्कासित कर देता है। बुआ एक कोयले के व्यापारी के सम्पक म आती है और अत मे उसके द्वारा भी परित्यक्त होकर भटकती हुई निम्नतमवग के लोगो के बीच आती है। प्रमोद अपनी सीमाओ म उसके निकट तो आता है किन्तु वे एक-दूसरे को अपना नही पाते और भतीजे के द्वारा बुआ को न अपना पाना ही, प्रमोद के त्यागपत्र का कारण बनता है।

हेतु

'त्यागपत्र' वस्तुत एक अनमेल विवाह की कहानी है और पति द्वारा लाछिता मृणाल नारी की विवशता का प्रतीक है। कहानी अपने आपम इतनी

करण है कि मणाल से गहन रूप म सबधित भतीजे प्रमोद को जजी से त्याग पत्र देकर ही कुछ शाति मिल पाती है। 'त्यागपत्र' म तीन वर्गों के माध्यम से उनके असामजस्य को प्रकट किया गया है। **सबको अपनी सीमाए होती हैं और कोई किसी को अपना नहीं पाता।**

४ कल्याणी

कथानक का ढाचा

कल्याणी अभिशप्त पत्नीत्व की कथा है। डाक्टर असरानी अपनी डाक्टर पत्नी कल्याणी पर इतन हावी हा जाते है कि वे उसे सावजनिक रूप स पीटते भी है और उसक चरित्र के प्रति सदेहशील भी रहत हैं। कल्याणी के जीवन की जटिलता डाक्टरी पत्नीत्व एव निजत्व के भवर म फसकर क्षार क्षार हो गई है। डा० असरानी कल्याणी के प्रेमी, प्रीमियर से अपना काम भी निका लना चाहते हैं और दूसरे ही पल वे उसे सदिग्ध दृष्टि से भी देखते है। कल्याणी के चरित्र पर एक रहस्य का आवरण पडा हुआ है और उसका सुशिक्षित रूप विद्रोह के रूप म मुखर नही हो पाता यही चारित्रिक अस्पष्टता उसे कोई निणय नही लेने देती।

हेतु

कल्याणी भी त्यागपत्र की ही तरह अनचाहे विवाह की कहानी है। यद्यपि पति-पत्नी दोना डाक्टर हैं किन्तु फिर भी उनके स्वभाव म कोई साम जस्य नही है। नारी क सवसहारूप का ही कल्याणी' प्रतिनिधित्व करती है। **आध्यात्मिकता के प्रति उसका रुझान, उसकी भौतिक असफलता का ही, एक रूपातर है।**

५ सुखदा

कथानक का ढाचा

'सुखदा' म भी अनमेल विवाह की कहानी एक भिन्न परिप्रेक्ष्य म कही गई है। यद्यपि सुखदा और उसके पति कात मे मानसिक दृष्टि स अधिक दुराव नही है और न शारीरिक दृष्टि स ही फिर भी आर्थिक कारणा स सुखदा पति के प्रति बेगानी हा जाती है। तडक भडक स भरा हुआ लाल उसे आकृष्ट करता है। हरीश के रूप म ऐसा पात्र प्रस्तुत किया गया है, जा कि विभिन्न पात्रो म सयोजन बिदु का काय करता है। हरीश की ही प्रेरणा स कात उसे गिरफ्तार करवाकर पाच हजार रुपए प्राप्त करता है किन्तु कात के इस व्यव

हार से सुखदा को बड़ी चोट लगती है और वह क्षयग्रस्ता होकर अस्पताल की मरीजा बन जाती है।

हेतु

'सुखदा' एक निराशामयी नारी की अकर्मण्यता से परिपूर्ण चित्र है। सुखदा की अतृप्ति और लालसा नारीमात्र की भावना का प्रतिनिधित्व करती है और उसके जीवन के चारों ओर घनीभूत होकर उसे क्षयग्रस्ता बना देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुखदा में भी कथा परिपाटी (पटन) वही है, जिसका समारम्भ 'परख' से हुआ था।

६ विवर्त

कथानक का ढांचा

विवर्त बड़े बाप की बेटी भुवनमोहिनी और उसके मध्यवर्गीय प्रेमी जितेन की कहानी है। दोनों में विवाद होने पर बरिस्टर नरेश से मोहिनी का विवाह हो जाता है और तब लगभग चार वर्ष पश्चात् जितेन एक क्रांतिकारी के रूप में मेल ट्रेन उलटकर घायल अवस्था में भुवनमोहिनी की परिचर्या प्राप्त करता है। स्वस्थ होने पर वह भुवनमोहिनी के आभूषण भी अपने साथ ले जाता है और बाद में घटनाचक्र कुछ इस रूप में घटता है कि मोहिनी से ही उसके आभूषणों के उपलक्ष्य में पचास हजार रुपए की मांग होती है जिस पर मोहिनी जितेन के पांव पकड़कर दया की भीख मांगती है जिसमें जितेन इतना प्रभावित होता है कि दल की आवश्यकताओं का भार भुवनमोहिनी पर छोड़कर स्वयं पुलिस के समक्ष अपने आप को सौंप देता है।

हेतु

विवर्त में भी वही पुरानी कथा परिपाटी है और पति एवं प्रेमी के सह अस्तित्व को इसमें कुछ अधिक जोर देकर दुहराया गया है। जनेन्द्र की नायिकाओं का क्रांतिकारियों के प्रति एक प्रबल सम्मोहन रहता है, और उसी के प्रति समर्पिता अर्पिता, ये नायिकाएं अपने जीवन के चरम बिंदु को प्राप्त कर लेती हैं।

७ व्यतीत

कथानक का ढांचा

व्यतीत जयंत की आत्म-कहानी है। उसका व्यक्तित्व अनिता और चन्द्री

के बीच झूल रहा है। पत्नी चन्द्री जयंत पर एकाधिकार चाहती है। इसी कारण जयंत उससे खीझ उठता है। कालान्तर में वह निपट एकाकी रह जाता है और जीवन की व्यर्थता के वशीभूत संन्यासी हो जाता है।

हेतु

पत्नी और प्रेयसी के बीच झूलते हुए जयंत के व्यक्तित्व के अन्तर्द्वन्द्व एवं व्यर्थता को दर्शाना ही इस उपन्यास का प्रमुख प्रयोजन है। जिससे प्रणय है, उससे विवाह नहीं, और जिससे विवाह है, उससे प्रणय नहीं।

८ जयवर्धन

कथानक का ढांचा

जयवर्धन जनेन्द्र की औपन्यासिक यात्रा में एक नया मोड़ है। इसकी कथा परिपाटी भी अन्य उपन्यासों से भिन्न है किन्तु मूल समस्या पूर्व-उपन्यासों में मिलती जुलती ही है। यद्यपि इसकी कथावस्तु पर राजनीतिक आवरण पड़ा हुआ है किन्तु अवसर मिलते ही लेखक स्वच्छन्द प्रेम और विवाह की समस्या पर आ जाता है। इला उपन्यास की नायिका है और जयवर्धन के साथ रहती है। काफी समय तक उनका विवाह नहीं होता और जब होता है तो विवाह के दूसरे ही दिन जयवर्धन इला को छोड़कर चला जाता है। यह पलायन पूर्व उपन्यासों के नायकों के पलायन के समान ही है। इस उपन्यास का कथापट एक विशाल परिप्रेक्ष्य को लेकर बुना गया है अतः इसके कथा व्यापार में जहां जटिलता है वहीं कुछ स्थलों पर नीरसता भी आ जाती है। चूंकि उपन्यास भविष्यवाणी है इसलिये इसका कथा विकास काल्पनिक रेखाओं पर हुआ है।

हेतु

जनेन्द्र यद्यपि प्रस्तुत उपन्यास में छद्म रूप से एक नयी दिशा की ओर उन्मुख होना चाहते हैं, पर घूम फिरकर वे अपने उपन्यासों की पूर्वावस्था पर आकर टिक जाते हैं। व्यक्ति और समाज, प्रेम और विवाह, सर्वदलीय सरकार की परिकल्पना मुख्य रूप से इस उपन्यास में उभरी हैं। जयवर्धन के आचार्य महात्मा गांधी के प्रतिरूप प्रतीत होते हैं और स्वयं जयवर्धन नेहरू के। गांधी और नेहरू की आत्मीयता की तरह ही आचार्य और जयवर्धन में भी आत्मीयता है पर उनके स्वभाव और सिद्धांत एक दूसरे से भिन्न हैं। इसी द्वैत की स्थापना प्रस्तुत उपन्यास में की गई है।

९ मुक्तिबोध

कथानक का ढाचा

'मुक्तिबोध' और अनन्तर उपन्यासकार ने मूलत रेडियो प्रसारण के लिये लिखे हैं। 'मुक्तिबोध' का प्रमुख पात्र सहाय एक राजनीतिज्ञ है, जिस पर गाधी वाद का हल्का फुलका प्रभाव देखा जा सकता है। राजश्री उसकी पत्नी है और नीलिमा प्रेयसी। इस उपन्यास मे प्रथम बार पत्नी और प्रेयसी के सुखद सह अस्तित्व की परिकल्पना की गई है। राजश्री स्वय प्रेरणा के लिये सहाय को नीलिमा के पास ठेलकर भेजती है। अवान्तर प्रसग के रूप म वटी और दामाद की कहानी भी है। दामाद औद्योगिक जीवन के प्रतीक हैं। इधर, ठाकुर सहाय को मत्रिमण्डल म शामिल होने के लिये राजी कर लेते हैं। उनम सत्ता के प्रति विराग भी दिखाया गया है पर उनके चारा ओर के वातावरण म अधिकार की ललक है अत उनके व्यक्तित्व मे अन्तर्विरोध भाकता है।

हेतु

मुक्तिबोध' का मूल प्रयोजन एक ओर सत्ता की धकापल प्रस्तुत करना है तो दूसरी ओर इसमे प्रेयसी नीलिमा के मुक्त जीवन की झलक है। नीलिमा और राजश्री के सम्बन्ध प्रीतकर हैं, और कहीं भी वे एक दूसरे की सीमा का अतिक्रमण करती नहीं दिखाई देतीं। सपूर्ण घटना चक्र से यहा भी छद्म आदर्शवाद की कलई खोली गई है।

१० अनन्तर

कथानक का ढाचा

अनन्तर' और मुक्तिबोध एक दूसरे के पूरक हैं अत एक पूर्वार्द्ध है और दूसरा उसका उत्तरार्द्ध। समसामयिक सन्दर्भ इन दोना अन्तिम उपन्यासा मे भाक भाक जाते हैं। राजश्री का स्थान रामेश्वरी ने ले लिया है और नीलिमा का स्थान अपरा ने। अनन्तर' का नायक एक गाधीवादी विचारक है जो किसी विचार-गोष्ठी मे भाग लने माउट आबू आ जाता है। साथ म उसकी सुख सुविधा के लिए रामेश्वरी और उसके दामाद द्वारा अपरा को नियोजित किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि राजश्री और नीलिमा मे जहां सदाशयता थी, वहा चारु क जटिल प्रकरण के कारण रामेश्वरी और अपरा के बीच एक कटकित स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चारु के ही प्रयत्नों से इन काटों में से फूल निकलते हैं और तब अपरा और दामाद (आदित्य) के सम्बन्ध सहज रूप से लगते हैं। अवान्तर कहानी के रूप म वनानि का प्रसग आया

है जो नातिथाम स्थापित किया चाहती है और जिसके आयोजन म अनत अपरा सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार अनन्तर' म अपरा का ही प्रभाव सर्वाधिक मुखर हुआ है।

इनु

अनन्तर का मूल प्रयोजन अपरा के वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व को ही भनक प्रस्तुत करना है। उसी के सानिध्य स गांधीवादी विचारक का व्यक्तित्व भी उभरा है, जो कि स्वय लेखक का ही रूपान्तर कहा जा सकता है। 'अनन्तर' को जनेन्द्र की औपन्यासिक आत्म-कथा भी कहा जा सकता है। इस अतिम उपन्यास म लेखक की संस्मरणात्मक प्रवृत्ति ही अधिक उभरी है।

प्रत्येक कथान्श के प्रयोग की व्याख्या तथा प्रयोग की दृष्टि से मनोभूमियो के स्वरूप

परख म अनन्तर' तक की औपन्यासिक यात्रा म मुख्य रूप स पाच प्रयोग दृष्टिगत होते हैं

१ पहला 'परख' के रूप म एक ऐसा कच्चा मीठा प्रयोग है जिसम लेखक की औपन्यासिक सम्भावनाओं के बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं उसके आदर्शवाद की भाव और यथार्थ की भूमि पर आन पर स्खलन परख के नायक सत्यधन की मूल प्रवृत्ति कही जा सकती है। कट्टो के रूप म एक गवई विचारिका का प्राम्य नारीत्व मुखरित हुआ है। दुख की बात है कि ऐसी जीवत पात्री परवर्ती उपन्यासों मे जनेन्द्र नहीं दे पाए। आत्मवादी रुझान की दृष्टि स तपोभूमि' भी इसी कोटि म आती है यद्यपि उसका विषय-वैविध्य एव विस्तार जनेन्द्र की अपनी रुचि का द्योतक नहीं है। यही कारण है कि तपोभूमि' जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि म कुछ बेमेल-सी लगती है।

२ दूसरा प्रयोग सुनीता और सुखदा के रूप म हम पाते हैं जहा दो सौन्दर्यमयी नारिया अनात रूप म क्रान्तिकारियों के सम्मोहन म फस जाती है और उनका वैवाहिक जीवन पगु होते-होते बच गया है। सुनीता जितनी सबल और जीवत है, उतनी सुखदा ढुलमुल यकीन और भावुकता से आक्रान्त है। इन दोनों नारियों के माध्यम स लेखक यह प्रश्न उठाना चाहता है कि क्या नारी का काम्य उसका पति ही है। पति के अतिरिक्त क्या और किसी पुरुष स उसका लगाव नहीं हो सकता और यदि ऐसा लगाव होता है तो नैतिकता की दृष्टि म उसका क्या मूल्य है? इन्हीं प्रश्नों का एक विराट परिप्रेक्ष्य म लेखक ने इन उपन्यासों म उठाया है। इन उपन्यासों की लेखन शैली पर छायावादी

गद्य की गरिमा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'सुनीता' के गद्य मे जो ताजगी है, उतनी तो 'सुखदा' मे नहीं है, किन्तु लेखन की मूल प्रवृत्ति मे अधिक अन्तर नहीं आ पाया है।

३ 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' के रूप मे हम तीसरा औपन्यासिक प्रयोग पाते हैं, जिसमे कि मध्य वर्ग की दो विशिष्ट नारियो की यातना को लेखक ने चित्रित किया है। मृणाल ने यातना को स्वय अर्जित किया, किन्तु कल्याणी पर यह यातना आरोपित कर दी गई। इन दोनो उपन्यासो मे बेमेल विवाह के दुष्परिणाम स्पष्ट रूप मे देखे जा सकते हैं। क्रान्तिकारी पात्रो के प्रति जो सम्मोहन सुनीता तथा सुखदा मे हमे मिला था, वह तो 'त्यागपत्र' एव 'कल्याणी' मे नही है, किन्तु 'कल्याणी' के प्रीमियर के रूप मे कुछ राजनीतिक पुट अवश्य दी गई है जबकि 'त्यागपत्र' मे करुणा का एकात साम्राज्य बिखरा हुआ है। नारी के सबसहा रूप का चित्रण 'कल्याणी' मे विशेष रूप से आध्यात्मिक पर्यवसान, लेखक का उद्दिष्ट रहा है।

४ 'व्यतीत' और 'विवर्त' मे हम चौथे औपन्यासिक प्रयोग के दर्शन करते हैं। 'व्यतीत' के सम्बन्ध मे पहली महत्वपूर्ण बात यह है कि पुरुष प्रधान उपन्यास है, जबकि अन्य उपन्यासो मे नारी पात्रो की ही प्रधानता है। 'व्यतीत' की अनिता और 'विवर्त' की भुवनमोहिनी एक-सी ही धातु से सिरजी गई हैं। दोनो मे अभिजात्य वर्ग की सस्ती भावुकता का रूप प्रस्फुटित होता है। ये नारियाँ कितनी परवश और पुरुष के प्रति कितनी सदय हैं! 'विवर्त' मे क्रान्तिकारी पात्र के प्रति सम्मोहन सुनीता और सुखदा की तरह ही जागा है, किन्तु इसकी विवृति अधिक नही की गई है। एक सी-ही मानसिक स्थिति मे इन दोनो उपन्यासो को लिखा गया है। 'विवर्त' तो 'व्यतीत' का ही सहजात उत्पादन (बाइ प्रोडक्ट) सा ही प्रतीत होता है। ये दोनो उपन्यास व्यक्तित्वहीन भी कहे जा सकते हैं। 'व्यतीत' को पढते हुए अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की अनुगूज अनेक स्थलो पर सुनाई दी किन्तु 'नदी के द्वीप' जसी जीवतता और रोमास की मौलिकता के अभाव मे 'व्यतीत' एक लचर उपन्यास ही सिद्ध हुआ।

५ 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' मे हम पाचवें औपन्यासिक प्रयोग के दर्शन करते हैं जहा कि पात्रो के जीवन पर राजनीतिक आवरण डाला गया है और समसामयिक सदर्भों को मुखर किया गया है। 'जयवर्धन' मे गाधी और नेहरू के भारत की प्रतिध्वनि है। 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' मे स्वाधीनता के बाद के एक विशिष्ट राजनीतिक जीवन की अभिव्यजना है। 'जयवर्धन' अपने विशाल कलेवर के कारण जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि मे एक विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचायक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक कोई

गहरी और बड़ी चीज देना चाहता था पर अनुभूति की क्षीणता के कारण ऐसा न हो सका। मुक्तिबोध और अनन्तर में जनेन्द्र लघु उपन्यास की टकनीक पर फिर लौट आए हैं और यदि इन दो उपन्यासों को रेडियो प्रसारण के लिए लिखा गया था पर उनकी कुछ औपन्यासिक सीमाएँ भी हैं। कटे-छटे वाक्य सीमित कथानक और किसी एक मुक्त नारी-पात्र की (नीलिमा और अपरा) की अभिव्यंजना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है। अनन्तर तक आते आते लेखक की औपन्यासिक सम्भावनाएँ क्षीण होने लगी हैं और साठ वर्ष के बाद जब कोई व्यक्ति सम्मरणात्मक व्यक्तित्व धारण कर लेता है वैसा ही अनन्तर भी लेखक की औपन्यासिक आत्मकथा-सा ही प्रतीत होता है। 'अनन्तर' में जनेन्द्र की औपन्यासिक सम्भावना का जिस रूप में तिरोभाव हुआ है, उससे तो यही आशंका जगने लगी है कि 'अनन्तर' में स्वयं लेखक ने अपना समाधि लेख प्रस्तुत कर दिया है।

इन उपन्यासों में समसामयिक सन्दर्भ उभरे अवश्य हैं पर लेखक के उनमें गहरा न उतरने के कारण एक प्रकार की ऊब-सी ही अनुभव होती है।

मूल कथानों के अनुसंधान की प्रक्रिया में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लेखक की जीवनानुभूति अत्यन्त सीमित एवं वर्यक्तिक है। यही कारण है कि उसमें जीवतता की ताजगी कम मात्रा में ही मिल पाती है। लगता है जैसे लेखक इन्हें कुछ कथानकों के ढाँचे को पुन-पुन नई भूमिका में प्रस्तुत कर रहा है। बच्चा के खेल में जैसे लकड़ी के खिलौनों से मकान बनते बिगड़ते हैं उसी तरह लेखक ने भी विशाल औपन्यासिक समुद्र के तट पर एक-से ही घरौंदे बनाए हैं, जो पल भर में बन भी जाते हैं और बिगड़ भी जाते हैं। लेखक की जीवनानुभूति सीमित होने के कारण वह एक-से ही कथानकों को बार-बार दोहराता है और उसकी स्थिति उस कोल्हू के बैल की तरह हो जाती है जो एक ही सीमित घेरे में चक्कर काटता रहता है किन्तु उसके पर अनुभव करते हैं जैसे उसने बहुत अधिक भूमि नाप ली हो।

कथाओं की प्रतिपादन शैली विविध वर्ग

जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि में मूल रूप से दो ही पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों में आत्म कथात्मक शैली के दर्शन होते हैं। इस आत्म-कथात्मक शैली के कई रूप हैं कहीं वह डायरी-शैली के रूप में है जैसे जयवर्धन में तो कहीं किसी पात्र की जुबानी कहानी को कहलाकर इसी पद्धति को प्रकारान्तर से अपनाया गया है। द्वितीय प्रकार की वर्णनात्मक शैली केवल परख और सुनीता में ही सुलभ है। सुखदा व्यतीत मुक्तिबोध और

'अनन्तर' विशुद्ध आत्मकथानक शली म लिखे गए हैं, जबकि 'तपोभूमि', 'त्याग पत्र' 'कल्याणी' किसी पात्र की आत्मकहानी के रूप मे वर्णित है।

इस वर्गीकरण से एक बात स्पष्ट है कि लेखक के लिए आत्मकथात्मक शली ही अधिक मौजू रही है। जनेन्द्र के अधिकाश उपन्यास लघु उपन्यास की कोटि म आते हैं अत आत्मकथात्मक शली सवथा समीचीन ही सिद्ध हुई है। परम्परा को कोई भी लेखक नकार नही सकता। जनेन्द्र के वर्णनात्मक उपन्यास इसका उदाहरण हैं, यद्यपि इन वर्णनात्मक उपन्यासो म भी लेखक वर्णन के विस्तार मे नही जाता। वह केवल कथासृष्टि मे हवाई उडाने भरता है और इस प्रकार उन्हीं प्रसगो को छूता और सवारता है, जो उसके उद्देश्य की सिद्धि मे सहायक हो। जनेन्द्र की वर्णनात्मकता प्रेमचन्द की वर्णनात्मकता से सवथा भिन्न है। प्रेमचन्द, जहा पाठक की कल्पना के लिए कुछ नही छोडते और सारी बातो के पूरे ब्यौरे देते हैं, वही जनेन्द्र केवल उन्ही प्रसगो को वर्णन की परिधि म लाते हैं, जो उनके मूल उद्देश्य की प्राप्ति म सहायक हो। पाठक की कल्पना और मानसिक उत्तेजना के लिए वे बहुत-कुछ छोड देते हैं। आवश्यकता पडने पर व सकेतात्मकता और प्रतीक विधाना से भी काम लेत हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जनेन्द्र अपने उपन्यासो म जिन जीवन-खण्डो को लेते हैं, वे यद्यपि प्रत्यक्ष जीवन स कुछ कटे-से होते हैं किन्तु उनके माध्यम से वे सम्पूर्ण जीवन का आभास देने म सफल हो जाते हैं। गर्स्टाटवाद की यही परिणति जनेन्द्र के उपन्यासो मे देखने को मिलती है।

प्रश्न उठता है कि जनेन्द्र ने अधिकाश उपन्यासो मे आत्मकथात्मक शली को ही क्यो अपनाया और ऐसा क्या कि केवल 'जयवधन' को छोडकर उनके सभी उपन्यास लघु कलेवर हैं। इस प्रश्न का समाधान इसी रूप म पाया जा सकता है कि आत्मकथात्मक पद्धति से जनेन्द्र अपने पाठक को सहज विश्वास म लेना चाहते हैं। इस प्रकार उनके कथानक मे विश्वसनीयता आ जाती है और वे अपने पाठक से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। लघु उपन्यास के परिधान म यही शली कारगर सिद्ध होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'जयवधन' लेखक न केवल इस झोक म लिखा है कि वह बहद-कलेवर उपन्यास को भी आजमाकर देखे यद्यपि बहदकाय उपन्यास जनेन्द्र की लेखन शली का अन्तरग अग नही है। घटनाओ का सम्पूर्ण घटाटोप जयवधन और इला को केन्द्रबिन्दु बनाकर चला है। अन्य पात्रो की जीवन चर्या इसी दृष्टि से नियोजित हुई है कि वे प्रमुख पात्रो की जीवन नीति पर विभिन्न कोणो से प्रकाश डाल सकें।

यहा यह बात भी स्पष्ट रूप म स्वीकार करनी होगी कि जनेन्द्र हिन्दी मे न केवल लघु उपन्यास के प्रवतक ही हैं, बल्कि आत्मकथात्मक शली के 'मास्टर'

ना है। नए उपन्यासों में इस आत्मकथात्मक शैली के विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। वर्णन से हटकर जब उपन्यास विश्लेषण की ओर उन्मुख होता है तो आत्मकथात्मक शैली ही सर्वाधिक उपयुक्त समझी जाती है।

प्रतिपादन शैली की मनोभूमि

प्रश्न उठता है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में जो आत्मकथात्मक शैली है उसकी मनोभूमि क्या है? सच की बात आत्मानुभूति के माध्यम से ही प्रकट की जा सकती है। दर्शन में जिसे हम आत्म-साक्षात्कार (सेल्फ रियलाइजेशन) कहते हैं, वही उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का प्रेरणा बिन्दु है। उपन्यासकार संसार में जो कुछ देखता है उसे जैसे का तैसा प्रकट नहीं कर सकता क्योंकि यदि वह ऐसा करेगा तो उसके लेखन पर उसके व्यक्तित्व की छाप नहीं होगी। प्रत्येक उपन्यासकार की रुचि चयनात्मक होती है अपने व्यक्तिगत चयन में ही हम अपनी कला सृष्टि को मुखर करते हैं उसी के माध्यम से उपन्यासकार के व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होती है। इसी बात को ध्यान में रखकर शैली को व्यक्तित्व के प्रकटीकरण का एक माध्यम बनाया गया और कहा गया कि शैली ही व्यक्तित्व है। चेस्टरफील्ड ने शैली को विचारों का परिधान भी सम्भवत इसी दृष्टि से कहा है (स्टाइल इज दी ड्रेस आफ थाट)।

हम समस्त संसार से अपना संबंध नहीं स्थापित कर सकते। प्रत्येक व्यक्ति का एक छोटा सा समाज होता है उसी में उसका आना-जाना उठना बैठना मिलना-जुलना सीमित हो जाते हैं। उसके स्वार्थों का आदान प्रदान एवं वस्तुओं का विनिमय इसी संकुचित परिधि में सम्पन्न होता है। विशाल संसार को वह इसी माध्यम से देखता है। इसे आप व्यक्ति की लाचारी कह दीजिए या उसकी सामर्थ्य की अन्तिम इयत्ता। इस दृष्टि से जब हम जैनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि के माध्यम से उनकी मनोभूमि का संधान करते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि वहां कुछ वकील हैं कुछ रिटायर्ड जज हैं और कुछ पीडित-संतप्त एवं अभिशप्त नारियां हैं। इन नारियों की यातना को साकार करना ही जैसे लेखक का उद्देश्य है। बार-बार लेखक जो यह कहना चाहता है कि पत्नी का चरम साध्य और आराध्य पति ही नहीं है उसका प्रवस भी हो सकता है तो इससे यही सिद्ध होता है कि सामन्ती संस्कृति से आक्रान्त पुरुष-समाज को लेखक एक उत्तेजना का संदेश देने जा रहा है। जैनेन्द्र के नारी-पात्रों में क्रान्तिकारियों के सम्मोहन की बात पुनः-पुनः आई है। इससे यही सिद्ध होता है कि लेखक के कुछ क्रान्तिकारी मित्र रहे हैं और उनको लेकर उसके विचारों में जो अजूबापन हुआ है उसी की अभिव्यक्ति इन नारी-पात्रों के प्रबल सम्मोहन में हुई है।

राष्ट की स्वाधीनता प्राप्ति म इन क्रान्तिकारियो की महत्वपूण भूमिका रही है। लेखक के अचेतन मन पर इसके जीवन की गरिमा का अज्ञात रूप मे अकन हुआ है, उसी से इन पात्रों को इतना मोहक रूप दिया जा सका है।

जनेन्द्र की नारी मे, पुरुप एव समाज द्वारा यातना की गहन अनुभूति है। क्या यह समझा जाए कि स्वय उपन्यासकार की मानसिक यातना का ही यह प्रक्षेपण है ? लेखक ने अपने आरम्भिक जीवन म बठे ठाले रहकर जो यातना झेली है और व्यथता की अनुभूति से जिस प्रकार वह आक्रात रहा है उसी की अनुगूज उसके नारी पात्रो की मनोरचना मे मुखरित हुई है। लेखक नर नारी के सम्बन्धो को सहज किया चाहता है। इसी के लिए उसने पत्नी और प्रेयसी के सहअस्तित्व की कल्पना की है यह आश्चय की ही बात है कि ऐसी कल्पना करने वाला लेखक पुरुप की ही दृष्टि से सब कुछ क्या सोचता है ? नारी की दृष्टि से भी पति और प्रेयस के सह अस्तित्व की कल्पना की जा सकती है। या पत्नी और प्रेयसी के सह अस्तित्व की सहज परिणति, नारी के सदभ म पति और प्रेमस क सह अस्तित्व के रूप मे गौण मात्रा म, परख', व्यतीत', और मुक्तिबोध' म अभिव्यजित हुई है।

हिंदी उपन्यास के इस मानसिक परिवतन को जनेन्द्र सामती सस्कारों से मुक्त कर पूजीवादी सस्कृति के धरातल पर ले आते हैं। इसी का एक रूप गाधीवादी सस्कार और व्यवहार हैं, जिसकी अतिम परिणति औदायपूण मानवतावाद मे है। व्यक्तिवादिता पूजीवादी सस्कृति की एक विशिष्ट देन रही है और यही वयक्तिक वशिष्टय जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि मे भी है। प्रेमचन्द के पुरुप या नारी उतने व्यक्ति नही हैं जितने कि समष्टि के एक अग है किन्तु जनेन्द्र के स्त्री-पुरुष समाज के अग बाद मे है पहले तो वे व्यक्ति ही हैं। इसी तथ्य की व्यजना इस रूप मे भी की जा सकती है कि जनेन्द्र के पात्र 'टाइप नही हैं बल्कि व्यक्ति हैं। उनका यह व्यक्तिवादी स्तर इतना मुखर है कि हम इसका सम्बन्ध तत्कालीन छायावादी आन्दोलन से सहज ही स्थापित कर सकते हैं। जिन दिनो साहित्य के धरातल पर छायावाद चल रहा था उन्ही दिनो राजनीति क धरातल पर गाधीवाद एक पुसत्वमय शक्ति थी। जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि मे इसी गाधीवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है, यद्यपि जनेन्द्र की नतिक मान्यतायें गाधीवाद से भी आगे बढ़ती हैं और वे फ्रायड के मनोविज्ञान से अपना सम्बन्ध जोड लेती हैं। यों ज्ञात और अधीत रूप मे जनेन्द्र पर फ्रायड का प्रभाव भले ही न रहा हो, किन्तु सहज सस्कारों और विचारों के मौसम की दृष्टि से जनेन्द्र ने इस अज्ञात प्रभाव को हवा में से ग्रहण कर लिया हो तो कोई आश्चय नहीं !

परिच्छेद—३

•

वर्णन शैली

•••

वर्णनात्मक स्थलो का वर्गीकरण एव विवरण

वणन नली की दृष्टि से जनेन्द्र के उपन्यासो मे चार कोटिया पाई जाती हैं

(१) प्रमुख पात्र की मन स्थिति का वणन।

(२) दार्शनिक ऊहापोहजन्य वणन।

(३) वातावरण सृजन की दृष्टि से प्रकृति वणन।

(४) समसामयिक सन्दर्भों का सस्मरणात्मक वणन।

१ सवप्रथम मन स्थिति के वणन परख से लगाकर अनन्तर तक इतनी अधिक मात्रा म सुलभ हैं कि उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यास का अतरग अग कहा जा सकता है। इस प्रकार के विवरणो मे पात्र के मन की उधेडबुन सकल्प विकल्प और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वचारिक प्रक्रियाओ को उपन्यासकार ने वर्णित किया है। अपने कथन की पुष्टि मे मैं एक उदाहरण 'सुनीता से देना चाहूगा हरिप्रसन्न उसी स्टडीरूम मे रहा जिसम पहले दिन कमर म धोती का फॅट बाधे हाथ म बास म बधी भाडू लिए उसकी भाभी सुनीता उसे मिली थी। वह उसके अप्रत्याशित आगमन पर जल्दी म सिर पर धोती का छोर लेकर सिट पिटाई-सी खडी रह गई थी। इसी स्टडीरूम मे उसने शलो और ह्यूॉ की किताबें खीचकर उनमे अलग अलग सुन्दर-सुन्दर अक्षरा म लिखा था—श्रीमती सुनीतादेवी ! इसी मे उसकी ठीक की हुई उन सपतिका भाभी की तस्वीर अब भी रखी है और क्यो इस ही कमरे ने (आह !) उन दोनो (पति पत्नी) के

जान किन किन पवित्र रहस्या, किन किन क्रीडाग्रा ग्रौर स्नेह वार्ताम्रो की सुरभि को ग्रपने मम म धारण नही किया है ! ग्राज उसी स्टडीरूम म ग्रपने बडल के भीतर ग्रादमी की जान लने वाले इस्पात के रिवाल्वर को दुबका रख कर वह फिर ग्रा पहुचा है । नही जानता है क्यो ! ग्रौर मानो वह ग्रपने से लौट लौटकर पूछना चाहता है—'क्या रे क्यो ?'

मनोभूमिगत वरणन शली

यदि हम प्रस्तुत ग्रनुच्छेद का विश्लेषण करें तो इसम एक ऐसे व्यक्ति की मन स्थिति पूण रूप म व्यजित हुई है जो कि कभी भी नारी के सम्पक म नही ग्राया है । ऐसे व्यक्ति के मन म किसी नारी को लेकर जिन जिन कल्पनाम्रो का उदय हो सकता है, उन सबका सूक्ष्मातिसूक्ष्म वरणन प्रस्तुत ग्रनुच्छेद मे सुलभ है । क्रातिकारी हरिप्रसन्न इसी स्टडीरूम मे जब ग्रपने इस्पात के रिवाल्वर को दुबकाना चाहता है तो वह ग्रपने ग्रापसे पुन-पुन यही प्रश्न करता है कि ऐसा वह क्यो कर रहा है । कौन-सी है वे मानसिक तरगें जिनके वशीभूत वह ग्रपन मन का ग्रादोलित पाता है । एक सौन्दयमयी नारी के क्षणिक सम्पक ने जसे उसके हृदय की जडता को द्रवित कर दिया है । इस प्रकार के विवरणो म 'सुनीता' जसे उपन्यास मे ग्रप्रत्यक्ष शली ग्रपनाई गई है, जहा पर लेखक पात्र की ग्रोर से एक सवज्ञ कलाकार का मानसिक विधान करता है । ग्रय उपयासा म, जो कि प्राय ग्रात्मकथात्मक रहे हैं उनम मन स्थिति का वरणन एक नया ही रूप ग्रहण कर लेता है ग्रौर वहा पर लेखक ग्रप्रत्यक्ष शली के स्थान पर प्रत्यक्ष शली को ग्रपना लेता है ।

एसा ही एक उदाहरण हम व्यतीत से उद्धत करना चाहेगे 'नही समझती थी चन्द्री, कि सुख के लिए मेरी वह दु ख की रचना है । पर जस सुख किसी को मिला है इस परवर्सिटी मे ! वह मुझे कवि जानती थी, पर मैं ग्राज जानता हूँ कि मैं पशु था । तब तो शायद मैं भी कवि जानता था ग्रपने को, महान् जानता था । विचारक जानता था । निणय के भाव से ग्रौर को देखता ग्रौर फसला देता था । तब चन्द्री मेरे लिए मानिनी थी जो ग्रतिशय रमणीय थी, इसी से मेरे लिए जम तिरस्करणीया बन उठी माननीया थी, इससे ग्रप माननीया हो गई । धनशालिनी थी इससे दण्डनीया बन गई, ऊची थी इससे नीची बनाना शायद मेरे लिए ग्रावश्यक हो गया । ग्रोफ क्या पसे की कमी मेरे भीतर इतनी गहरी जा बठी थी कि वह दबकर-दबकर ग्राहत ग्रभिमान की

१ सुनीता पृ० ७४ ।

ग्रंथि ही बन उठी। जो हो वह ग्रन्थियों में भुवनों में धनान्तर में तनता।[२]

मनोनुभूमिगत वर्णन-शैली

प्रस्तुत पंक्तियों में पति पत्नी की तकरार का अच्छा-खासा चित्र है। जयन्त जो कि अनिता के प्रेम में पगा है वह पत्नी चन्द्री के लिए कितना भयंकर एवं शांतियुक्त हो गया है! जिस जयन्त के व्यवहार में कवि की कोमलता व्यंजित होनी चाहिए थी, वही जड़ पशु के समान चन्द्री के साथ व्यवहार कर रहा था। इन पंक्तियों में एक मस्मरणात्मक ध्वनि भी है और विभेद की रेखाएं बड़े स्पष्ट रूप में अंकित की गई हैं।

२ दार्शनिक ऊहापोहजन्य वर्णन

दार्शनिक ऊहापोह के वर्णनों से जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि आक्रान्त है, आक्रान्त इसलिए कहता हूँ कि साधारण पाठक इसी दार्शनिक ऊहापोह के विवरण को पढ़कर जनेन्द्र के उपन्यास को फेंक देता है और प्रबुद्ध पाठक के गले भी यह चीज जरा कठिनाई से उतरती है। एक उदाहरण देकर उसकी व्याख्या करने में अधिक सुविधा रहेगी यहां सदाचार का कुछ मूल्य नहीं है, अपयश ही नहा है। बल्कि अरुण मूल्य है। अगर कहीं भीतर बहुत भीतर मज्जा तक में छिपा पशुता का कीड़ा है तो यहां वह ऊपर आ रहेगा। यहां छल असम्भव है जो छल कि सभ्य समाज में जरूरी हो है। यहां तहजीब की मांग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है। बहुयाई जितनी उभरी सामने आवे उतनी ही रसीली बनती है। बबरता को लाज की आवरण नहीं चाहिए, मनुष्य यहां खुलकर सगर्व पशु हो सकता है। जो नहीं हो सकता उसकी मनुष्यता में बट्टा समझा जाता है इसलिए सच्चरित्र दीखने वाला यहां नहीं टिक सकता। उस मज्जा तक सच्चा होना होगा तभी खैरियत है। जो बाहर हो, वही भीतर। भीतर पशु हो तो इस जलवायु में आकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरेगी। मनुष्य हो तो भीतर तक मनुष्य होना होगा। कलई वाला सदाचार यहां खुलकर उघड़ रहता है। यहां खरा कंचन ही टिक सकता है क्योंकि उसे जरूरत ही नहीं कि वह कहे कि मैं पीतल नहीं हूँ। यहां कंचन की मांग नहीं है पीतल में परहेज नहीं है उसमें पीतल रखकर ऊपर कंचन दीखने वाला नाम यहां छन भर नहीं टिकता है। बल्कि यहां पीतल का मूल्य है। इसमें सोने के धर्म की यहां परीक्षा है। सच्चे कंचन की पक्की परख यहीं होगी। यह

---

२ व्यतीत पृ० ११५ १६।

यहा की कसौटी है। मैं मानती हूँ कि जो इस कसौटी पर खरा हो सक्ता है वह खरा है और वही प्रभु का प्यारा हो सक्ता है।"[3]

प्रस्तुत लम्बे चौड़े उद्धरण को मैंने इसी दृष्टि से प्रस्तुत किया है कि हम जनेन्द्र के दार्शनिक ऊहापोह की प्रवृत्ति को पूर्ण रूप म समझ सकें। इस प्रकार केस्थल वचारिक चिंतना की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण होते हैं किन्तु जो पाठक उपन्यास को मनोरजन की दृष्टि से पढना चाहता है, उसकी सास ऐसे विवरणो में उलझने लगती है। प्रस्तुत पक्तियो म मणाल ने उस समाज की तथा कथित नतिकता का परिचय दिया है जिसके बीच वह बह रही है। इस सदभ म मणाल ने एक लम्बा चौड़ा व्याख्यान दिया है यह तो उसका एक अशमात्र है। पश्चिमी समाज—शास्त्रीय विश्लेषण की झलक इन पक्तियो मे हम पाते हैं। प्रस्तुत उद्धरण मे जटिलता का अभाव है। या जैनेन्द्रजी जब इस प्रकार के विवरण प्रस्तुत करते हैं तो कभी-कभी वे काफी बहक भी जाते हैं और उनके कथन या विवरण का आशय स्पष्ट कर पाना बड़ा कठिन हो जाता है। ऐसा ही एक छोटा-सा उद्धरण मैं नीचे दे रहा हू

" जिसको तन दिया उससे पसा कसे लिया जा सकता है यह मेरी समझ म नही आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हू तन दे सकूगी। शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कसे? दान स्त्री का धम है। नही तो उसका और क्या धम है? उससे मन मागा जाएगा, तन भी मागा जाएगा। सती का आदश और क्या है? पर उसकी बिक्री—न न यह न होगा। अगरचे सोचती हू कि—"[4]

मनोभूमिगत वर्णन शैली

सती के आदश की ऐसी निराली व्याख्या सम्भवत अन्यत्र न मिलेगी। यह ठीक है कि लेखक मणाल के माध्यम से भारतीय नारीत्व की व्यजना कर रहा है, किन्तु जब वह स्वय ही अपने विवरण के बीच प्रश्न उठाता है तो उसका सकल्प स्खलित होता हुआ-सा प्रतीत होता है। जो बात लेखक कहना चाहता है वह काफी गहरी है, विचारो को भी उससे उत्तेजना मिलती है किन्तु इस प्रकार की अभिव्यक्तिया मे स्पष्ट दिशा का निर्देश नही मिल पाता।

३ वातावरण-सृजन की दृष्टि से प्रकृति वर्णन

गहरे विचारो से आप्लावित जनेन्द्र के उपन्यासो म प्रकृति वर्णन प्राय

३ त्यागपत्र पृ० ६४।
४ त्यागपत्र पृ० ६४।

उपेक्षित रहा है किन्तु जहाँ भी लेखक को ऐसा अवसर मिला है वहाँ हम प्रकृति वर्णन में छायावादी गद्य-सुषमा का स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। एक ऐसा ही विशुद्ध प्रकृति का वर्णन 'परख' से उद्धृत किया जा रहा है "काश्मीर स्वर्ग है और काश्मीर का शालामार स्वर्गोद्यान। उसी स्वर्गोद्यान में एक बगीचे में चिनार के पेड़ के नीचे सब बैठे हैं। बाहर झील में उनका बजरा ठहरा है। जहाँ बैठे हैं मखमल सी दूब का कालीन दूर तक फैला हुआ है। सामने ही नहर है। किलोल खाती बह रही है मछलियाँ उसमें खेल रही हैं। वह बहती फिर संगमरमर के प्रपात पर जा उतरती है धीरे धीरे बल खाती, इठलाती और खेलती हुई। मानो शहंशाह शाहजहाँ की सौन्दर्य-कल्पना धारा जलमय होकर लहरियों का शुभ्र नील हलका वसन पहन कर, हमें अपनी अठखेलियाँ दिखला रही हो।"[5]

मनोभूमिगत वर्णन शैली

प्रस्तुत उद्धरण में प्रकृति का एक विशुद्ध चित्र है। इसमें कहीं भी कोई जटिलता या दार्शनिकता नहीं है किन्तु परवर्ती उपन्यासों में जैनेन्द्र का प्रकृति वर्णन भी दार्शनिकता से कटकित हो गया है क्योंकि ऐसी अवस्था में वे प्रकृति को भी अपने विचारों की चेरी बना लेते हैं और तब बाह्य वातावरण के सृजन में उससे अधिक मदद नहीं मिलती हाँ पात्र की अन्तप्रकृति का उससे किंचित् आभास अवश्य मिल जाता है।

एक ऐसा उदाहरण जिसमें प्रकृति पुरुष को उत्तेजना प्रदान करती है और उसके प्रमुप्त भावों को प्रस्फुटित करती है और लिया जाय

रात को दो ढाई बजे के करीब चाँद निकल आया। दूध-सी चाँदनी बिछ गई। आसमान हँसता दिखाई दिया। प्रकृति भी उसके नीचे खिली। वातावरण में अजब मोह था। बयार में गुलाबी सर्दी थी।

हरिप्रसन्न नहीं सो सका नहीं सो सका। मौन उसे हल्की लगता है। पर इन घड़ियों का एक एक पल उससे उठाये नहीं उठता। चाँद की चाँदनी क्या है? क्या वह ऐसी मीठी है? अरे यह सन्नाटा उसे सुनाता क्या नहीं? क्या यह सब-कुछ एक रसीला-सा सन्देश उसके कान में सुना रहा है? वह कौन है? वह सन्देश क्या है? कौन उससे कह रहा है— अरे जा अरे जा। और यह बिना ही वाणी कौन उसके भीतर पुकार रहा है— अरे आ अरे आ। सुनीता सुन पत्थर पर सो रही है। तकिया बाँह का भी नहीं है। वहीं है पर कुछ भी

५ परख पृ० २८।

नही है, और वह सो रही है। ओह रेशमी वस्त्र चादनी मे कसे खिल रहे हैं और यह मुखड़ा विनिद्रित सम्मुटित कसा प्यारा लग रहा है। कसा प्यारा और कसा जहर।[६]

मनोभूमिगत वर्णन शैली

प्रस्तुत उद्धरण म केवल प्रकृति का विशुद्ध चित्र ही नही है, बल्कि उसके प्रभाव से जिस रूप मे मानव मन मे उद्वेलन होता है उसका भी मार्मिक चित्रण है। यहा प्रकृति और मानवीय भावनाए एक दूसरे पर परस्पर निभर करती हैं। इस प्रकार के वर्णन जनेन्द्र के प्रारम्भिक उपन्यासो मे तो मिलते हैं, किन्तु परवर्ती उपन्यासो में प्राकृतिक वर्णन की यह प्रवृत्ति क्षीण से क्षीणतर हो गई है, और अन्त मे जाकर तो उसका प्रभाव वचारिक ऊहापोह मे अपने अस्तित्व को ही खो बठा है। इस दृष्टि से अज्ञेय और जनेन्द्र मे बड़ा अन्तर है। अज्ञेय के कथा साहित्य मे प्रकृति के सप्राण चित्र बहुत बड़ी मात्रा में बिखरे पड़े हैं, किन्तु जनेन्द्र मे यह प्रवृत्ति नगण्य है। प्रकृति से जीवन को जो ताजगी प्राप्त होती है, उससे जनेन्द्र के उपन्यास अन्तत हाथ धो बैठने है। सुनीता आधी रात को चादनी म जिस प्रकार खिल रही थी, उसका बहुत ही मार्मिक चित्र उपयुक्त उद्धरण म अकित है। रूप का प्रभाव सहज प्राकृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि पाकर, अपने आपको प्रस्फुटित करता है।

विवत से एक ऐसा उदाहरण लें जिसम उसका नायक जितेन प्रकृति से गहरा तादात्म्य स्थापित किए हुए है। वहा प्रकृति अपने विविध आयामो मे प्रस्फुटित हुई है। नदी है सर्दी गर्मी है चाद पेड और नौका भी है। जितन प्रकृति के इस क्रोड मे गहरी परितृप्ति अनुभव करता है। उसकी परिवद्धि का चित्र निम्न पक्तियो म दृष्टव्य है रात को ग्यारह बजे के बाद आकर जितेन ने नाव ली पतवारें सभाली और धारा से उल्टी तरफ खेने लगा। सब सुनसान था। रात हसती थी। तारे बहुत थे और बहुत घने थे और बहुत उजले थे। चाद था नहीं। पेड सोये थे। पानी भी सोया लगता था, अगरचे बह रहा था। बस डाड की छप-छप की आवाज एक आवाज थी, या फिर किनारो से आती झिल्ली की टेर, जो मौन ही को तीखा करती थी। जितेन खेए गया, खेए गया। कोट उतारकर उसने बराबर रख लिया था, सिर्फ बदन पर बनियान पहने था, पर इसमे भी उसे गर्मी मालूम होती थी। मील भर ऊपर आ गया होगा। रात की सर्दी म भी कड़े श्रम से पसीने की बूदें माथे पर आ

६ सुनीता पृ० १७८ १७९।

टपकी थी। वह शान्त हो गया। बस्ती दूर छूट गई थी। उसे अच्छा मालूम हो रहा था। वह था और सन्नाटा। बीच में कहीं कुछ बाधा होने को न था। अब वह थक कर चूर हो गया था। नाव उसने दूसरे किनारे रेत पर लगाई और उतर कर वह बालू पर चित लेट गया। उसे अच्छा मालूम हो रहा था। रेत ठण्डी थी, शायद जरूरत से ज्यादा ठण्डी थी। रात ठण्डी थी और सर्दी मालूम से अधिक थी। लेकिन अब उसे सुहावना लगा और शीत का स्पर्श उसे सुखकर मालूम हुआ। वह अपने पूरे फैलाव में लेटा रहा। पैरों में बूट थे, उससे ऊपर पतलून थी, पर ऊपर खाली बनियान। खुले शरीर पर सीली शीत वायु उसे प्यारी लगी। अपने पूरे फैलाव में रेत पर बिछकर वह लेटा ही रहा। बाहें पीछे करके फैलाई, अंगड़ाई ली, फिर इधर उधर करवटें लेकर रेत पर ही वह लोटने-पोटने लगा। जाने कब का वह मिट्टी का स्पर्श छूट गया था। अब बरसों बाद, मानो जीवनों बाद मिट्टी में लगकर उसने कृतार्थ का परस पाया। कभी सुन्न शिथिल हो रहता, कभी फिर लोटने-पोटने लगता। उसे कुछ भान न था, मानो वह था और धरती में लगी हुई उसकी कृतार्थता थी। ऐसे कब तब वह वहां रहा पता नहीं। वह वहां रह ही जाता, जब तक कि तड़का फूटकर जगत की उपस्थिति उसे न सुझा देती।

मनोभूमिगत वर्णन शैली

जितेन की नौका विहार के उपर्युक्त वर्णन में प्रकृति के अनेक सन्दर्भ हमारे हाथ लग जाते हैं। यहां हंसने वाली रात है, उजले और घने तारे हैं, चांद की अनुपस्थिति है, पेड़ और पानी पर मौन का आरोपण है। यहां प्रकृति सजीव-सप्राण बन गई है। छप छप की आवाज और झिल्ली की टेर से संगीत का साज भी जुटा लिया गया है। ऐसे सन्नाटे से भरे वातावरण में जितेन निरंतर नाव खे रहा है और परिणामस्वरूप उसके मस्तक पर स्वेद बिन्दु हैं। इन स्वेद बिन्दुओं से प्रकृति के प्रति उसकी तन्मयता ही प्रकट होती है। बालू पर चित लेटने से यही आभासित होता है कि दुनिया के जन-समूह से दूर जितेन प्रकृति की एकांत आश्रयस्थली में गहरी विश्रान्ति अनुभव करता है। पूरे फैलाव में लेटने में उसकी थकावट को दूर करने की आकांक्षा ही प्रकट होती है। अंगड़ाई लेना, करवटें बदलना, लोटना पोटना सबसे यही ध्वनित होता है कि जिस मिट्टी से उसका सम्पर्क टूट गया था आज उससे वर्षों बाद मिलाप हुआ है, और वह इससे गहरी कृतार्थता अनुभव कर रहा

विवर्त पृ० २११ १२।

है। रात बीत चली है और तड़का फूटने को है—इससे यही बोध होता है कि लगभग सारी रात वह प्रकृति की इस एकान्तस्थली म अपनी गहरी श्राति का निराकरण करता रहा है। यहा नायक जितेन का प्रकृति के साथ जो प्रगाढ सम्बन्ध स्थापित किया गया है उससे यह बात भी प्रकट होती है कि हारे थके इन्सान के लिए प्रकृति का एकान्त और रमणीयता बहुत बडा वरदान है।

उपर्युक्त उद्धरण म व्याकरण की दृष्टि से अनेक त्रुटियां हैं। कहीं लिंग विपयय, तो कहीं पुनरुक्ति है, तो कहीं उर्दू लहजा है, किन्तु हुआ यह सब सहजता और प्राकृतिकता के नाम पर। 'जीवनों बाद', 'बाधा होने को न था' जसे गलत प्रयोगों से यही प्रमाणित होता है कि लेखक स्वेच्छाधारी है और अपनी मन की झोंक के वर्णन मे वह व्याकरणगत नियमों को ताक मे रख देता है।

सामान्यत प्रकृति के वर्णन जैनेन्द्र के उपन्यासों मे ढूढने स ही मिल पाते हैं। कहीं वे सजीव होते हैं तो कहीं निर्जीव। उपर्युक्त उद्धरण जहा प्रकृति की सजीवता का चित्र अंकित करता है और मानव सम्पक्ति के भाव को रेखांकित करता है वहीं निम्न पंक्तियों मे सध्या का वर्णन केवल खाना पूरी मात्र ही लगता है हम लोग लौटकर जमना किनारे घूमते रहे। समय सूना और सुहा बना था। दिन के उजाले पर हल्की-हल्की सन्ध्या की छाया उतरने लगी थी। मानो वातावरण मे अलसता थी। करने धरने का दिन जाता धूप का समय ढल गया था। अब मानो विश्राम प्रकृति पर और जगत पर धीरे धीरे आकाश की ओर उतर रहा था।[८]

* * *

सध्या की छाया अब सिर्फ ठण्डी न रही थी। वह धीमे धीमे अधियारी पड़ती जा रही थी। घाट पीछे छूट गया था। अब वह दीखता भी न था। बना और पक्का जो था सब पीछे रह गया था। आगे उजाड़ और बियाबान आता जा रहा था। अब हम एक टीले पर चढ रहे थे। उजाले का सिर्फ अब नाम ही था। हम चल भर ही सकते थे। आसपास की झाडिया जीती और दुबकती-सी लगती थी। हम टील पर आ गए। यहा कुछ दरख्त थे। मैं समझ रही थी हम भटक रहे है। लेकिन लाल के कदमो में विकल्प न था। जसे उनमे दिशा थी और जानकारी थी और वही हुआ। पेड़ो के झुरमुट के बीच एक खुल मे हम पहुचे जहा कुछ लोग जमा थे।[६]

---

८ सुखदा पृ० १७२।

६ वही पृष्ठ १७३।

सहायक सिद्ध हुई है।

चिड़िया की चहचहाहट का कान म आना प्रभात का सूचक है। 'दिन जब जगने को था'—मे विशेषण विपयय की झलक देखी जा सकती है। प्राग सूर्योदय का चित्र है और अधरे के कटने की बात कही गई है। इसके उपरात जयन्त के मन मे डर बढ़ता है और वह आत्मस्थ होकर अतों से बातचीत करने म तल्लीन हो जाता है। इस प्रकार के प्रकृति चित्रा म प्रभात रात्रि, अधकार और उजाले की बात आती है और वह मन की मूक भावनाओं को वाणी प्रदान करती है।

प्रकृति वणन के प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व यह उचित ही होगा कि हम जयवर्धन के साथ सागर तट की सर कर लें बशर्ते कि इली को इसस कोई ऐतराज न हो बहुत दिनो की बात है बीस शायद बाईस बरस पहले की। सागर का तट था। सध्या डूब चली थी। तट सूना था। लहरा पर लहरें लेकर सागर आता और पछाड़ खाकर पीछे लौट जाता। मैं बराबर म साथ न थी। दो डग पीछे खडी जय को देख रही थी। वह पास थे और पूरे दीख नही सकते थे। आख से जसे परस ही पा रही थी। दो स ऊपर मिनट हो गए थे और वह स्तब्ध खडे थे। आज उनका मन उन्मन था। चुप थ जस कही ग्रस्त बात न कर पाते थे बस सागर की ओर मुह किए खडे थे—स्तब्ध और अचल।[12]

मनोभूमिगत वणन शली

हमारे प्रयोजन के लिए यह प्रकरण इतना ही पर्याप्त है। यहा सागर का वसा सश्लिष्ट वणन तो सुलभ नही है जैसा लाड बायरन के द आशन म है किन्तु सागर की मूच्य स्थिति ही जयवधन और इला के पारस्परिक मानसिक सदभ को स्पष्ट करने म सिद्ध हुई है। जय का पछाड खाते हुए सागर क दय म लीन हो जाना अकारण नही है। उसके मानस म जो हलचल है उसी का सादृश्यपूर्ण प्रतिबिम्ब वह सागर की लहरा म भी देख रहा है। या प्रकृति मानव जीवन के साथ एक आत्मीयतापूर्ण सम्पृक्ति का ही परिचय देती है।

जनेन्द्र के उपन्यासों मे प्रकृति का स्वतत्र अस्तित्व नहीं मिलता, वह केवल एक पूरक और सहजात (बाइ प्रोडेक्ट) उपकरण के रूप में ही आई है। छोटे छोटे वाक्यों के द्वारा उसकी भगिमा को हल्के रगों से केवल भर दिया गया है। ज्यों ज्यों उनके उपन्यासों मे नागरता का तत्व (अरबन एलोमेंट) वृद्धिशील होता गया है, त्यों त्यों प्रकृति पीछे छूटती गई है।

१२ जयवधन पृष्ठ १२८।

(४) समसामयिक सन्दर्भों का सस्पर्शात्मक वर्णन

जनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासो मे समसामयिक सन्दर्भों की कुशल अभिव्यजना है। 'जयवधन', 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' म वे समसामयिक सन्दर्भों के प्रति विशेष सजग प्रतीत होते हैं। जयवधन' म नेहरू और गाधी की राजनीति की स्पष्ट रूप से चर्चा है। 'मुक्तिबोध' म मन्त्रित्व की उखाड-पछाड एव विधान सभा-सदस्या एव युवा आक्रोश का सहज प्रतिबिम्ब मिलता है। मुक्तिबोध' म वीरेश्वर इस आक्रोश का माध्यम बना है, तो 'अनन्तर म प्रकाश एव जामाता माल्लिय नवयुवको की उथल पुथल का प्रतिनिधित्व करते हैं। औद्योगिक व्यक्तियो के जीवन का प्रतिनिधित्व, अनन्तर' म आदित्य के द्वारा सम्पन्न हुआ है। किन्तु यहा यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसे सन्दभ चलताऊ ढग म ही आए हैं उनके प्रति लेखक की गहरी आस्था नही है इसीलिए इनका विवेचन भी प्राय उथला है। लेखक की प्रतिभा केवल उन्हीं प्रसगों का निष्ठा के साथ चित्रण करती है, जो या तो मानव-जीवन की गुत्थियों को सुलझाने वाले हों या नर नारी की अन्तप्रकृति एव सश्लिष्ट सम्बन्धों को अभिव्यजित करते हों, इसीलिए हमने यह कहा है कि समसामयिक सन्दर्भों को केवल छू भर दिया गया है।

'सुनीता' म उस रात्रि का चमत्कारी वणन है, जब हरिप्रसन्न भाभी सुनीता को गहन जगल मे ले गया था और क्रान्तिकारी दल के सदस्यो को दीक्षा देने की बात थी। इसी उपन्यास म त्रिवेणी का वणन भी आया है, जहा श्रीकान्त को हरिप्रसन्न दिखाई दिया था। 'परख' मे वकील साहब के परिवार की काश्मीर-यात्रा के कारण प्राकृतिक वैभव को वर्णित करने का विशेष अवसर मिला है। इसी प्रकार क्रातिकारियो के निवास स्थान और उनकी जीवन चर्या का लेखक ने विशेष रूप से अकन किया है।[13]

यह आश्चय की ही बात है कि जो कलाकार 'एक गौ जैसी चुटीली कहानी लिख सकता है उसके उपन्यासा मे पशु पक्षियो के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी प्रकार पवत सरिताए एव ऋतुए भी जनेन्द्र की वणन परिधि म नाममात्र को ही आ सके हैं। यदि कही प्रसगवश इनका वणन आया है तो वह प्राय सकेतात्मक एव प्रतीकात्मक ही रहा है। परख' मे जहा काश्मीर की भी झलक मिलती है वही कट्टो के घर का भी एक प्रकृति चित्र बडा मार्मिक बन पडा है 'वह लेट गया। पेड पर अधपकी जामन लग रही है। दखते देखते बिहारी के सिर पर कट्ट से एक जामन पडी। अम्मा तुम्हार घर म या

१३ विवत जितेन और तिन्नी का प्रसग।

आकाश से बम्ब के गोले गिरते होंगे, तब तो मैं यहीं का हो रहूँगा। घर भी नहीं पहुँच पाऊँगा! अरे, रो मत, सो जा। मैं नहीं जाने का जा मैं कहता हूँ। दिल्ली में भी मिला है कभी मुझे ऐसे सोने को? वहाँ तो चाहे इसके लिए तरसता ही हो!

जाने दो मेरा क्या मैं तो सोय जाता हूँ। मेरा सिर फूट गया तो दूसरा अम्मा को ही देना होगा।

हाँ हाँ, दे देंगे। सो तू अब।

बिहारी जामन के तले माँ के प्यार की छाँह में खटोले के इस गवई स्वर्गगृह के प्रांगन में आँख मींचकर सो गया।[1]

मनोभूमिगत वर्णन शैली

प्रस्तुत उद्धरण में जहाँ बिहारी और अम्मा की अन्तरंग निकटता होती है, वहीं प्रकृति का एक ग्राम्य रूप भी जामुन की छाँह में बिछी हुई खटिया पर देखने को मिल जाता है। जामुन का टप्टप से गिरना एवं स्थानीय रंग ले आता है और गवई स्वर्गगृह के प्रांगन में—हम एक विशिष्ट अभिव्यक्ति के भी दर्शन करते हैं। दिल्ली और देहात की तुलना भी माँ-बेटे की बातचीत में मुखर हो उठी है जिसे हम *शैली के व्यवसाय में ले सकते हैं*। इस प्रकार के छुटपुट प्रकृति के वर्णन आरम्भ से उपन्यासों में तो मिल जाते हैं पर परवर्ती उपन्यासों में तो अलादीन का चिराग लेकर देखने पर भी ये वर्णन सुलभ नहीं हो पाते। *इस प्रकार के वर्णन की बहुलता हम अज्ञेय के कथा-साहित्य में* जरूर मिलती है जहाँकि मानव-जीवन से प्रकृति का संबंध स्पष्ट एवं अविच्छिन्न है। इससे यही सिद्ध होता है कि प्रकृति के वर्णन में जैनेन्द्र की विशेष अभिरुचि नहीं है और वे केवल मानव-जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में ही विशेष अभिरुचि रखते हैं।

जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासों में प्रकृति का बहिष्कार अत्यन्त विस्मयकारी है। 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' में दो ऐसे प्रसंग आये हैं जबकि लेखक प्रकृति का अत्यन्त रुचिर चित्र प्रस्तुत कर सकता था किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। 'मुक्तिबोध' के पाँचवें अध्याय में सहाय और नीलिमा पिकनिक के लिये सूरज कुण्ड जाते हैं। वहाँ पर लेखक की रुचि पिकनिक के सामान और नीलिमा के वर्दिंग सूट तक ही रह गयी है। कहीं भी सूरजकुण्ड की एकान्त प्रकृति का वर्णन नहीं मिलता। ऐसे प्रकरण केवल सूक्ष्ममात्र ही रहे हैं। इसी प्रकार

---

१४ परख पृ० ६६ दूसरी आवृत्ति १९४१।

'अनन्तर' में आदित्य प्रसाद को माउन्ट आबू की सड़कों पर घुमाता है। यहां इस बात की पूरी गुंजाइश थी कि माउन्ट आबू का, उसकी प्रकृति और पथों का व्यापक वर्णन होता, किन्तु लेखक ने केवल एक वाक्य से ही इस विवरण को निपटा दिया है "गुरुजी को उनके स्थान पर कार से उतार कर मुझे फिर माउन्ट आबू की सड़कों पर कहां-कहां घुमाता हुआ अन्त में अपने होटल ले आया।"[15]

मनोभूमिगत वर्णन शैली

'कहां-कहां घुमाता हुआ' से स्पष्ट रूप में व्यंजित होता है कि लेखक की उस घूमने या घुमाने में कोई रुचि नहीं है। वह तो केवल अपनी ही उधेड़बुन में व्यस्त है। एक स्थान पर नैनीताल और आबू की तुलना करते हुए कहा गया है "आप तो बस वैसे के वैसे ही हैं, बाबूजी! नैनीताल रहते तो सुर्ख हो जाते। और नहीं तो खुबानी, आलूबुखारा वहां अभी खूब आने लगा है। और चेरी! यहां तो सुनते हैं आपके माउन्ट में कुछ भी नहीं होता।"[16]

यह ठीक है कि माउन्ट आबू में नैनीताल जैसे फल नहीं होते, किन्तु वहां की प्रकृति रुचिर दृश्यों से विहीन नहीं है। पर्वतों और नक्खी झील का दृश्य पर्याप्त मनोरम है किन्तु लेखक ने उसके विवरण या वर्णन में कोई रुचि नहीं दिखाई।

मनोभूमिगत विभिन्न भाषा शैली वर्ग

जैनेन्द्र की भाषा शैली सर्वत्र एक-से ही सांचे में ढली हुई मिलती है। उसके दो ही रूप प्रायः सुलभ हैं। उनकी शैली का प्रकृत रूप पात्रों की बातचीत में मिलता है, जहां वह अत्यन्त ही स्वाभाविक लहजे में मुहावरेदार शब्दावली के द्वारा अपने पात्रों को बुलवाते हैं। उनकी बातचीत में जीवन का ऊष्ण संस्पर्श रहता है। दूसरे प्रकार की भाषा शैली मानसिक ग्रन्थियों के विश्लेषण में उपलब्ध होती है। इन मानसिक ग्रन्थियों का विश्लेषण करना जैनेन्द्रजी का प्रिय व्यसन है। इसी के ऊहापोह में उनके व्यक्तित्व का सहज उन्मोचन होता है। यहीं हमें रहस्योन्मुख प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं जो नये नये जीवन-तथ्यों के उद्घाटन में बहुत व्यस्त प्रतीत होती है। जैनेन्द्र एक सजग विचारक हैं तार्किकता की ओर भी उनका सहज रुझान है इसलिए बात में से

---

१५ अनन्तर, पृ० ६८।

१६ अनन्तर पृ० ६९।

बात निकलती है ग्रौर उनकी चिन्तना के परत-पर-परत खुलते जाते हैं। सौभाग्य यही है कि ऐसा ग्रनायास होता है, यदि यह चिन्तन सायास एव ग्रारोपित होता, तो जनेन्द्र की ग्रौपन्यासिक सृष्टि एक ग्रनबूझ पहेली बन जाती।

निष्कर्ष जनेन्द्र *सहजता से जटिलता की ओर ग्रग्रसर हुए हैं।* 'परख' की भाषा शली ग्रौर उसकी मनोभूमि एकदम प्रशान्त है उसमे धीर मथर प्रवाह है। 'सुनीता' मे सहजता के साथ कुछ ग्रलकृति भी ग्राती है ग्रौर उसका छायावादी मादव मनमोहक प्रतीत होता है। 'त्यागपत्र' म एक वचारिक परिपक्वता क साथ-साथ भाषा शिल्प म भी एक पूर्णता के दर्शन होते हैं। 'कल्याणी' म भाषा की सामर्थ्य वसी ही बनी रहती है पर कथा शिल्प एव प्रभाव म कुछ कुछ न्यूनता ग्राने लगती है। 'व्यतीत' म जिस वचारिक रिक्तता एव गहनता का ग्रारम्भ होता है उसी की पुष्टि 'विवर्त' ग्रौर 'सुखदा' म है। 'जयवधन' तक ग्रात-ग्राते उनकी भाषा शली म एक ठहराव ग्राने लगता है ग्रौर उसके विकास के विविध ग्रायाम पाठक को चमत्कृत करते-स प्रतीत होते हैं। 'मुक्तिबोध' ग्रौर 'ग्रनन्तर' म ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखाई दन लगते हैं। ऐसी स्थिति म कोई भी कलाकार ग्रात्मकेन्द्रित हो जाता है ग्रौर वह ग्रपने निजी जीवन क सस्मरण ही उलट फेरकर सुनाने लगता है। 'ग्रनन्तर' म ग्रात्मकथात्मक उद्गारो का बाहुल्य है ग्रौर एसा लगता है कि ग्रब लेखक म विचारो ग्रौर भाषा की नई उठानो की दृष्टि से कुछ नया ग्रवशिष्ट नही रहा है। वह चुका हुग्रा-सा प्रतीत होता है। इसीलिए उसम पुनरावृत्ति के दर्शन होने लगते हैं ग्रौर हम सोचते हैं कि ग्रब लेखक को उपन्यास लेखन स हाथ खींच लेना चाहिए।

परिच्छेद—४

सभाषण तथा सवाद

सभाषण तथा सवाद तात्त्विक अन्तर

जनेन्द्र के उपन्यासो में सभाषणों एव सवादो का विशेष महत्व है। जब दो पात्र आपस मे बातचीत करते हैं, तो वह सवाद के अन्तर्गत आता है। सभाषण मे कोई विशिष्ट पात्र धाराप्रवाह रूप मे किसी विषय या प्रसग विशेष पर अपने विचार प्रकट करता है। सवाद प्राय सक्षिप्त एव चुटीले होते हैं, जबकि सभाषणों मे अपेक्षाकृत विस्तार होता है, जसे कोई वक्ता विशेष किसी विषय पर व्याख्यान दे रहा हो। सवादों में प्राय बोलचाल की शब्दावली प्रयुक्त होती है, पर सभाषणों मे लेखक को इस बात की आजादी है कि वह अपनी विशिष्ट भाषा शली में परतों पर-परत खोलता चले। दोनों ही स्थितियों मे श्रोता की अपेक्षा रहती है, पर सवाद में श्रोता एक सक्रिय अभिकर्ता भी होता है, जबकि सभाषण में श्रोता निष्क्रिय होता है। कक्षा के विद्यार्थियो की तरह या आमसभा के श्रोताओ की तरह उसे सब कुछ सुने जाना है। हा वह सभाषण की प्रतिक्रिया को मूक रूप मे अपने चेहरे पर अवश्य व्यक्त करता है। इससे सभाषणकर्ता को प्रेरणा एव प्रोत्साहन अथवा विपरीत स्थिति होने पर निष्प्रेरण एवं निरुत्साह भी प्राप्त होता है। सभाषणो म गहरे वचारिक प्रतिपादन के लिये पर्याप्त अवकाश होता है जबकि सवाद मे बातचीत का स्तर हल्का फुल्का एव कामचलाऊ ही होता है। इस बात को या भी व्यक्त किया जा सकता है कि सवादो हल्की मनोदशा म अपनी विचारणा व्यक्त करता है, सभाषण की मनोस्थिति अपेक्षाकृत गभीर होती है और

परिणाम स्वरूप गहन विवेचना से संयुक्त होती है।

संवादों के वर्ग

संवाद में प्रायः वक्ता एवं श्रोता की मनःस्थिति का स्पष्ट निरूपण रहता है। कहीं कहीं तो केवल संकेत या प्रतीक से ही बात पूरी हो जाती है। उदाहरण के लिये 'परख' के निम्न संवाद को प्रस्तुत किया जा सकता है

जीजी बैठो न।

तुम भी तो बैठो।

मैं पीछे खाऊंगी।

निबटाना भी तो है।

निबटना लो तो फिर। मैं भी पीछे ही खाऊंगी।

नहीं जीजी यह कोई बात है। तुम तो मेहमान हो, जीजी हो।

अच्छी जीजी हूँ और अच्छी मेहमान हूँ—इतना तो काम लिया कि—

नहीं नहीं मैंने तो यह परोस भी दी थाली—।

परोस दी तो रखी रहने दो। ठंडी काटती तो है नहीं।'

कट्टो हार गई और यह हारना कैसा अच्छा लगता है।

कट्टो ने कहा— अच्छा तो लो, मैं भी अब निबटी।

'तुझे देर तक भूखा नहीं रखूंगी। पर तुमने खिलाने में मदद दी तो अब निबटाने में भी दो।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण में सख्यत्व की स्पष्ट झलक है। उनहार मनुहार, झीन झपट, गुनगुनाहट और जबरदस्ती आदि आदि अनेक भावनाओं का सम्मिश्रण है और इसे भाव-शबलता का सुन्दर निदर्शन कहा जा सकता है। कट्टो और गरिमा एक दूसरे के सम्पर्क में आई हैं और कट्टो अपने मास्टर की पत्नी गरिमा को अपने सद्व्यवहार से रिझा लेना चाहती है। उनके संवाद से पारस्परिकता एवं सहयोगिता की भी प्रतिध्वनि निकलती है। कट्टो के निर्णय एवं औदार्य पूर्ण व्यक्तित्व की रेखायें भी इस उद्धरण में व्यक्त होती हैं। एक सखी दूसरी सखी के लिए किस तरह से अनुग्रह एवं उपालम्भ करती है इसका भी मार्मिक चित्र उपर्युक्त पंक्तियों में सुलभ है। कहीं-कहीं व्यंग्य की वक्रता भी संवादों को मिर्च मसालेदार बना देती है। आतिथ्य भावना भी छलकी पड रही है। उद्धरण की अंतिम पंक्ति में सहयोगिता की भावना सखी के हृदय को जीत लेती है। इसी प्रकार एक संवाद के बाद निर्देशक का चिन्ह देकर (—) बात को

---

१ परख पृ० १०२।

अधूरा छोड दिया गया है और अवशिष्ट अश को नयनो की व्यजना से पूरा किया गया है। दोनो सखिया के हाव भाव देखते ही बनते है जैसे कोई किसी स पीछे रहने वाली नही है। कटटो की समपरणशीलता एव त्यागवत्ति की यह चरम सीमा भी कही जा सकती है। उसके मन म सेवा की भावना ही मुखरित हो रही है और यह बात उपयुक्त उद्धरण म छलकी पड रही है किन्तु उसका परिधान सत्यत्व का ही है और उसका मिठास अनिवचनीय है। यह गाहस्थ्य जीवन स सम्बधित सवाद का प्रतिनिधि उदाहरण कहा जा सकता है।

वयक्तिक जीवन से सम्बधित सवाद जनेन्द्र के उपन्यासो मे पुष्कल मात्रा मे विद्यमान हैं। इस प्रकार के सवादो म निजी सम्बधो का प्रमुखता दी जाती है और वयक्तिक जीवन की आशा आकाक्षा नराश्य एव व्यथा और कभी कभी आत्मयातना तक के बडे सजीव सवाद मिल जाते हैं। एक उदाहरण देकर हम अपनी बात को स्पष्ट करगे "अगले रोज जब मैं मिला ता कल्याणी ने कहा—सचमुच आपकी बाता से मेरा उत्साह जाता रहा। इससे निराशा म मैंने कापी फाड दी।

मैंने कहा—यह तो सदा के लिए मुझे दोषी बना दिया गया।

उन्होंने पूछा—तो क्या सचमुच मैं लिख सकूगी ? लिख सकती हू ?

मैंने कहा—हा, अवश्य।

वह सुनकर कुछ देर चुप रही। बोली—अच्छा लिखकर फिर क्या होगा ?

मैंने कहा—लिखकर होता क्या है ? पहले जो लिखा उसका क्या हुआ ?

बोली—यही तो मैं जानना चाहती हूँ कि उस सबसे क्या हुआ है ? कविता से क्या होता है ? सब मन का उच्छवास है। उच्छवास स क्या होता है ?

मैंने कहा—फिर भी उच्छ्वास के घुटने से उसका बाहर रूप लेकर निकल आना क्या अच्छा नही है ?

बोली—क्यो अच्छा है ? मैं अचरज से उनकी ओर देखता रह गया।

बोली—सब व्यथ है सब व्यथ है।

मैंने कहा—सुनिए व्यथ कहने से तो जीवन का अथ भी व्यथ हो जाएगा। ऐसे कसे चलेगा ?

बोली—न चले तो क्या हानि है ?

स्पष्ट वह बहस चाहती थी, सुनना चाहती थी कहना चाहती थी। कुछ करने की गर्मी चाहती थी।"[२]

---

२ कल्याणी पृ० स० १५१६।

प्रस्तुत प्रसंग में कल्याणी के कवयित्री रूप की स्पष्ट व्यंजना है। इन उद्गारों में उनका सही किन्तु अनिश्चयपूर्ण व्यक्तित्व झांकता है। भाषा-संबंधी गल्तियों की आशंका में कल्याणी इतनी निराश हुई कि उसने कापी ही फाड़ दी। जब नारी किसी चीज का सृजन करती है तो उसका प्रयोजन एवं सार्थकता भी चाहती है। कल्याणी के मन में इस चीज को लेकर अनिश्चय है कि कविता में जो भावोच्छ्वास होते हैं उनका जीवन में क्या मूल्य है और इसी लिए अपने संवाद के अंतिम अंश में वे व्यर्थता की भावना से अभिभूत हो जाती हैं। उनके जीवन में जो व्यथा की अंतर्धारा प्रवाहित हो रही है वह इस प्रसंग में कुछ झलक पड़ी है।

ऐसी ही वैयक्तिक बातचीत का एक उद्धरण व्यतीत से प्रस्तुत किया जा रहा है

मैं लेट गया। दूसरी ओर करवट कर वह भी लेट गई। बत्ती अभी हमारे ऊपर रोशन थी। जल्दी मेरी आंख नहीं लगी। जाने अनिता क्या सोच रही थी या उसे झपकी आ गई थी।

मैंने कहा अनिता।

–सुनो अनिता तुम पुरी साहब के प्रति अन्याय तो नहीं कर रही हो?

–चुप रहो सोने दो।

–माफी मांगता हूं मैंने बुरा किया कि रोका।

–चुप नहीं रह सकते तुम जयंत। खबरदार जो बोले! मैं बत्ती करती हूं।[३]

प्रस्तुत उद्धरण में जयंत और उसकी प्रेमिका अनिता के एकान्तिक जीवन की झलक है। जयंत की पत्नी चन्द्री रसोई में चटाई डालकर बांहों का तकिया किए सो रही है। जिस पर अनिता ने जयंत का अधिकार बना लिया है। जो व्यक्ति अनिता द्वारा पुरी साहब के प्रति अन्याय की बात सोच सकता है वह स्वयं अपने द्वारा चन्द्री पर किए गए अन्याय को अवलम्बित क्या रखता है! चुप रहो सोने दो—ये एक तानाशाह की घुड़की है और आश्चर्य की बात तो यह है कि यह तानाशाह प्रेमिका का आवरण ओढ़े हुए है। इस प्रकार जनेन्द्र नितान्त वैयक्तिक प्रसंगों को कहीं तो छू भर देते हैं और कहीं उसे काफी विस्तार के साथ चित्रित करते हैं। उनके सभी उपन्यासों में इस प्रकार के संवाद काफी बड़ी मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं।

संवादों का तीसरा वर्ग तात्विक संवादों का कहा जा सकता है। जब लेखक

---

३ व्यतीत पृ० १२३।

स्वय दार्शनिक हो तो उसके उपन्यासो म इस प्रकार के सवादो की कोई कमी नही रह सकती। त्यागपत्र स एक उदाहरण लीजिय

"बुआ क्षणिक रुकी, फिर वोली—जरूर ले चलेगा, तो सुन, मैं नही जाऊगी, मैं नही जा सकती। तुम मुझको नही जानते हो मैं पति के घर को छोडकर आ गई हूँ पति है पर दूसरे पुरुष के आसरे पर रह रही हूँ, उसके साथ रह रही हू। तुम न जानो मै यह जानती हूँ। तुम अपनी आखें ढक लो, लेकिन मुझसे अपना यह सारा पातक निगल जाने को नही कह सकते। फिर जिनको साथ लेकर पति को छोड आई हूँ उनको मैं छोड दू? उन्होने मेरे लिए क्या नही त्यागा? उनकी करुणा पर मैं बची हूं। मैं मर सकती थी लेकिन मैं नही मरी। मरने को अधम जानकर ही मैं मरने स बच गयी। जिसके सहारे मैं उस मृत्यु के अधम से बची? जिनके सहारे मैं बची उन्ही को छोड देने का मुझसे कहते हो? मैं नही छोड सकती। पापिनी हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर क्या कृतघ्न भी बनू? नही। प्रमोद तुम सब लोग मुझे मरा हुआ क्यो नही मान लेते हो? क्यो मुझे तग करते हो?

* * *

मैंने खाना खा लिया। बुआ भी खाना बना चुकी थी। उसी समय अपनी गिनती के बतन धो माजकर मुझसे उन्होने कहा—

—सुनो, अभी ही तो नही जा रहे हो न?

—अभी ही तो नही—

—तो एक काम करो। बाहर ही दूकान है, वहा से उन्हे खाने के लिए भेज दो। तुम इतने पाच मिनट वहा बैठना, फिर यहा आराम करके जाना हो, तो दोपहर बीते जाना।'

प्रस्तुत उद्धरण म बुआ ने जो सात्विक निर्णय दिया है उसी का विश्लेषण उनके उद्गारो म विस्तार के साथ आया है। बुआ की दृष्टि निर्भ्रान्ति एव अकाट्य है। यह एक ऐसी नारी का निश्चय है, जिसने जीवन मे बहुत से पापड बेले हैं और अनवरत यातना की निहाई पर उसका व्यक्तित्व कचन की तरह निखरा है। जिस नये व्यक्ति को उन्होने अपनाया उसके प्रति उनकी आस्था एव कर्तव्य स्पष्ट हैं और इस बात के प्रमाण हैं कि एक परित्यक्ता नारी भी अपनी आत्मा म सती का सकल्प धारण कर सकती है। बुआ को इस व्यक्ति के सम्बन्ध म भी अधिक मुगालता नही है ये जानती हैं कि एक दिन इसका मोह कटेगा और यह अपने परिवार म चला जायेगा।

---

४ त्यागपत्र पृ० ५८ ५६।

इस प्रकार के तात्त्विक सवालों का वास्तविक रूप तो सम्भाषण वाले प्रकरण में विस्तार से लिया जायगा पर जहाँ नितान्त ही वैयक्तिक कुण्ठाओं एवं मनोवृत्तियों को प्रकाशन मिला हो, उन्हें हम सवाल की परिधि में ही लेने के कायल हैं।

राजनीतिक एवं समसामयिक सन्दर्भों की दृष्टि से जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासों में जयवर्धन, मुक्तिबोध और अनन्तर का विशिष्ट स्थान है। इन उपन्यासों में राजनीति का ताना-बाना बड़ी सूक्ष्मता से बुना गया है, विशुद्ध राजनीति भी आई है, देह की राजनीति भी आई है और नर-नारी की राजनीति भी आई है। अपनी बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना समीचीन होगा। मुक्तिबोध में सहाय और नीलिमा के बीच बातचीत चल रही है — पर मैंने कहा, राजनीति तुम देखती हो, बस आकर फँस गई है। वह अनीति बन गई है। फिर उसमें रहने में खालिस ही तो लगेगी, हाथ क्या आएगा?

राजनीति कब अनीति न थी? और तुम कह सकते हो कि दल का नम्बर एक बनने की तुम्हारे मन में स्पृहा नहीं रही? इस ख्वाहिश को नीति अनीति पर कभी तुमने तोला था? मैं कहती हूँ शब्द ये हार के हैं। नीति अनीति हार को अपनाने के लिए तुम इन शब्दों को टटोल लाए हो और मेरे सामने ऊँचा उठा रहे हो। पर स्त्री की और उसके प्रेम की आँख शब्दों के पार देख सकती है। वह खुश है कि तुम आजाद हो। जाओ और अपने आदर्श के और कर्तव्य के साथ रहो। वैसे ही जैसे आदमी बीवी-बच्चों के साथ रहता है। आराम की और पाबन्दगी की जिन्दगी होगी वह और मुबारक हो वह तुम्हें! मैं राजनीति नहीं समझती हूँ, तुम समझते हो। लेकिन कुछ है जो तुम नहीं समझते हो, हम सब समझते हैं। राज भी समझती है ।

—यानी मुझे नम्बर एक बनने की कोशिश करनी चाहिए?

—जरूर करना चाहिए। अगर अव्वल दोयम की भाषा मन में थी और उस भाषा ने अब भी तुम्हारे लिए अपना अर्थ नहीं खो दिया है—तो।"[५]

प्रस्तुत पंक्तियों में राजनीति के तत्त्व-दर्शन की बात दो पात्रों के बीच प्रकट हुई है। राजनीति की दुष्ट परिणति पर टसुए टपकाए गए हैं। नीलिमा सहाय की महत्त्वाकांक्षा को जानती है और इसलिए वह उनकी रग को पकड़ पाने में सक्षम सिद्ध हुई है। पर स्त्री की और उसके प्रेम की आँख शब्दों के पार देख सकती है—इस पंक्ति में नारी का आत्मविश्वास और प्रेम को समझने की क्षमता दो-टूक शब्दों में प्रकट हुई है। निम्न वाक्य में व्यंग्य ध्वनि की

---

५ मुक्तिबोध पृ० ६४।

मार्मिकता बडी सटीक है—जाम्रो और अपन म्रादश के और कतव्य के साथ रहो, वैसे ही जस म्रादमी बीबी बच्चो के साथ रहता है।' सहाय जब प्रति-यग्य करते हैं ता नीलिमा का आत्मविश्वास एव सकल्प उपयुक्त पक्तियो म बडी सफलता के साथ व्यजित होता है नीलिमा का तार्किक रूप यहा देखते ही बनता है।

समसामयिक स दर्भो के प्रति परवर्ती तीन उप यासो म विशेष जागरूकता पाई जाती है—जयवधन, मुक्तिबोध और अन तर। मुक्तिबोध मे वीरेश्वर के माध्यम से युवा आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है। जयवधन म चूकि समसामयिक राजनीति की अभि यजना है इसलिए उसम भी यह स दभ उभर कर सामने आते हैं। कि तु समसामयिक स दर्भो की सफलतम अभि यक्ति अन तर म प्रकाश के माध्यम से हुई है। प्रकाश का एक उखडा हुआ नौजवान है जो कि विवा हित होने पर अपन अस्तित्व की स्वीकृति चाहता है। वह अभी अभी काशमीर से लौटा है, तो पिता उससे वहा के दृश्यो और जीवनाभि यक्तिया के लिए बहुत आग्रह कर कुछ पाना चाहते हैं। प्रकाश कुछ बताने की स्थिति म नही है और पिता के आग्रह का उत्तर वह असयत रूप मे इस प्रकार दता है 'आप अपन को बहुत बुद्धिमान समझते हैं।'

। —मैं सुनकर सन रह गया।

कहकर कुछ देर वह चुप और शा त खडा रहा फिर बोला मैं जा सकता हूँ ?

और उत्तर म मुझे निरुत्तर छोडकर बिना अनुमति पाये वह सामने स बेधडक चला गया।[१]

एक और उदाहरण लीजिए। प्रसाद और गुरु आन द माधव के बीच प्रकाश को लेकर बातचीत चल रही है। इस स दभ म गुरु के उदगार इस प्रकार हैं अब वे लडके कहते हैं विज्ञान से देख लिया है कि आत्मा कही नही है। जो है है। त्याग बेकार है। हमम तृष्णा है वासना है तो है। अरुचि क विशेषण देकर उसे हटाया नही जा सकता। व्यवस्था के नाम पर जो नीतिवाद खडा किया गया, ढकोसला है। ढकोसला उनका है जो खुद क लिए भोग और दूसरा के लिए सयम चाहते हैं। प्रकाश अकेला नही है इसमे। प्रसाद और यह पौध हमम स उगी है। प्रतिक्रिया है तो हमारी ही क्रिया होगी। प्रसाद सोचो, उस पर जो तुमन लिखा है। मैंने कहा था कि अंतिम सत्य पहुचने के लिए नही होता। तुम बुद्धि से उसी के पीछे हो। उस माग पर तुम जो रेखा स आगे बढे तो उसी का प्रतिफल है यह उत्पात विद्रोह। तुम जसे बौद्धिको ने निमाण

१ अन तर पृ० १३० ३१।

बिगाड़ा है उसने —गुरु जी ने रहकर विचार की नाव में तुमने वचनों पदों की है उसमें कि उसने-युगल के बिना वे रह नहीं सकते। तुम कुछ काम में होते तो विचार की धार इतनी तीखी न होती तुममें ।

—मैंने कहा शायद आप ठीक कहते हैं प्रसाद की आप सम्भाल लीजियेगा ?

—सम्भालने में ज्यादा इन्तजार नहीं होता। दिमाग का उफान हाथ के काम में आप बहने लगता है। पसीना होने कुछ उस भाव बनाये वह तो सब ठीक हो जायगा। वह मेरे पास आयेगा क्या ? एक बार उसका तो शांति से कम कुछ करना वह क्या चाहेगा ?

—पर उसका विवाह हो गया है ।

—तुम भी प्रसाद कभी दकियानूस बन जाते हो। अरे अजी विवाह शोभ ही नहीं होता कि भूल जाये उसमें भी होना है कि और उभार। हम यान के लोग जान उसे क्या समझते हैं। इनको इन हिप्पी लोगों को। लड़कों से क्या उनमें लड़कियों की संख्या कम है ? एलम्मी वह होकर कोई लाफविलिटी' भले हो मगिनी होकर एसेट हो जाती है और इसमें गलत भी क्या है ? "[७]

उपर्युक्त पंक्तियों में युवा विग्रह के सदर्भ में दो मित्रों की बातचीत प्रकट की गई है। इस वार्ता में नये युग की प्रवृत्ति को पकड़ने की एक सफल चेष्टा है। नई और पुरानी पीढ़ी के मानसिक अन्तर का एवं तज्जन्य विद्रोह का यहाँ अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। इस प्रकार के समसामयिक सन्दर्भों के प्रति जनेन्द्र एक वैचारिक के नाते प्रारम्भ से ही जागरूक रहे हैं। अनन्तर में यह जागरूकता अपनी चरम सीमा को प्राप्त करती है। गुरु प्रसाद से जब हिप्पी लोगों की बात करते हैं तो जीवन की आधुनिकतम प्रवृत्ति का ही संकेत करते हैं। इस प्रकार के संवादों में एक तात्विक आधार भी होता है। यह तात्विक आधार समसामयिक सन्दर्भों को सप्राण बनाता है।

समसामयिक सन्दर्भ की एक भिन्न झलक रामेश्वरी और चारु की बातचीत में मिलता है 'अम्मा इसने सीधे आकर मुझसे कहा कि उनको मैं प्यार करती हूँ। इसके लिए सजा देना चाहो तो सजा दो, माफी दे सको तो माफी दे दो। तुम्हारे वे पति हैं इसलिए प्यार तुम्हारा फर्ज हो सकता है। मेरा फर्ज नहीं है फिर भी प्यार है। इसलिए शायद पाप हो। तो मैं सजा के लिए तुम्हारे पास आ गई हूँ। कहती है कि तुम या तुम्हारी माँ अपने हाथ से मुझे जहर तक दें तो उसी क्षण खाकर मैं मर सकती हूँ। मैं तो नहीं दे सकी माँ तुम चाहो तो दे दो। और चाहो तो माफ कर दो।

---

७ अनन्तर पृ० १३२ १३३।

'बावली तो नहीं हुई तू लडकी। तुझे लूटने आए कोई और मैं माफ कर दू। कह तो जा रही है प्यार करती हू। यानि, प्यार छोडेगी नहीं और फिर माफ कर दू ?

चारू न कहा— क्या कहती हो अपरा ?"

हा माजी 'प्यार मैं बताइए कैसे छोड सकती हू।' फर्ज होता तो छोड भी देती। जो फर्ज के पार हो गया है उसको कह भी दू तो बताइए कि कैसे छूटेगा ?

रामेश्वरी ने कहा नहीं छूटेगा। तो सुन लो, एक म्यान में दो तलवार नहीं रहेंगी।[८]

प्रस्तुत पक्तिया मे एक पुरुष और दो नारियो की प्रणय टकराहट को चित्रित किया गया है। मजे की बात यह है जिस पर खुद बीती है, वह तो उदार है, किन्तु भुक्तभागी की जो मा है उसमे व्यवहार की दृष्टि से आनाश एव दो-टूक बात कहने की प्रवृत्ति है। चारु के हृदय-परिवर्तन की ये रेखाए पूर्ण मनुष्यत्व की झलक देती हैं, और प्रेम की विवशता को भी प्रकट करती हैं। इस सम्वाद में एक गहरी एव तीखी अन्तर्धारा है जो कि टूटते हुए हृदयो को जोडती है। यो इस कथन मे अनन्तर के सघर्ष का चरम निष्कर्ष भी है।

इस प्रकरण के अन्त में हम प्रेयस प्रेयसी के सम्वादो की भी एक झलक देना चाहते हैं। ये सम्वाद अपने आपमे दो प्राणो के अद्भुत तारतम्य को प्रकट करते हैं। इस प्रकार के सवादो में अधिकार भावना भी लक्षित होती है। एक उदाहरण लीजिए इतने में सामने से ऊचे लिबास में एक युवा पुरुष कमरे में आए। सहसा मुडकर अनिता ने उनसे कहा, आओ 'इन्ट्रोडियूस' कराऊ, यह है जयन्त और जयन्त, मेरे मिस्टर पुरी, फिर फौरन बोली, देर न करो, बस चल पडो। फिर मौका नहीं मिलेगा।

मैंने कहा मुझे तो अभी काम है।

—*कोई काम-वाम नहीं*—

उसने दफ्तर के दूसरे लोगों की तरफ देखा, लोग सभ्रम में सब खडे हो गए थे। शायद उसे अपेक्षा थी कि कोई आगे बढकर मेरे काम को अपने ऊपर लेने की सभ्यता दिखाएगा। उसके चेहरे पर जमे था कि क्या स्त्री का पुरुष जाति के प्रति यह अधिकार नहीं है ? किन्तु किसी की स्वय-सेवा स्वत समक्ष नहीं आई। मानो वह चकित थी खिन्न थी। बोली, आप लोगो में से कृपाकर क्या कोई इनके काम को नहीं सम्भाल लेंगे कि यह मेरे साथ आ सकें ?

---

८ अनन्तर पृ० १५१ ५२।

एक साथी ने तत्परता जताई ग्रौर वह मुस्कराया।

मैंने कहा 'नही यह ठीक नही हागा। मुझे क्षमा कीजिए।

मिस्टर पुरी ने कहा—हमको देर ता नही हा रही है डियर ग्राई एम ग्रफ्रेड।'[९]

प्रस्तुत उद्धरण म एक प्रेयसी की प्रेयस के प्रति ग्रधिकार भावना स्पष्ट रूप म लक्षित हाती है। यह ग्रधिकार ग्रपहरण की सीमा तक बढ़ गया है ग्रौर ग्रनिता जयन्त का विना उसकी मर्जी क दफ्तर स निकाल ल जाती है। उसे ग्रपने पति मिस्टर पुरी का भी काई सकोच नही है। ग्रनिता ग्राधुनिका जो ठहरी।

इसके भिन्न व सम्वाद हैं जिनम कि प्रेयस प्रेयसी की ग्रन्तव्यथा छलकी पड़ती है तुमने, जयन्त ब्याह क्या किया ग्रव किया है ता !

—गलती नही सुधर सकती ?

—चाहो तभी सुधर सकती है। चाहते हो ?

—ग्रनीता !

—ग्रपन का जलाए वठे हा दूसरा को जलान क्या वठ गए जयन्त ?

—मैं जानता नही था।

—क्या नही जानत थे।

—कि मैं बफ था।

—बफ पानी होना है जयन्त। तुम पानी होना नहीं चाहत नही चाहत तो मरा पर दूसरे को मारते क्यो हो ?

—ग्रनिता। — मैं पास सरक ग्राया हाथ वढाकर उसक बाला म ग्रगुलिया फेरन लगा। उसने वजन नही किया। वह हिली भी नही कुछ वेभाव-सी ज्या-की-त्या ग्रधलेटी सी बठी रहा।[१०]

प्रस्तुत उद्धरण म प्रेयस प्रेयसी की ग्रन्तरग वार्ता है। इस प्रकार के सवाद म कहीं-कहा तीखी चाट भी रहती है। जलान वाला प्रसग भी इसी प्रकार का है। चन्द्री को लकर जयन्त के मन म वक्काकीएा स्थिति है। उस ग्रस्वीकारन म व्यथा होनी है। किन्तु ग्रनिता को भी स्वीकारा नहीं जाता। दो नारियों के ऊहापोह मे कवि जयन्त का व्यक्तित्व विभाजित हो जाता है, ग्रौर वह सामान्य व्यक्ति जसा ग्राचरण नहीं कर पाता। एक गहरी व्यथा ग्रादि से ग्रत तक इन दोनों के सबधों मे पाव पसारे बठी रहती है। प्रएाय

---

९ व्यनात पृ० १५ १६।

१० व्यनीत पृ० १२१ २२।

प्रसगों मे इस प्रकार के चित्रण और इस प्रकार की मन-स्थिति जनेन्द्र के उपन्यासों मे प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

सवादों की इन शलियों में प्रयुक्त भाषा शलियों का विवरण और उनकी प्रेरक मनोभूमिया

जनेन्द्र के पात्र जनेन्द्र की ही शब्दावली म बात करते हैं। इनकी शब्दावली बातचीत के दौरान एक प्रवाहशील रूप धारण कर लती है। कही व्यग्य विनाद, तो कही कटूक्तिया के भी दशन हाते हैं। एक बात यहाँ द्रष्टव्य है कि जसी स्वाभाविक ऊर्जा जनेन्द्र के प्रारम्भिक उपन्यासों में मिलती है, वह उत्तरोत्तर क्षीण होती गई है। उनके परवर्ती उपन्यासों में उनके सवाद जीवन से सप्लावित प्रतीत नहीं होते। एक दार्शनिक की जडता उनसे आती जा रही है और उनका जीवन रस सूखता जा रहा है कि यह जीवन रस अभी पूरा सूखा नही है। उनके सवादा मे बातचीत की सहज भगिमा रहती है और स्थान-स्थान पर मुहावरा क प्रयोग से एक तीखापन भी आ जाता है। मनो विज्ञान की शब्दावली म पगे हुए उनके सवाद हिन्दी कथा-साहित्य की विरल उपलब्धि कहे जा सकते हैं। स्वाभाविकता के नाम पर वे उर्दू अग्रेजी या सस्कृत शब्दो से कोई परहज नही करते। अनन्तर मे उनका अग्रेजी प्रेम बहुत अधिक घनीभूत हो गया है। या उनके सवादा म दिल्ली की ठेठ बोली का पुट सदा रहता है। उनके सवादों में एक प्रकार की 'स्कीमिंग' की प्रवृत्ति भी है, जिससे सवाद पारदर्शी से प्रतीत होने लगते हैं। मन के अतल-गहन गह्वरा की प्रवृत्ति को उनकी शब्दावली मूत करने में सक्षम है और यही हिन्दी कथा साहित्य को उनकी सबसे बडी देन है।

सम्भाषणों के भग

सम्भाषणा के वर्गीय आधार भी लगभग वही हैं, जिन्ह हम सवादा के सदभ मे उल्लिखित कर चुके हैं। सवप्रथम हम गार्हस्थ्य जीवन स सम्बन्धित सभापणा को लेंगे। इस प्रकार क सभापणा मे कोई-न-कोई गृहस्थ-जीवन की समस्या अपने मूलभूत रूप म प्रकट होती है। ऐसी ही एक समस्या विवाह को लकर सुनीता और हरिप्रसन्न के बीच प्रकट हुई है जिसका विवरण इस प्रकार है

हरिप्रसन्न ने भाभी पर एक दम छा गई हुई कुठा का अनुभव किया। पाया कि नारी का प्रागल्भ बढ रहा है। उसके भीतर का पुरुष प्रोज्ज्वल हुआ। उसन कहा 'भाभी भल न होगा। विवाह की बातें विवाहित के लिय तमाशा हो मर लिय नहा है। भाभी जब तुम्हारे सामन हूँ तब और भी नही है। तुम

जानती हो कि तुमने क्या पूछा है ? — वह पूछा है जिसका जवाब इस सृष्टि में पाकर कोई नहीं रह सका है कोई नहीं पा सका है। क्या मैं तुम्हें भी वह दूँ — चलो, इसे जाने दो। नहीं, नहीं वह सकता। नहीं इसलिए कह सकता कि मेरा कोई नहीं बना है। न कोई बनने आया है, न मैंने बनाया है। तुम और तुम्हीं। तुम पहली बार भाभी बनी हो और मैं नहीं जानता भाभी होना क्या है। मुझे कहने दो, मेरे लिए सब तुम हो। घबराओ नहीं, हाँ हाँ, सब तुम हो। मुझे कहने दो, यह सब मेरे लिए क्या है ?

सुनीता ने झटपट-सी सचाई कर और नहीं तो घड़ी की ओर देखकर कहा ओहो, दो बज गया। मुझे रानी चढ़ानी है।

रानी चढ़ाओगी, लेकिन अभी ठहरो। मैं बताऊँ वह सब मेरे लिए क्या है ? उस पत्नी में क्या होगा जो रानी पतिव्रता हो। मुझे चाहिए एक प्रतिमा भी जो पतिव्रता चाहे न भी हो, पर स्फूर्त हो जो विपत्तियों में उसे चमके, उसे पार घन में बिजली। मुझे माता भी चाहिए, मुझे दासी भी चाहिए। लेकिन सबसे अधिक वह जो स्फूर्ति की मन्त्र हो, जिसमें प्रेम इतना हो कि हिंसा न वह डर नहीं। जो लाल लहू बहता देख बहने दे। पर शान्ति का स्वप्न जिसका अखण्ड रहे। जो पताका उठाये और युवक जिसके पीछे लहू की नदियाँ पार करते चले जायें।

सुनीता ने कम्पित स्वर में कहा ओह—

ठहरो भाभी, मैं इसलिए विवाह नहीं करता कि मैं पत्नी नहीं चाहता। मैं सब कुछ चाहता हूँ, सब कुछ। मुझे चाहिए महालक्ष्मी जिसमें से प्रकाश की किरणें फूटें। महाप्राणता का आलोक जिसमें से विकीर्ण हो। — भाभी —

हरिप्रसन्न ने हाथ बढ़ाकर सुनीता का हाथ थाम लिया।

भाभी, मैं वह दृश्य देख रहा हूँ। मैं वह चाहता हूँ। युवक बढ़े चलें और जहाँ विजय है वहाँ पहुँचें। किसके झण्डे के नीचे ? किसके स्मित से उत्साहित होकर ? किसके भ्रू-निक्षेप पर मतवाले बन ?—किसके कटाक्ष पर मर-मिट कर ? उसके, जिसका मैं स्वप्न देखता हूँ।

सुनीता का हाथ हरिप्रसन्न के हाथों में थमा ही रहा। सुनीता ने उसे खींचा नहीं। हरिप्रसन्न बोला भाभी, मैं नहीं जानता, भाभी का क्या होना होता और क्या नहीं होना होता। सुनीता ने अब अपना हाथ खींचकर कहा ओह, तीन बज गये। देखिए, मुझे देर हो जायगी।

हरि ने कहा चली जाना। लेकिन मुझे अपनी बात अभी कहना है।[११]

---

११ सुनीता पृ० ११६-२०।

प्रस्तुत आत्मसभापरण मे हरि सब-कुछ कह देना चाहता है। भाभी का श्रोतापन केवल एक उपलक्ष मात्र है। हरि की मन स्थिति पर इससे पूर्ण प्रकाश पडता है क्योकि यह सभापण आत्मोद्‌घाटनकारी (रिवीलिंग) है। विवाह के सम्बन्ध म हरि की धारणा यहा व्यक्त की गई है। यह एक ऐसी समस्या है जिसे अब तक टालता आया था किन्तु आज उसे टाल न सकेगा। भाभी जो है, सुनने के लिए समाधान के लिये भी। भाभी म उसने 'सब कुछ' के दर्शन किए हैं। कसर केवल यही है कि उसने गीता के उस श्लोक को याद नही किया जिसम 'त्वमेव बन्धु त्वमेव माता' कहा गया है। सुनीता को खाना बनाने की जल्दी है किन्तु हरिप्रसन्न है कि वह उसे सब-कुछ सुनाना चाहता है। वह उसे बार-बार ठहरा लेता है और बताता है कि नारी के रूप म उसे क्रान्ति की प्रेरणादात्री प्रतिमा चाहिए—ऐसी प्रेरणा, जो हिंसा के रक्त प्रवाह से भी उत्तेजित न हो और शान्ति का स्वप्न आखो मे आजे हुए बढती चले। हरि ने गीता के श्लोक की ओर यह सकेत किया है 'मुझे माता भी चाहिये' 'मुझे दासी भी चाहिए'। इस ध्वजाधारिणी प्रेरणादात्री नारी के सम्मुख युवको की विराट शक्ति नतमस्तक है। उसके भ्रू निक्षेप पर, उसके कटाक्ष पर शत शत युवाशक्ति विचलित आन्दोलित हो जाती है। जब वह कहता है कि भाभी को क्या होना होता है और क्या नही होना होता' तो स्पष्ट ही वह भाभी की मर्यादा का उल्लघन कर रहा है। उसके मन मे भाभी को लेकर जो चोर बठा है, उसी की अभिव्यक्ति यहा है। उसके मन की घुडी, जसे सुनीता को लेकर खुलना चाहती है और वह सहज हो जाना चाहता है, अज्ञात रूप से, किसी अनागत शक्ति के वशीभूत होकर यह सभापण हरिप्रसन्न को समझने की दृष्टि स अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमे उसके अवचेतन मानस की अभिव्यक्ति है। स्पष्ट ही इसम सौन्दर्यमयी सुनीता का प्रभाव भी है, जिसने एक अनचीन्ही पीडा हरिप्रसन्न के मन मे जगा दी है। प्रस्तुत सभापण म सुनीता की अभिव्यक्तिया केवल साकेतिक है, जसे वह मूक जनता की प्रतिनिधि हो जो चहरे पर अपने मूक भावो को दर्शा देती हो। सुनीता की अस्फुट अभिव्यक्तिया ओह ओहो, ओ आदि इसी मूक जनता की भाव भगिमाओ को प्रकट करने वाले शब्द-सकेत हैं। यह सभापण जहा एक ओर गाहस्थ्य जीवन की मूल समस्या —नर-नारी सम्बन्धो पर प्रकाश डालता है वही इसम एक क्रान्तिकारी के भावोच्छवास भी हैं। इसी कारण यहा हम विक्षेप शली के दर्शन होते हैं जो कहीं-कहीं प्रलाप शैली के तटो का सस्पर्श करती है। इसम एक प्रकार की गद्य काव्यात्मकता भी है, जिसमे भावो का प्राजल प्रवाह द्रष्टव्य है। एक क्रान्तिकारी का अवचेतन जब खुलता है तो उसमे से इसी प्रकार की अभिव्यक्तिया फूटती हैं।

अवचेतन की अभिव्यक्तियाँ किसी के वास्तविक स्वरूप को समझने में बड़ी सहायक होती हैं।

गार्हस्थ्य जीवन से सम्बन्धित सभाषण के रूप में हम 'त्यागपत्र' से एक उदाहरण देना पसन्द करेंगे। "तुमको लाज आती है। लाज की बात ही है। लेकिन मैं जानती हूँ कि इस आदमी को मुझसे विरक्ति हो रही है और अपने परिवार की याद आ रही है। जब सबको छोड़कर मुझे साथ ले चलने को उतावला था, तब भी मैं जानती थी कि थोड़े दिनों बाद इसे लौटकर अपने परिवार के बीच आ जाना होगा। जानती थी कि इसी अवश अनुरक्ति में से एक दिन प्रबल विरक्ति का भाव फूटेगा। जानती थी इसीलिए मैं उसके साथ में आई। वह विरक्ति का भाव अब शुरू हो गया है। उसे अब चल ही जाना चाहिए। परिवार वहाँ अकेला है। वह मुझे नहीं भेज सकता। मेरी कोशिश है कि वह मुझसे उकता जाए। अपनी अवस्था मैं जानती हूँ। पेट में बालक है, लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना अब ठीक नहीं है। मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूँगी। अब समय आया है कि उसे इस बात की अक्ल आ जाए। अब उसका मोह टूट गया है। वह जान गया है कि मैं उसकी सर्वस्व नहीं हूँ, मैं बस एक कुजात व्यभिचारिणी स्त्री हूँ।"[१२]

उपर्युक्त उद्धरण में एक पीड़िता नारी का यथार्थ कथन है। वह गृहस्थी में रहकर उसने जो नई गृहस्थी बसाई है उसकी अंतिम परिणति के प्रति भी मृणाल जागरूक है। इस प्रकार के सम्बन्धों में आसक्ति एक सीमा के बाद विरक्ति का रूप ले लेती है। विरक्ति के अंकुर कोयले वाले के मन में फूटने लगे हैं इसलिए वह किसी भी दिन मृणाल को अकेला छोड़कर पुनः अपनी पूर्व स्थिति में पहुँच सकता है। अपने संकल्प को मृणाल ने इन शब्दों में प्रकट किया है "प्रमोद, इसी से कहती हूँ कि जब तक पास है तब तक वह पुरुष अन्य नहीं है। मेरा सब कुछ उसका है। उसकी सेवा में मैं त्रुटि नहीं कर सकती। पतिव्रत धर्म यही तो कहता है।"[१३]

मृणाल का समर्पण भाव उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उसने अपने नए दायित्व को भी पतिव्रत धर्म की संज्ञा दी है।

मृणाल के उद्गारों में उसकी प्रबल आस्था की झलक हम पाते हैं। इस प्रकार के स्थलों पर लेखक व्यास शैली से काम लेता है और उसके वैचारिक तट मृणाल के जीवन के ओर छोर को छू लेते हैं। ये सम्भाषण कुछ-कुछ आत्म

---

१२ त्यागपत्र पृ० ७१-७२।

१३ वही पृ० ७२-७३।

कथात्मक-से भी प्रतीत होते हैं।

राजनीतिक जीवन से सम्बंधित सभापरणो के उदाहरण जयवधन मुक्तिबोध एव अन तर म प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अपने कथन की पुष्टि मे हम जयवधन उपन्यास से आचाय का एक कथन देना चाहेग 'ध्यान से वक्तव्य को दखागे तो व्याख्या की जरूरत न होगी। मैं खुद उस वक्तव्य का वकील हो सकता हू। एक पार्टी मेरी रिहाई का शोर मचाती है। वह पार्टी वध है और खुलकर काम करती है। जतलाना यह चाहती है कि मैं उनका हूँ। वह विरोधी पार्टी है। विरोधी पार्टी के पास लोकतन्त्र मे काफी वैधानिक हक होता है। जय इस चाल म न आना चाहे तो उसका क्या दोष ? पार्टी मेरे नाम पर अपनी ताकत बढाती है यह सच है कि मैं पार्टी का नही हूँ न साथ हूँ न उस रूप मे उससे सहानुभूति रखता हूँ। पार्टी वाले यह जानते हैं। पर मेरा जेल म होना प्रचार के निमित्त उन्हे अनुकूल पडता है। मेरी रिहाई की माग उन्ह बल-सग्रह और लोक सग्रह के लिए एक मुद्दा देती है। जय मेरे प्रश्न को इस प्रपच स अलग रखता है यह ठीक ही करता है। उसका कहना है कि यदि व्यक्ति वधानिक माग का अवलवन नही करता फिर भी निरतर राजद्रोप की बात कहता है तो वह राजनीतिक कम नही रहता प्रकट राजद्रोह हो जाता है। रचनात्मकता उसम नही सहयोग की सभावना उसम नहा, इसलिए राज्य के पास उसम और उसके विचारा से लाभ उठान का कोई उपाय नही रह जाता, फिर भी होन वाले अलाभ की सभावना कम करने का कतव्य राज्य के लिए अवश्य है इसीलिए जेल ही उसके लिए जगह है।"[14]

प्रस्तुत प्रसग म राजनीति की चर्चा अत्यन्त सुखद है। किस प्रकार विरोधी दल वाले किसी घटना विशेष को अपना अमोघास्त्र बनाते हैं इसका आचाय ने स्पष्ट सकेत दिया है।

आचाय, जय का भली प्रकार समझते हैं इसीलिए उनके चेहरे पर असहानुभूति की कोई शिकन नही। आचाय का तत्व दशन अत्यन्त पारदर्शी है। उसके माध्यम से उन्ह राजनीति की समस्याग्रो का मूल पकडने म कोई कठिनाई नही होती। राज्य व्यवस्था मे जेल का जो औचित्य है, उसका भी सकेत उद्धरण के अतिम अश मे है। इस प्रकार के राजनीतिक सभापणो म एक ओर तत्व को पकडने की चेष्टा रहती है तो दूसरी ओर समस्या के समाधान म भी कुछ उठा नहीं रखा जाता। तक और विवक की पुट से इस प्रकार के सभापरण अच्छे खास राजनीतिक निबध का रूप ले लेते हैं।

---

१४ जयवधन पृ० ५२।

समसामयिक सन्दर्भों की दृष्टि से हम अनन्तर के निम्न संभाषण को प्रस्तुत करना चाहेंगे। आज के उद्योगपति के मन में जो प्रवृत्तियाँ अपना सिर उठाती हैं उनका मार्मिक अंकन प्रसाद और वनानि की बातचीत में हमें मिलता है— हु—तो होगी कहीं—क्या आदित्य को वेग में सुध नहीं है। यह आर्थिक स्पर्द्धा और जीत मन पर तरह-तरह के तनाव ले आती है इसमें ही किसी में अगर कभी भली लहर उठ आए तो उसे प्रतिरोध नहीं मिलना चाहिए। मैं आदित्य को जानता हूँ। उपकार उसके वश का नहीं है। जो करता है लहर में करता है उपकार होता तो मैं ही कहता कि न लो पैसा देखा नहीं था कि कितनी आसानी से वह तुम्हें साफ मना कर गया था। तुमने तब हृदयहीन माना होगा वही सहृदय हो पड़ता है। बिजनिस में बेचारे को अपनी सहृदयता के लिए मौका नहीं मिलता हम सबको इतज्ञ होना चाहिए कि अपरा ने उसके हृदय के उस तल को छुआ है और—वनानि इसको तुम गलत न समझोगी।[१५]

प्रस्तुत पंक्तियों में एक उद्योगपति की मानसिक रेखाओं को सतह पर लाने की चेष्टा है। उसके मन की प्रवृत्ति को शब्द में बाँधने की चेष्टा की गई है। इसे हम उद्योगपति का मानसिक विश्लेषण भी कह सकते हैं। जो व्यक्ति एक समय हृदयहीन प्रतीत होता है वही सन्दर्भ के परिवर्तित हो जाने पर सहृदय प्रतीत होने लगता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कोई बात उसके हृदय को छू जाए, फिर तो वह सम्पत्ति को दोनों हाथों से उलीचने लगेगा। प्रसाद ने आदित्य के संबंध में जो कुछ वनानि से कहा है उसमें हम पूँजीपति जीवन के समसामयिक सत्य को पाते हैं।

इसी प्रकार प्रकाश के प्रसंग के माध्यम से वर्तमान युवक-युवतियों की प्रवृत्तियों को आलेखित किया गया है। इस संबंध में जो उदाहरण संवादों के सिलसिले में दिया गया है वह ही सम्भाषण का भी उपयुक्त उदाहरण बन सकता है।

वैयक्तिक जीवन के प्रसंगों में सम्भाषण का यह रूप आत्मकथात्मक संस्मरण का रूप ले लेता है। इसका एक विशुद्ध उदाहरण कल्याणी से लिया जा रहा है—'शायद नहीं मालूम। मुझे शायद इस वक्त नशा है पर नशा मैंने किया है और क्या करूँ? एक वह हैं जो बड़ी हिम्मत दिखा कर मुझे छोड़कर चले गए हैं। एक ये हैं जिन्हें मैं पक्का जानती हूँ कि इन्होंने स्त्री की हत्या की है। एक आप हैं—जो किसी को कुछ सहारा नहीं देंगे। फिर मैं क्या करूँ? नशा करती हूँ तो कौन कहने वाला है कि क्या करती हूँ? धर्म भी किया है

---

१५ अनन्तर पृ० १५८ १५६।

पर करके देख लिया है। उससे क्या हुआ ? तबियत होती है कि सब फाड दू सब फेक दू, मैंने ईश्वर म विश्वास किया। मैं उसकी राह चली, इस घडी तक चली। चलते चलते मेरे सामने पडते हैं यह देवलालीकर। बकबर मैं कहा जाऊ ? उनके सामने, पर और राह मुझे बद है। ईश्वर की राह पर अनीश्वरता मिलती है तब मैं क्या करू ? इससे अब मैं कहती हूँ कि अच्छा, यही हो। मैं भी अब और कुछ नही चाहती। मैं निगली नहा हूँ। मेरा मन जानता है मैं लाचार हू। तो नशा ही करूगी। मैं सब कुछ भूल जाना चाहती हू। मैं नफरत करना चाहती हू—अपन स, सबमे। ईश्वर प्रेम है और प्रेम प्रवचना है। इससे ईश्वर प्रवचना है।"[१६]

कल्याणी के वैयक्तिक जीवन की यह अंतिम परिणति कितनी करुण है ! इस प्रकार क उद्धरणा मे विक्षेप शली या प्रलाप शली के स्पष्ट दशन होते है। यह एक ऐसा सभापण है, जिसमे कल्याणी के मन की आडी तिरछी रेखाए स्पष्ट ही उसके मन की मत प्रवत्तियो को रेखाकित करती हैं। जब कोई नारी अपने जीवन के मिशन मे विफल हो जाती है, तो उसके तक और आस्था की यही करुण परिणति होती है। अन्तिम पक्ति का तक और उसका निष्कप तकशास्त्र के विचार विधेयका का स्मरण कराता है।

सभापणा के वग के अन्त मे हम प्रेयसी प्रेयस के सवाद की भी झलक देना चाहेंगे। मुक्तिबोध म नीलिमा और सहाम के बीच बातचीत कुछ सुन लें ता हज न होगा नीला ने हसकर कहा—'हराम है क्यो यही ना ' पर हराम से डर नहा है कि आराम से डरू। तुम नाहक डर रहे हो आराम से और सिफ इसलिए कि किसी न उसके तुक मे पास लाकर हराम शब्द रख दिया है।

यहा नीला खिलखिला पडी और आखा म चितवन डालकर बोली—'मुझे देखो। मैंने सब नादो को छोड दिया है, इसलिए कि जिदगी को अपना सकू। फूल क मानिंद तुम मुझे बताते थे, और मालूम है तुम इस वक्त किसके मानिंद दीख रहे हो ? वह सकते हो कि मैं—तुम्हारे लिए बेकार हू ? नही हू बेकार, तो इसलिए नही हूँ ? इसीलिए कि पैसे की कमी नहीं है चुनाचे छोटी मोटी फिक्र, मुझस दूर रह जाती हैं और मेरी तदरुस्ती को जरा भी कुतर नही पाती और मैं खयाल की ऊचाइयो पर पहुच सकती और ठहर सकती हू जो तुम्हे पसन्द है।"[१७]

प्रस्तुत वार्ता म नीलिमा के मुक्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हैं। वह अपने

१६ कल्याणी, पृ० १०६।
१७ मुक्तिबोध, पृ० १२१।

रोमांटिक दर्शन को पूरे सन्दर्भों में प्रकट करती है और अपने उन्नत स्वास्थ्य के रहस्य पर भी प्रकाश डालती है। आधुनिका नारी का जीवन-दर्शन उसके उद्गारों में छनकर पड़ता है। आराम हराम है।—यह नारा युग-पुरुष नेहरू ने दिया था, किन्तु नीलिमा को इस नारे में सिवाय तुक के और कुछ औचित्य प्रतीत नहीं होता। वह समझती है कि यदि हम स्वस्थ रहना है और जीवन का उपभोग करना है तो हमारे लिए आराम भी एक अनिवार्यता हो जाता है। नीलिमा का 'आंखों में चितवन डालकर बोलना' उसके सौन्दर्य की गरिमा को और साथ ही चंचलता को प्रकट करता है। यह सच है कि जिन्दगी सिद्धान्त के सहारे नहीं चलती उसका तो मुक्त प्रवाह है मुक्त प्रवाह में ही उसके अन्तरंग सिद्धांत अन्तर्निहित हैं। कभी सहाय ने नीलिमा को फूल के मानिंद बतलाया था अर्थात् उसकी ताजगी, महक और कोमलता प्रेरणाकारी हैं। अपने को फूल के मानिंद बताकर नीलिमा ने प्रश्न पूछा है कि सहाय किसके मानिन्द दीख रहे हैं—इस प्रश्न में व्यंग्य की मूक प्रतिध्वनि है और एक हल्का-सा आमंत्रण भी है। नीलिमा ने छोटी मोटी चिन्ता को चूहों के समान बताया है जो कि तन्दुरुस्ती को अन्दर ही अन्दर कुतरती रहती हैं। चूहों की बात कुतरने के अर्थ से ही स्पष्ट की गई है चूहा का कहीं नाम नहीं आया है। चूंकि चूहे तन्दुरुस्ती को कुतर नहीं पाये इसलिए नीलिमा ख्यालों की ऊंचाई पर पहुंच पाई पहुंची ही नहीं वहां टिकी हुई भी है। सहाय को उसके विचारों की यह ऊंचाइयां रुचिकर प्रतीत होती हैं और वे उनसे ताजगी प्राप्त करते हैं। इस विवरण में एक सूक्ष्म चित्र भी विद्यमान है, कि तन्दुरुस्ती का एक ऊंचा पहाड़ है, चूहे उस पहाड़ को जड़ से मुंह मार कर अपने दांत ही तोड़ सकते हैं, उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। पहाड़ अपनी ऊंचाई में मौन खड़ा हुआ है और उसके ऊपर का वातावरण अत्यन्त ही जीवनमय, स्वच्छ एवं ताजगी प्रदान करने वाला है। इस प्रकार की अभिव्यक्तियों को गद्य में रूपक का उदाहरण कहा जा सकता है। इसी प्रकार फूल के मानिन्द में उपमा की सहज झलक देखी जा सकती है।

जैनेन्द्र के सम्भाषणों में—उनकी दार्शनिक मनःस्थिति का बड़ी स्पष्टता से उद्घाटन होता है। कोई भी पात्र जीवन के किसी प्रसंग को लेकर जैसे उसे अपने विचारों की चिमटी में पकड़ लेता है और उसका अपनी अन्तर्दृष्टि से ऐसा स्कैनिंग प्रस्तुत करता है कि चित्र का अन्तरंग एवं बहिरंग दोनों ही वाक्यों की सीमा में आबद्ध हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ऐसे जीवन प्रसंगों की ताक में रहता है। उसे जहां भी इसका अवसर मिलता है वह उसका पूरा उपयोग करता है। कभी-कभी इस प्रकार के सम्भाषण पत्रों में भी प्रकट होते हैं कभी-कभी वे गद्य-काव्य का रूप भी लिये रहते हैं। अनन्तर में अपरा

ने चारू को जो चिट्ठी लिखी है वह इस दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण है। इसकी कुछ बानगी लीजिये—'चारू, हम स्त्रियो के शरीर के प्रति पुरुष म बडा लालच होता है। वह हममे अपने को खोने को आतुर रहता है लेकिन उससे पहले चाहता है कि स्त्री भी अपने को लेकर उसम हो आये पुरुष की यह लालसा स्त्री की शक्ति बन सकती है चारू बशर्ते कि ऊपर से चाहे जो दीखे भीतर से ठडी बनी रहे मुझे ठडी होने की जरूरत नही होती। विलायत म इतना कुछ देखा भोगा है कि अब चाह उपजती ही नही—और चारु इस सब और हम सब के पार ईश्वर है। असल म वही है उसम ही सब जीते मरते हैं। जब सोचती हू कि तुम्हारी अपराधिनी हू तो जी होता है कि तुम्हारे आगे खुली-नगी हो जाऊ। जो जितना कपडा म है उतना दुखी है। जितना निरावरण है उतना सुखी है। तुम्हारे आदित्य को मैं प्यार करती हू। जिसे इतना कष्ट दिया है, तुम्ही सोचो उसे प्यार करने स कसे बच सकती हू। उस कष्ट म मुझे व पीट सके, मार डालन तक के किनारे आ गये तो उसके लिये क्या उनकी कृतज्ञ होने से बच सकती हू। पर उनकी चाह मेरी निपट ठडी कृतज्ञता से लौटकर पहल चाहे उनको घायल कर पीछे भरपूर और सम्पन्न बनायेगी इसका मुझे विश्वास है। तब तुम देखोगी कि तुम्हारा पति तुम्हे इतना मिला है कि अब तक नही मिला होगा।'[१८]

प्रस्तुत पत्र मे नर-नारी सम्बन्धो का विशद वर्णन है और एक प्रकार से अपनी सफाई भी है। यह पत्र इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि चारू के मन का सब मल धुल गया और वह अपरा के प्रति शकालु के स्थान पर स्नेहालु हो उठा। यह पत्र ही अनन्तर की सबसे बडी उपलब्धि है क्योकि इसी म लेखक के उपन्यास लेखन का उद्देश्य अन्तर्निहित है। पश्चिम मे भोग की अतिशयता के उपरान्त अब अपरा स्वदेश मे आकर विशुद्ध प्रेम के महत्व को समझने लगी है—ऐसा प्रेम जिसमे इन्द्रियो का कोई लगाव न हो और जो केवल मानसिक भावना के रूप मे प्रस्फुटित हो। सम्पूर्ण जीवन चक्र को पार कर वह ईश्वर तक पहुच सकी है। यही उसके जीवन का पूर्णत्व (फुलफिलमट) है। इसी पूर्णता स उसने चारु के अधूरेपन को पूरा किया है।

सुनीता म 'ओ तू' के सन्दर्भ म हरि के चित्र को लेकर जो गद्य-काव्य लिखा गया है, वह भी इसी प्रकार नेत्रोन्मीलनकारी है। उस चित्र म जसे हरिप्रसन्न के मन की घुण्डी खुल गई है और वह अपने आप को न केवल स्वय ही देख पाया है, बल्कि दूसरा को भी दिखा पाया है। जिस कलाकृति के साथ हरिप्रसन्न

---

१८ अनन्तर पृ० १४४ ४५।

न्नि रात लगा रहा उमी म उसकी जीवनाभिव्यक्ति है। यह चित्र श्रीकान्त की दृष्टि म जा इतना महत्वपूर्ण साबित हुआ है वह अकारण नहीं है।

इस प्रकार हम देखत हैं कि य पत्र, ये गद्यकाव्य और यह सम्भाषण लेखक क महत् उद्देश्य और उसक जीवन दर्शन को प्रकट करन म एक उल्लेखनीय भूमिका प्रस्तुत करत हैं। साधारण बातचीत म जा बात प्रकट नहा हा पाती वह इस प्रकार क सम्भाषणा म बड़ सटीक रूप म न केवल प्रकट हा हाती है बल्कि प्रबुद्ध पाठक को अपनी गरिमा स अभिभूत भी कर लता है।

परिच्छेद—५

शैली के मनोवेगात्मक रूप तथा स्थिति

मूल विषय पर आने से पूर्व यह उचित होगा कि हम शैली और मनोवेग को परिभाषित करें और इनके परस्पर संबंध का निर्धारण करें इसके उपरान्त ही जैनेन्द्र के उपन्यासों में विभिन्न मनोवेगों का जो रूप मिलता है उसका विश्लेषण एवं वर्गीकरण सम्भव हो सकेगा। शैली के संबंध में भारतीय साहित्य शास्त्र में अधिक विवेचन नहीं मिलता बल्कि 'शैली शब्द' का प्रयोग भी वहां नहीं है आरम्भ में रीति के अन्तर्गत शैली का विवेचन मिलता है। काफी बाद में शैली को लिखने के ढंग के रूप में परिकल्पित किया गया है और उसके तीन भेद बतलाए गए

(१) व्यास शैली
(२) समास शैली
(३) प्रलाप या विक्षेप शैली

व्यास शैली में वेदव्यास के महाभारत की तरह विषय को विस्तार प्रदान किया जाता है समास शैली में सामासिकता की प्रधानता है अर्थात् बात का संक्षिप्तता के साथ प्रस्तुत किया जाए। इसमें गागर में सागर भरने का प्रयास रहता है विक्षेप शैली में भावावेग की प्रधानता रहती है इसे प्रलाप शैली भी कहा गया है अर्थात् लेखक किसी भाव विशेष से परिचालित होकर उसके संबंध में जो भी उसके मन में आए उन्मुक्तता से कहे शैली का यह विवेचन विशेष रूप से निबंध-साहित्य के संदर्भ में किया गया है और उसी सिलसिले में उसके तीन गुणों की भी परिकल्पना की गई है

(१) ओज
(२) माधुर्य एवं
(३) प्रसाद

गुणों की बात कविता के संदर्भ में अधिक समीचीन प्रतीत होती है। ओज गुण के अन्तर्गत वीरोल्लास की अभिव्यक्ति होती है और पाठ के उत्साह की अभिव्यंजना रहती है। माधुर्य के अन्तर्गत कोमल एवं सौम्य भावों को विशेषता प्रदान की गई है और इसमें यौवन और सौन्दर्य का विशेष रूप से प्रतिपादन होता है। प्रसाद गुण में देवी के प्रसाद की तरह एक प्रकार की सगमता और सबकी प्राप्ति का भाव अन्तर्निहित है। जो बात जिस रूप में कही जाए उसे पाठक भी निर्भ्रान्त होकर उसी रूप में ग्रहण करे यह प्रसाद गुण का प्रतरंग लक्षण है स्वाभाविक ही है कि इसमें सरलता एवं सहजता का अधिक महत्व दिया जायगा।*

पाश्चात्य साहित्य में शैली के संबंध में दो मत विशेष रूप से प्रचलित हैं एक तो बफन का मत है कि शैली ही व्यक्तित्व है और दूसरा चेस्टर फील्ड का कथन है कि शैली विचारों का परिधान है। पहले मत को अधिक महत्व प्राप्त है। इसके अतिरिक्त अन्य परिभाषाएं इस प्रकार हैं

(क) जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है। (प्लेटो हिन्दी साहित्य-कोश —डा० धीरेन्द्र वर्मा)।

(ख) शैली से वाणी में वैशिष्ट्य का समावेश होता है। अरस्तू (अरस्तू का काव्य शास्त्र डा० नगेन्द्र)।

(ग) किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है। (गेटे न्यू डिक्शनरी आफ थाट टी एडवर्ड्स)

(घ) शैली आत्मा की मुखाकृतिशास्त्र है। (शापनहावर एनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका खण्ड २१ पृ० ४२८)।

(ङ) इस अर्थ में शैली कलात्मक विशेषता (या गुण) या अभिव्यंजना शक्ति की पर्यायवाची है। (ग्रीनी आर्ट्स एण्ड आर्ट क्रिटिसिज्म)।

---

* (क) ओजः समास भूयस्त्वम् (समासों की अतिशयता को ओज कहा गया है।) —भोजराज।

(ख) चित्तद्रवी भावमय आह्लाद माधुर्यमुच्यते (भावमय और रसगर्भित शैली में माधुर्यगुण की अवस्थिति है।) —विश्वनाथ।

(ग) प्रसिद्धार्थ पदत्व यत् स प्रसादो निगद्यते। जहां प्रसिद्ध अर्थों की अभिव्यक्ति प्राप्य है वहां प्रसाद गुण माना गया है।—भोजराज।

(च) शैली भाषा की वह विशेषता है जो लेखक के विशिष्ट भाव या चिंतन को ठीक ठीक रूप में प्रपित करती है। (मिडिलटन मरी द प्राब्लम आफ स्टाइल पृ० ७१)।

(छ) शैली वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य दूसरों से सम्पर्क स्थापित करता है साहित्यिक शैली वह साधन है जिससे एक व्यक्ति दूसरे को उद्दीप्त करता है। (एफ० एल० लूकस स्टाइल पृ० ४६)।

इन सभी परिभाषाओं का विश्लेषण एवं संश्लेषण करते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने एक सर्वसम्मत परिभाषा देने का प्रयत्न इस प्रकार किया है 'व्यक्ति विषय भाषा एवं प्रयोजन के वैशिष्ट्य के अनुसार अभिव्यंजना-पद्धति में जो वैशिष्ट्य आ जाता है वही शैली है। (साहित्य विज्ञान पृ० २१६)

इस प्रकार यह परिभाषा वामन की उस परिभाषा के काफी निकट आ जाती है जिसमें उन्होंने कहा है कि साधारण अभिव्यंजना से हटकर जो भी भिन्न या पृथक् अभिव्यंजना होती है वह रीति (शैली) है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'शैली' के निकटवर्ती पर्याय के रूप में वृत्ति प्रवृत्ति और रीति है। वृत्ति से तात्पर्य है मानसिक तत्त्व उसका व्यक्त रूप प्रवृत्ति है प्रवृत्तियों का समूह शैली है और शैलियों का सामान्यीकृत रूप रीति है।

यह बात उल्लेखनीय है कि ये सारी बातें निबंध-साहित्य को ही दृष्टि में रखकर कही गई हैं। जब इसी बात को हम उपन्यास साहित्य पर लागू करना चाहेंगे तो हम समायोजन की कुछ कठिनाई भी हो सकती है। उपन्यास की शैली के अन्तर्गत उसका शब्द-चयन वाक्य विधान, अनुच्छेद रचना मुहावरा एवं लोकोक्तियों का प्रयोग अध्यायों का वर्गीकरण आदि आदि अनेक बातें आती हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखे जाते हैं, डायरी शैली में लिखे जाते हैं वर्णनात्मक शैली में लिखे जाते हैं, भावभिव्यंजक शैली में लिखे जाते हैं और तर्क एवं तथ्यपूर्ण रूक्ष शैली में वैज्ञानिक उपन्यास लिखे जाते हैं या, उपन्यास का शिल्प विधान या उसकी टेक्नीक भी शैली के ही अन्तर्गत आ जाती है।

मनोवेग मन के वे वेग हैं जो किसी परिस्थिति विशेष में कारण विशेष से समुत्पन्न होते हैं। इन मनोवेगों का हमारे जीवन में बड़ा महत्व है। ये ही कार्य शक्ति के मूल प्रेरक हैं और इन्हीं के ताने-बाने से किसी भी उपन्यास का कथा का पट बुना जाता है। प्रेम, ईर्ष्या, क्रोध भय करुणा आदि इनके अनेक रूप हैं। क्योंकि उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है इसलिए उपन्यास में भी मनोवेगों का वही महत्व है जो कि साक्षात् जीवन में। प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने मनोवेगों को राग विराग के अन्तर्गत लिया है वस्तुत मनोवेगों के

रेखांकित करता है वही उसकी सामारी भी तरलता के सानिध्य में प्रकट हो जाती है। तरलता श्रीकान्त के पौरुष की प्रतीक है।

त्यागपत्र से हम एक ऐसा उदाहरण देंगे जिसमें लेखक की दार्शनिकता जीवन के मौलिक तत्वों का उद्घाटन करती है। इस प्रकार के रूपक योजन में उपन्यासकार की विशेष अभिरुचि है समुन्दर है। अपनी नन्ही कागज की डोंगी लिए हम भी उसके किनारे किनारे मन के लिए आ उतरे हैं। पर किनारे ही तूफान है आग पानी नहीं है। हिम्मत वाले आगे भी बढ़ते हैं। बहुत डूबते हैं कुछ तैरते भी दीखते हैं। पर अधिकतर तो किनारे पर पास तन भर जगह के लिए छीन झपट और हाय-हाय मचाने में लगे हैं। नहीं तो वे और करें भी क्या? लहरें भगवान अपने द्वार से वृत्त की परिधि में घूम लेते हैं और इस भांति जी लेते हैं। सागर तीनों ओर बस उन्माद से लहरा रहा है! पर वह लहराता रहे—हम अपने पथ हैं उधर करने का हमारी आस खाली नहीं है।

और मन करे उधर आगे उस सागर की लहरों का अन्त कहाँ है? कूल कहाँ है? पार कहाँ है? कहीं पार नहीं है कहीं किनारा नहीं है। आशा को ठहराने के लिए कोई सहारा नहीं है। क्षितिज का छोर है जहाँ आसमान समुन्दर से आ मिला है। वहाँ नीला अंधियारा दीखता है। पर छोर वहाँ भी नहीं है। वहाँ छोर तो हमारी अपनी ही दृष्टि का है अन्यथा वहाँ भी वैसी ही अकूल विस्तीर्णता है।

आह! उधर हम न बढ़ें। थाह नहीं है। जल अगम है। सुनने-बोलने का वहाँ कौन है? जो हैं अपने पराये सब आसपास तक हैं। वहाँ तो सन्नाटा ही सनसनाता है। न उधर न बढ़ेंगे।

किनारे पर ही रहें जहाँ पर धरती से छू जाते हैं। वहीं तक रहें जहाँ हमारा लंगर धरती को पकड़े न और हम ठहर सकें। बस उसके आगे जब तब समुन्दर के अगाध फैलाव की ओर हम देख लिया करें यही क्या कम है। इतना भी बहुत है बहुत है। इससे भी भीतर कंप भर आता है। चित्त सहमा रहता है। सिर चकरा आता है। झेला नहीं जाता। जितनी झेल सकें उतनी ही विराट की झाँकी ले लें और अपनी धरती के पास-पास किनारे किनारे सबसे उलझन-सुलझते जिये चलें। यही उपाय है। यही उपाय है। यही मानव जीवन है।'[१]

समुन्दर के रूपक से जीवन की विराटता का बोध होता है। नन्ही कागज की डोंगियों से एक ओर बचपन की चंचलता का बोध होता है। तो दूसरी ओर

---

१ त्यागपत्र पृ० ९२-९३ पाकेट बुक संस्करण।

मानव जीवन की क्षुद्रता का। इसके पश्चात मानव-जीवन की विभिन्न श्रेणियां की परिगणना की गई है। जीवन के इस लहराते हुए रूपक से सामान्य मानव को कोई सरोकार नहीं। वह इससे असपक्त अप्रभावित है। क्षितिज म आसमान और समुन्दर म मेल से जीवन के मिलन भाव की व्यजना की गई है। जल की अगमता एव अथाह स्थिति स जीवन को लेकर भय की कल्पना की गई है। इस ससार के नाम रिश्ते कितने सीमित हैं इसका सकेत है। समुद्र के अगाध फैलाव की ओर देखने से जीवन के विस्तार का सकेत है। इसी के माध्यम से विराट की भाकी ली गई है। इस प्रकार यह समुद्र का रूपक जीवन की विविधता एव विशालता का परिचायक है और इसके माध्यम स लेखक अपने दार्शनिक ऊहापोह का परिचय देता है। इसी समुद्र म बुआ के डूबन-उतरान मे और प्रमोद के द्वारा बुआ को बचाने से दोनो प्राणियो के पारस्परिक सबधो की स्थापना हो सकी है। अतत इस बात के सकेत भी मिलते हैं कि बूद का अतिम आश्रय स्थल समुद्र है। इसे कुछ आलोचको ने गस्टाल्टवाद की व्यजना भी कहा है। उपन्यासकार की इस प्रकार के वर्णना म गहरी अभिरुचि है। यह इस बात का द्योतक है कि उपन्यासकार दशन के आर-छोर को छूता हुआ अपने जीवन दशन की भी अभिव्यक्ति करता है।

डा० श्यामसुन्दर दास ने साहित्यालोचन म भावो के तीन प्रकार बताये हैं। (१) इन्द्रियजनित भाव (२) प्रभात्मक भाव और (३) गुणात्मक भाव।[४] उपर्युक्त उद्धरण प्रभात्मक कोटि म आता है। इसम प्रश्नो के माध्यम से जीवन को समझने का प्रयास है। इस प्रकार के भाव हम जनेन्द्र के प्रत्येक उपन्यास म पर्याप्त मात्रा म पा सकते हैं कभी-कभी तो ऐसा होता है कि कथा का सूत्र गौण पड जाता है और यह विवेचन ही प्रधान हो जाता है कल्याणी से हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिसम व्यक्ति के आध्यामिक भाव की व्यजना है। कल्याणी म कथासूत्र के नायक की पत्नी कल्याणी के आध्यात्मिक भाव को इस रूप म प्रकट करती है उस वक्त तो मुझे कुछ गलत नहीं लग रहा था बल्कि मुझे ही उनकी श्रद्धा छूती थी। उन्हे अपन जगन्नाथजी की बडी लगन है। अपन मकान के कमरो के नाम भी सब उन्होंने उसी ढग से रख लिये हैं। बताया कि यह जगन्नाथजी का बठकखाना है वह अन्नपूर्णाजी का भण्डार है इत्यादि। मैंने उसस पूछा था कि फिर तुम्हारा क्या है सब कुछ तो जगन्नाथजी और अन्नपूर्णाजी का हो गया ? उस समय उन्होंने खूब गम्भीर होकर कूडाघर को दिखाते हुए कहा कि यह मेरी जगह है। जब मैं जगन्नाथजी को भूलू तो

---

४ साहित्यालोचन पृ० २५८ आठवी आवृत्ति, २००५।

बस यही पटखन लायक मुझे समझा जाये। मैं उस वक्त उनके मुँह से इस बात को सुन कर हँस बिलकुल नहीं सकी थी। कुछ ऐसी सौम्यता उनके चेहरे पर थी। इसी से कह रही हूँ कि लक्षण भले नहीं हैं।[5]

जगन्नाथजी के प्रति कल्याणी की यह अतिशय अनुरक्ति व्यक्तिगत जीवन की विफलता का ही रूपान्तर है। सारे जीवन को जो उसने जगन्नाथमय कर लिया है यह अपने ही दुखते हुए घावों पर मरहम लगाने के समान है। कल्याणी डॉक्टर का जब अपनी जगह बताती है तो उसमें यही व्यंजित होता है कि *उसका अपना जीवन बड़ा पातकी रूप अधम रहा है।* डॉक्टर से अधिक वह अपने व्यक्तिगत को कुछ नहीं समझती। यह इस बात का द्योतक है कि वह अपने जीवन की कमी को जगन्नाथजी से पूरा कर लेती है। कल्याणी का यह भक्ति भाव अनायास नहीं है, उसके पीछे उसके जीवन की खोखली पृष्ठभूमि है। उपर्युक्त मनोभाव गुणात्मक कोटि में आते हैं। कल्याणी का व्यक्तित्व प्राचीन रहस्यात्मकता एवं आध्यात्मिकता से आच्छन्न है। इस प्रकार वह भारत की औसत नारी का ही प्रतिनिधित्व करती है।

सुखदा से हम एक ऐसे मनोभाव को लेंगे जो इन्द्रियजनित भाव की कोटि में आता है। *इस उद्धरण में पुरुष की नारी को प्राप्त करने की विह्वलता द्रष्टव्य है*: ठोड़ी पकड़ कर उन्होंने मेरा मुँह ऊपर किया। मेरी आँखों में क्या दहशत थी? फिर ठोड़ी उन्होंने छोड़ दी। मेरा मुँह उसी तरह ऊपर की ओर टिका रह गया। तब उन्होंने झुक कर निश्चेष्ट पड़े मेरे बाँये हाथ को ऊपर उठाया और दोनों हाथों में लेकर उसे दबाते और कुचलते हुए कहा, मैं क्या करूँ सुखदा, बता तू मैं क्या करूँ?

उन शब्दों की व्यथा मुझे भीतर तक चीर गई और मैं चुप बनी रही।

तभी एकाएक वे गिर आये और मेरे घुटनों में सिर डालकर सुबक उठे— मैं क्या करूँ सुखी। क्या करूँ?

मेरे भीतर एक भी शब्द किसी ओर से बनकर नहीं उठ सका। इस प्रकार गोद में पड़े उस पुरुष के बालों को सहलाती हुई मैं बैठी रह गई। शायद व्यथा स्वयं ही सान्त्वना है। याद नहीं कि मेरी आँखों से आँसू बहे कि नहीं। बहे हों कि न बहे हों दोनों ही बातें एक हैं। लेकिन मेरी गोद में काफी आँसू गिरे। और मैंने पाया कि अपने दोनों हाथों से धीमे से उस मस्तक को दोनों कनपटियों पर से संभाले हुए मैं बड़े प्यार से कह रही हूँ उठो लाल उठो।

वह चेहरा उठा। आँखें मेरी ओर हुईं आँसुओं से धुली वे आँखें। और

---

५ कल्याणी पृ० ६७-६८ राजकमल पॉकेट बुक्स १९६०।

मुह पर लज्जा से लाल, एक फीकी, आकुल तृप्त मुस्कराहट।

उस समय मालूम हुआ कि पुरुष दुदम और दुद्धप कभी कितना निरुपाय है।[६]

उपयुक्त उद्धरण के आरम्भ मे लाल की विवशता का चित्र है। उसका भावावेग तीव्र रूप म यहा व्यक्त हुआ है। लाल के भावावेग म और सुखदा के उसके बालो को सहलाने म इन्द्रियजनित भावो की अभिव्यक्ति है। अन्तिम पक्ति मे पुरुष की निरुपाय मन स्थिति अपनी चरम सीमा को प्राप्त करती है और यहाँ शेक्सपीयर के उस कथन की सत्यता प्रमाणित होती है कि नारी पुरुष की सबसे बडी कमजोरी है। सुखदा के सान्निध्य से लाल को गहरी मनस्तृप्ति प्राप्त होती है। उसका पौरुष उसकी दुम्मनीयता और उसकी दुद्धपता जसे नारी के निकट द्रवित हो जाते हैं। इन्द्रियजन्य भावो का यहा विशद वणन है।

विवत से हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहगे, जिसमे प्रकृति भी मानव के तीव्र मनोवेगो की साक्षी बनी है। इसम वातावरण की विचित्रता और शब्दारम्भ का मार्मिक सकेत है कमरे मे ऊपर एक रोशनदान था और नीचे की तरफ एक खिडकी। खिडकी बन्द थी और रोशनदान बन्द न हो सकता था। हल्की सर्दी के दिन थ। पाला पाख शुरू ही हुआ था। चाद शायद निकला न होगा। या ऊचा न चढा होगा। चादनी अन्दर न आ रही थी। जितेन पडा रहा पर नीद न आती थी। सिर दुखता-सा लगता था। वह पडा रहा, पडा रहा। नीद जसे भाग गई थी और सिर चकराता था। उठकर उसने खिडकी खोली। खोलते ही हवा का एक मीठा झोका उसे लगा। वह कुछ देर हवा पीता वहा खडा रहा। आखिर आकर चादर सिर तक ले पड गया। कोशिश की कि करवट भी न ले। आध घण्टे तक उसने करवट नही ली। पर नीद पास न आई और सिर की चकराहट बढती गई। अब करवट ली और सिर कसकर आध घण्ट उसी दूसरी करवट पडा रहा पर कुछ लाभ न था। ऐसा कितना समय बीता पता नही। चादनी बाहर हो, तो भी अन्दर न आई थी। खिडकी नीची थी और उसम स निश्चय न हो सका कि चाद आसमान स उतरा कि नही। मानो उसे चाद की बहुत आवश्यकता थी। वह है, मिट नहा गया है इस खबर की बहुत आवश्यकता है। माना वह अधेरा है और अधेरा गहरा है इससे चाद चाहिय फौरन, फौरन चाद चाहिय नहीं तो अधेरा लील जायगा।[७]

ऊपर की पक्तियो म जितेन की उद्विग्न मन स्थिति का एक मार्मिक चित्र

---

६ सुखदा पृ० १०२ द्वितीय सस्करण, १९६१।

७ विवत पृ० १७८ ७९, दूसरा सस्करण १९५७।

है। उद्विग्नता मन में ही नहीं है, बल्कि सिर भी चकरा रहा है। मन एवं शरीर दोनों ही व्यथित एवं विक्षुब्ध हैं। चांदनी की व्याकुलता से प्रतीक्षा हो रही है। निद्रा की अपेक्षा है, पर मन के तनाव के कारण नींद पास नहीं फटक रही। जितेन को ऐसा अनुभव होता है कि जैसे यह अंधकार उसको लील जायगा। यहां मनोवेग एवं प्रकृति का अद्भुत सामंजस्य है। प्रकृति जहां एक ओर त्रास देती है वहीं कभी-कभी उसमें चुनौती भी मिलती है। मन के भीतर जो कुछ होता है वह बाहर आ निकलने के लिये छटपटाता है। जैनेन्द्र इस प्रकार के भाव संश्लिष्ट वर्णन में कुशल पंडित हैं। इस दिशा में अनेय को छोड़कर और कोई कलाकार उनके सम्मुख नहीं टिक सकता।

व्यतीत से एक ऐसे उदाहरण को चुना जाए जिसमें भावनाओं का विशेष है। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार छायावादी कविता का ताना-बाना बुनने लगता है और वह नाव और उसके मस्तूल के प्रतीक से मन की किसी स्थिति विशेष पर प्रकाश डालता है अब मन की बात कहता हूं हूं तो कवि[1] पर आदमी भी हूं। भाव विभोर होकर बाहर की सब ठोस सत्ता को धूमिल कुहासे में परिणत करके उसमें से सब चुनौती और सब संघर्ष छीनकर खींच रहना सब काल संभव नहीं है। चुनौती मिलती भी है। तादात्म्य सदा संभव नहीं होता है। कभी उठने और करने और जूझने का भी जी होता है। करना सब अकविता है मानता हूं। लेकिन क्या किया जाए वह भी आदमी में है। चन्द्रकला को देखकर नितान्त इस मुझ सोये हुए को भी मानो चोट देती हुई चुनौती मिली। मैंने उस चुनौती को नहीं माना माना वहीं भीतर का भीतर दबा लिया। प्रकट में उसी सहज भाव में चलता रहा। लेकिन ऊंचा मस्तूल करके भरे पालों से उड़ती जाती हुई वह नाव कविता के बादल पर भी प्रतिबिंबित हो आती।[1] हठात् कहता होगा जाने दो। कहकर बादलों को अपने आसपास और सघन बना लेता और लीन हो जाता। लेकिन जीवन के चेतन-तल पर वह इकहरी सी नाव बिना कुछ जाने अपनी सफेद पालें हवा से फहराए कविता की छाया में नीचे थिरकती ही रहती कविता की कुहनिका उसे समाप्त नहीं कर पाती। मैंने उसकी ओर नहीं देखा। पर जितना ही नहीं देखा उतना ही देखता था। आंखें देखने को बनी हैं, पर देखने वाली आंखें नहीं हैं सिर्फ दिखाने वाली हैं।[2] सब देखना जिसके पास पहुंचता है वह कभी बिना आंखों को बीच में लिए भी देखता है। ऐसे शायद अधिक देखना है शायद गहन देखना है।[4]

प्रस्तुत पंक्तियों में कविता और दार्शनिकता का संश्लिष्ट भाव है और

---

८ व्यतीत पृ० ५७ ५८।

इसके लिए उपन्यासकार ने जयंत के माध्यम से संस्मरणात्मक शैली अपनाई है। अतिशय दार्शनिकता की अभिव्यक्ति पाठक को उलझा भी देती और कथा रस म व्याघात डालती है किन्तु यह जनेन्द्र का स्वभाव है और व उससे बच नही सकते हैं। स्वभाव वह है जो बदला न जा सके। (टेम्परामेण्ट इज दैट विच कन नाट बी टैम्पड) रेखांकित वाक्य संख्या एक मस्तूल पाल और नाव एव बादल की बात कही गई है। यह नौका जीवन नौका ही है, इस पर कविता के बादल अपना प्रतिबिंब छोडते हैं और उसे एक नई आभा से अलोकित कर देते हैं। यह जीवन म प्रकृति का बिम्ब भी कहा जा सकता है। इसके मूल म रूपक की प्रवृत्ति है। रेखांकित वाक्य संख्या दो म साहित्यिक विरोधाभास (लिटरेरी पराडाक्स) का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। आखो के काय व्यापार को एक गहराई के साथ पकडा गया है और संकेत किया गया है कि आख तो देखने का निमित्त-मात्र है, देखन वाला तो कोई और है। उसे मन कहिए या चेतना। प्रस्तुत अनुच्छेद म छायावादी गद्य का वभव भी देखा जा सकता है। यह उपन्यास मे कविता है और कविता मे उपन्यास ह। पते की बात कहने की प्रवृत्ति ही, उपन्यासकार से इस प्रकार के विवरण, प्रस्तुत कर वाती ह।

जयवधन से हम एक ऐसा उदाहरण लेना चाहेगे, जिसमे राजनीतिक चिंतन का नवनीत हो और जो जनेन्द्र की मनोवेगात्मक शली के एक भिन्न एव पृथक पक्ष को उजागर करता हो 'वह होगा, श्रीनाथ, कतव्य के समय उस पर ध्यान न दें। निंदा का प्रस्ताव हो तो बाधा नही है। मुख्य यह है कि आप एक निर्णय पर आ जाए देश पर दलीय शासन समाप्त हो हो तो मिलीजुली सरकार हो। शक्तिया आगे आपस म काट बाट न करे बल्कि परस्पर को पूर्णता दें। काल की यह माग है और दुनिया मे जिस अनी की घडी पर हम खडे हैं, वहा हम भारतवासी यह करने म चूक गए तो फिर किसी और से यह उत्तर आने वाला नही है। इससे भविष्य अधेरा हो, तो उसके भागी हम होंगे।[१]

जयवधन स जनेन्द्रजी का राजनीतिक उपन्यासो का सिलसिला आरम्भ होता है। मुक्तिबोध और अनन्तर मे भी यही राजनीतिक गूज है। उपयुक्त उद्धरण मे सवदलीय सरकार बनाने का जय की ओर से संकेत है। वह जानता है कि राष्ट्रीय शक्तिया अविभाज्य रूप म ही राष्ट्र को सर्वोत्तम सेवा दे सकती है। रेखांकित वाक्यो मे काट बाट और अनी की घडी ये दो विशिष्ट प्रयोग हैं। इन दोनो मे ही बोलचाल की शब्दावली की रवानगी है। ऐसा करने की स्थिति

१ जयवधन पृ० ३६४, द्वितीय संस्करण १९६५।

म जो भी भविष्य होगा उसे सब भागीदार के रूप म ही लेंगे। इस प्रकार क चिंतन मे राजनीति का पुट गहराई के साथ आ गया है। इस उदाहरण मे प्रज्ञात्मक और गुणात्मक—दोनो प्रकार के मनोभावो का सम्मिश्रण है। सब दलीय सरकार की बात प्रज्ञा म स ही उपजी है। चूकि यह आयोजन एक विशिष्ट लक्ष्य को दृष्टि म रखकर परिकल्पित किया गया है इसलिए उसम गुणात्मक भाव की भी परिणति मिलती है। डा० श्यामसुन्दरदास न गुणात्मक मनोभाव के सदभ म कहा है उसका एक सुनिश्चित लक्ष्य होता है।[१] इस की परिपूर्ति प्रस्तुत अनुच्छेद म पूरी तरह होती है।

मुक्तिबोध म यद्यपि आवरण राजनीति का है किन्तु उसम नीलिमा का प्रणय प्रसग रोमास का भी पुट दे देता है नीलिमा की हथेली मेरे हाथ को हौले हौले सहलाती रही और मैं सोचता रहा कि नीलिमा कोई नही है मैं उसका कोई नही हू। लेकिन यह हाथ का स्पश जाने एक दूसरे का कितनी सान्त्वना कितना आश्वासन पहुचा रहा है। बाहर का होता जाता हुआ तथ्यात्मक या घटनात्मक सब कुछ अत म जस अलग ही छूट जाता है सार रूप म छोड जाता है कुछ वह जो मनोवेदना को भुलाता और स्वय उसमे घुलता रहता है।[११]

प्रस्तुत पक्तिया इन्द्रियजनित मनोभाव का प्रत्यक्ष दशन कराती है। हाथ को हौले हौल सहलाना एक दूसरे की त्वचा का सम्पक है इसी कारण इसम एक सूक्ष्म सवेदना सन्निहित है। जहा इस प्रकार का त्वचा-सम्पर्क हो वहा सहाय का यह सोचना कि नीलिमा कोई नही है मै उसका कोई नही हू—कोरा ढोंग सा ही प्रतीत होता है। इसे उपन्यासकार के पक्ष म या सहाय के पक्ष म भावातीत स्थिति भी कहा जा सकता है। हाथ के स्पर्श से जो परितृप्ति प्राप्त हुई उससे दोनो प्राणियो की भूख बुझी यह तो स्वीकार किया गया है। यह भी सकेत है कि ससार मे सम्पूर्ण तथ्य एव घटनाए अनत अपना प्रभाव नकारती हैं और अवशिष्ट रह जाता है मन का वह भाव जो एक दूसरे को भुलाता रहता है। प्रकारान्तर से यहा उपन्यासकार त्रासदी की ही चरम परिणति की ओर सकेत कर रहा है कि अन्तत प्रेमात्मक मनोवेगो का विनिमय एक गहरी मनोवेदना म ही साकार होता है।

अनन्तर स हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहेगे जिसम दाम्पत्य जीवन की खीज आक्रोश का रूप ले लेती है और पति पत्नी का मतभेद शारीरिक

---

१० डा० श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन पृ० २५८ आठवा आवृत्ति २००५।

११ मुक्तिबोध पृ० १४३ प्रथम सस्करण १९६५।

स्तर तक उतर आता है, अर्थात् प्रसाद रामेश्वरी को फेंक देते हैं 'मैं पलग पर बठा का बठा उफनती हुई अपनी पत्नी को देखता रहा। मन मेरा सख्त होता जा रहा था और ऐसा मालूम होता था कि उस जितने कडे शब्द मेरे पास जुट नही पाएगे। धीरे धीरे अब वह सयम नही था, जिसमे मैं चुप था। रोष था, जो मुझे चुप और निष्क्रिय बना देता था। भीतर ही भीतर वह भभक रहा था।'[12]

अनन्तर का यह प्रसग आए दिन के चलचित्रो जसे दृश्य को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। अपरा को लेकर रामेश्वरी और चारु यह अनुभव करती हैं कि उनके दामाद का जीवन अभिशप्त हुआ जा रहा है। प्रसाद उनके चिंतन मे सहयोग नही दे पाते और जब रामेश्वरी उनसे जबरदस्ती अपनी मनचीती कर वाना चाहती है तो उनके हृदय म क्रोध का उमड आना और उसी आवेश म रामेश्वरी को फेंक तक देना इन्द्रियजनित भावो की ही कोटि मे आएगा यद्यपि यहा राग के स्थान पर विराग का सदभ है। यों भी कहा जा सकता है कि क्रोध और स्नेह एक ही चीज के दो ओर छोर हैं। ऐसी क्रोध की स्थिति का चित्रण प्राय जनेन्द्र के उपन्यासों मे नहीं मिलता, क्योंकि वे प्राय ज्ञानयोग एव भाव योग मे डूबे रहते हैं। मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों एव वासनाओं के चित्रण का उन्हें अवसर तो मिला है, किन्तु ऐसे दृश्यों मे कोई अभिरुचि न होने के कारण इस प्रकार के वणन जनेन्द्र के उपन्यासों मे विरल हैं। जनेन्द्र की औपन्यासिक यात्रा मे इस नवीनतम चरण म उपयुक्त उद्धरण अपनी एक विशिष्टता रखता है। जिस प्रकार किसी साधु-सत या विचारक को हम क्रोध की स्थिति म नही देख पात किन्तु क्रोध के उफनते हुए ज्वालामुखी के सम्मुख एक विचारक भी उसी के सुर म अपना सुर मिला देता है उसका एक जीवित-जाग्रत उदाहरण उपयुक्त उद्धरण म है।

निष्कष

मनोवेगात्मक शली के विभिन्न रूपो के सर्वेक्षण के उपरान्त यह उचित ही होगा कि हम इस सबध म कुछ निष्कष निकालें

१ जनेन्द्र के उपन्यासो म वसे तो सभी प्रकार की शलिया एव मनोवेगो के दशन होते हैं किन्तु ऐसे मनोवेगो की अभियजना म उनकी शली अधिक सक्षम है जो नराश्यजय एव मरणधर्मा हैं।

२ हर्षावेग या उत्साहजय जीवनधर्मा मनोवेगो का यहा प्राय अभाव है।

---

१२ अनन्तर पृ० १०६ प्रथम सस्करण, १६६८।

केवल प्रमी-युगलों के हास्य विनोद में ही इस प्रकार के मनोवेगों की अभिव्यंजना हुई है।

३ चूंकि अधिकांश पात्र गहरे चिंतन का आवरण ओढ़े रहते हैं इसलिए जीवन की सूक्ष्म वृत्तियों का पर्याप्त विवेचन मिलता है।

४ इनके पात्रों की बातचीत में दैनंदिन जीवन का मुहावरा बड़ी कुशलता एवं मार्मिकता से अभिव्यक्त हुआ है। आवश्यकता पड़ने पर इन्होंने उपमा रूपक एवं विरोधाभास का भी उपयोग किया है।

५ अधिकांश उपन्यासों में शैली-तत्व का आधार वास्तविकता न होकर कल्पना तत्व रहा है। गहन दार्शनिक स्थिति के विश्लेषण में यही कल्पना-तत्व बुद्धि-तत्व का आधार अपना लेता है।

६ जीवनधर्मी प्रवृत्तियों के स्थान पर मरणधर्मा प्रवृत्तियों की प्रधानता के कारण इनकी गद्य-शैली में एक विशेष प्रकार के नैराश्य की अन्तर्धारा सर्वत्र प्रवाहित है। इसमें हर्षावेग के स्थान पर दुखावेग ही अधिक मुखर हैं।

७ जैनेन्द्र की मनोवेगात्मक शैली का एक विशिष्ट रूप रहा है जो हिंदी उपन्यास-साहित्य में एक पृथक स्थान और विशिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी है। जैनेन्द्र के किसी एक वाक्य को लेकर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि ऐसा वाक्य तो उनकी ही टकसाल में गढ़ा जा सकता है। ऐसे पृथक व्यक्तित्व एवं विशिष्ट प्रतिभा के धनी उपन्यासकार हिंदी में उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। इनमें जैनेन्द्र का प्रवर्तनकारी स्थान है और उनका अपना महत्व है।

परिच्छेद—६



शैली का विचारगत रूप तथा अध्ययन



१ शैली और विचार-तत्व का पारस्परिक संबंध

मानव-जीवन मे भाव-तत्व एव विचार-तत्व का सहअस्तित्व है। भाव का सबंध हमारे हृदय की सरसता से है। जब हम ताजे गुलाब की पखुडियो को देखते हैं, तो हमारा मन उनकी सुन्दरता पर रीझ जाता है और मन मे मानंदानुभूति होती है। हमारे जीवन की रीढ विचार-तत्व मे सन्निहित है। भाव यदि हमारे शरीर के मास और रक्त का रूप लिए होते हैं तो विचार अस्थियो के रूप म होते हैं। भाव, हृदय मे उत्पन्न होते हैं विचार मस्तिष्क मे। शली के मनोवेगात्मक रूपो के अध्ययन मे हमने देखा कि भाव किन किन रूपो मे प्रस्फुटित होकर उपन्यास की शरीर रचना का विधान करते हैं। इस अध्याय म हमारा विचारणीय विषय यह है कि हम शली और विचार-तत्व के पारस्परिक सबधों का निरूपण कर जैनेन्द्र के उपन्यासो म उनका जो भी रूप मिलता है उसका अनुसधान करें और तब उसके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालें।

शली-तत्व मे विचार-तत्व का बडा महत्व है क्योंकि शली रूपी शरीर का यही मूलाधार है। कोई भी रचना यदि विचारो की दृष्टि से खोखली हो, तो उसकी शैली हम प्रभावित नही कर पाती। विचारो की दृष्टि से सम्पन्न रचना ही जब अभिनव शली मे हमारे सम्मुख आती है तो हम उसका अनुशीलन कर विशुद्ध आनन्द मे लीन हो जाते हैं। मानव अनादि काल से नए-नए विचारो का अन्वेषण करता रहा है उसकी प्रगति के मूल मे यही वचारिक प्रवृत्ति सक्रिय

रूप में कार्य कर रही है। किसी भी देश में जब क्रांति होती है तो पहले विचार-जगत में उथल-पुथल मचा करती है यह वैचारिक विप्लव ही आगे चलकर क्रांति का रूप ले लेता है और तब समाज में परिवर्तन के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। कोई भी रचनाकार अपनी रचना में विचार तत्व की अवहेलना नहीं कर सकता। ये विचार ही शैली को एक परिष्कार प्रदान करते हैं और उसे नए-नए रूपों में प्रस्तुत कर सृष्टि के चिंतन को गतिशील बनाते हैं।

पिछले अध्याय में प्रभावात्मक मनोभावों के अन्तर्गत हमने यह देखा था कि किस प्रकार नए-नए विचार एवं सिद्धान्त जैनेन्द्र के विभिन्न उपन्यासों में प्रस्फुटित हुए हैं। जैनेन्द्र की शैली में जो मौलिकता देखने को मिलती है, उसका बहुत-कुछ श्रेय, उनके विचारों को दिया जा सकता है। उनके कथ्य में जो बारीकी आई है, उनके उपन्यासों में जो मन को मथ डालने की सामर्थ्य है, उसका आधार उनके मूलग्राही विचार ही हैं। विचार-तत्व किसी भी रचना की आत्मा होते हैं, तो शैली उन विचारों का परिधान, किन्तु वह परिधान से भी आगे बढ़कर व्यक्तित्व की अभिव्यंजना का भी सशक्त माध्यम बनती है। नए विचारों को उपस्थित करने के लिए नई शैली एक प्रकार से अपरिहार्य है। आधुनिकता अपने पूरे रूप में तभी मूर्त होती है जबकि हम युग के विचारों का सावधानी से दोहन करते हैं और उन्हीं से संसार के प्राणियों का पोषण भी होता है। जब हम किसी नई साहित्यिक कृति को परखते हैं तो उसकी शैली एवं शिल्प विधान यदि वे वास्तव में रुचिकर एवं प्रभावशाली हैं तो हमारे मन को मोह लेते हैं।

विचार तत्व का मूल आधार है हमारी दार्शनिक कल्पनाएं एवं चिंतन। जीवन को लेकर हम नए-नए तथ्यों का अन्वेषण करते हैं और उन्हें दार्शनिक जामा पहनाकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं इस प्रकार विचार-तत्व का दार्शनिकता से भी घनिष्ठ संबंध है। नवलेखन के सन्दर्भ में प्रायः नए जीवन मूल्यों की तलाश की बात कही जाती है। यह तलाश तभी सार्थक हो सकती है जबकि हम जीवन की मूल प्रवृत्तियों को अपने पूरे मानवीय संदर्भों के साथ जीवन के नए परिप्रेक्ष्य में ग्रहण कर सकें। हिन्दी साहित्य-जगत में जैनेन्द्र की दार्शनिकता बहुचर्चित रही है। इसी दार्शनिकता ने उनकी लेखन शैली को भी विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। आगे पृष्ठों में हमारा यहां प्रयत्न होगा कि हम जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों का सर्वेक्षण करते हुए शैली के विचार गत रूप का अध्ययन प्रस्तुत करें।

२ जैनेन्द्र के उपन्यासों मे शैली के विचारगत रूप का अध्ययन

एक बात प्रारभ मे ही स्पष्ट कर दूं कि जैनेन्द्र मे विचारो एव भावो का पार्थक्य करना सभव नही है। वे एक दूसरे मे चोली-दामन की तरह मिले रहते हैं। फिर भी प्रयत्न करने पर कुछ ऐसे स्थान मिल जाते हैं जिनसे हम उनके विचार सूत्रो का आकलन कर सकते हैं 'यह दुनिया एक है। अनकों—ऐसी ऐसी असख्य दुनियाओ मे से एक है। मैं उस पर का एक नगण्य बिंदु हूँ।— फिर अहकार कैसा ?

यह काल कब से चला आ रहा है—कुछ आदि नही। कब तक चला जाएगा—कुछ अन्त नही। इस अनादि अनत कालसागर के विस्तार मे मेरे सादिसात जीवन-बुद्बुद की भी क्या कुछ गणना है! इन ५० ६० १०० सालो की भी कुछ गिनती है! फिर भी जीवन का मोह।'[1]

परख के नायक का बैकन की पुस्तक के एक पन्ने को फाड लेना और आपत्ति किए जाने पर उस पन्ने की इबारत को सुदर सुदर अक्षरो मे लिखने का प्रयास अनायास ही हमे जैनेन्द्र की वचारिक प्रवृत्ति का रहस्य खोलता हुआ सा प्रतीत होता है। प्रकारान्तर से सत्यधन के माध्यम से जैनेन्द्र ही बेकन के प्रति अपनी विचारानुरक्ति प्रकट कर रहे हैं।

परख से ही एक दूसरा उदाहरण लें 'स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है घर को, कुटुम्ब को बनाती है जाति को और देश को भी, मैं कहता हू स्त्री ही बनाती है। फिर इन्हे बिगाडती भी वही है। आनन्द भी वही, और कलह भी? हराब भी और उजाड भी, दूध भी और खून भी, रोटी भी और स्कीम भी और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी—सब कुछ स्त्री ही बनाती है। धर्म स्त्री पर जीता है सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फैशन की जड भी वही है। बात क्या बढाओ एक शब्द मे कहो—दुनिया स्त्री पर टिकी है।'[2]

प्रस्तुत उद्धरण मे जैनेन्द्र का विचार-पक्ष स्पष्ट झलकता है। उनका नारी सबधी दृष्टिकोण छायावादी भावुकता को लिए हुए नही है वह उसके श्रेयस् और अश्रेयस्, दोनो को देखता है। नारी पुरुष के लिए वरदान भी है और अभिशाप भी। सम्पूर्ण ससार को नारी पर टिकी हुई बताकर लेखक मातृत्व के गौरव की उद्घोषणा करता है। यहा यह बात भी उल्लेखनीय है कि नारी के गौरव को रेखाकित करने वाला यह उपन्यासकार आगे चलकर ऐसे उपन्यास भी प्रस्तुत कर सका, जिनमे नारी की ही प्रधानता रही।

सुनीता से हम एक ऐसा उदाहरण लेंगे जिससे यह प्रकट हो सके कि

१ परख पृ० ४ दूसरी आवृत्ति १९४१।
२ वही पृ० ४५।

लेखक केवल नर-नारी विवेचन तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह पूँजीवाद की असंगतियों के प्रति भी जागरूक है जिसमें ऐसी चीज बन गई है कि बिना पैसे के नहीं चलती। गाय भैंसों का दूध लेकर नहीं पी सकते, जब तक कि वे अपनी न हों। पेड़ का फल और खेत का नाज नहीं ले सकते जब तक वे अपने न हों, कहीं जाना हो तो रेल में बैठकर नहीं जा सकते जब तक टिकट न हो। इन सबके लिए फिर पैसा चाहिए। वह पैसा टकसाल में ढलता है या सरकारी छापेखाने में छपता है। यह पैसे की समस्या बड़ी पेचीदा हो गई है। अनुत्पादक कार्यवाहियों से सोने का ढेर बन जाता है, उत्पादक ठोस मेहनत करने पर तांबे के पैसों का भी भरोसा नहीं बनता। अब खराबी क्या है? खराबी उन ख्याली कीमतों में है जो हमने चीजों को दे रखी है। हमारा समाजशास्त्र हमारा अर्थशास्त्र हमारा नीतिशास्त्र और हमारा धर्मशास्त्र सब उन कीमतों को मान कर चलते और उनको मजबूत बनाते हैं। हमें उनमें एकदम परिवर्तन लाना होगा। पर। तब जो है वे ऊपर दीखेंगे, फिर चक्की चलती घूमेंगे।[१]

प्रस्तुत पंक्तियों में जनेन्द्र के विचार-तत्त्व का राजनीतिक पहलू प्रकट होता है। स्पष्ट ही इन पर तत्कालीन समाजवादी विचारों का प्रभाव है जो कि सुनीता के रचनाकाल के समय हवा में फैले हुए थे। सन् १९३५ में हमारे क्रान्तिकारी समाजवाद के ग्रन्थों को गीता की तरह पढ़ रहे थे और उनके चिन्तन-लेखन में उसी की अनुगूंज थी। रेखांकित वाक्य में पूँजीवाद की अनुत्पादक चालाकियों का संकेत है और इस बात पर दुःख प्रकट किया गया है कि उत्पादक श्रम को ताँबे के पैसे का भी भरोसा नहीं बनता। इस समाज में इसी कारण अनेक असंगतियाँ पर पसारे बैठी हैं। सुनीता का हरिप्रसन्न इन्हीं असंगतियों को दूर करना चाहता है। हरिप्रसन्न के माध्यम से लेखक का ही समाजवादी चिन्तन प्रकट हो रहा है।

त्यागपत्र का व्यावहारिक पक्ष और भी अधिक सघन है। ऐसा प्रतीत होता है कि त्यागपत्र तक आते-आते जनेन्द्र के चिन्तन में परिपक्वता आ गई है।

कटुता आती है और तुम्हारे स्पर्श से उसे बल बना रहता हूँ। तुम्हारा प्रेम मुझे स्वच्छ रखता है, पर डर है कि यहां आओ और कहीं बचा-खुचा तुम्हारा प्रेम भी मेरे हाथों से जाता रहे। तब मेरा क्या हाल होगा? जीना दूभर हो जाएगा मेरा बल गिर जाएगा, श्रद्धा थमेगी कैसे? कल्मष ही तब सब ओर से घेर कर मुझे छू लेगा। तब इस जिन्दगी के बीच किस एक अवलम्ब के सहारे मैं टिकूंगी? अब तो मन को ऊँचा उठाकर साफ हवा फेंफड़ों में भर लेती

---

१ सुनीता १७१८।

है और इस विषाक्त वातावरण में सहज भाव से जिए चलती है। वह न रहा, तब मैं कैसे टिकूंगी ? मर जाऊंगी, इसका सोच नहीं है। पर जीवन की टेक हाथ से छूट जाएगी, यह तो बहुत बड़ा भ्रम है। श्रद्धा के साथ मरना भी सार्थक है, पर श्रद्धा गई, तो पास क्या रह गया ?"[४]

उपर्युक्त उद्धरण में विचार और भाव संश्लिष्ट रूप में एक दूसरे में समाए हुए हैं। धर्षिता एवं लांछिता मृणाल उस सडांद भरे जीवन में एक ही सम्बल के सहारे जी रही है वह है प्रमोद का निष्कपट स्नेह। यही निष्कपट स्नेह, स्वच्छ वायु की तरह उसके प्राणों में जीवन का संचार करता है। रेखांकित वाक्य में विचार का नवनीत है। वस्तुतः कोई व्यक्ति आस्था एवं श्रद्धा के सहारे ही जीता है, अन्यथा जीवन में इतनी असंगतियां हैं कि उनके सहारे चले तो मझधार में ही डूब जाए।

कल्याणी से हम एक ऐसा उद्धरण लेंगे जो विचार-तत्व का जमा हुआ रूप कहा जा सके (क्रिस्टलाईज्ड फार्म)। 'सत्य किसी से बहिर्गत नहीं है। न सत्य से कुछ बहिर्गत है। भेद इतना ही है कि जितना और जो दीखने-जानने में आता है सत्य उतने में समाप्त नहीं है। पर सत्य से वह अन्यथा भी नहीं है। इससे माया भी सत्य की ही माया है।'[५]

प्रस्तुत पंक्तियों को पढ़ते समय हमें ऐसा नहीं लगता कि जैसे ये उपन्यास की पंक्तियाँ हैं, बल्कि यह प्रतीत होता है कि हम कोई दार्शनिक निबंध पढ़ रहे हैं। सत्य की सर्वोपरी सत्ता को ही यहां मुखरित किया गया है। सत्य के अन्तर्गत जीवन के सभी रूप आ जाते हैं। वह अगोचर की सीमा के परे भी है। वह भूत, वर्तमान एवं भविष्य में भी समाया हुआ है। माया भी उसी का एक रूप है यद्यपि उसमें सत्य नहीं बल्कि सत्याभास है।

राजनीति के सन्दर्भ में भी जैनेन्द्र का मौलिक चिन्तन कई प्रसंगों में उभरा है। ऐसे ही प्रसंगों में से एक है, सुखदा में लाल का पत्र, जिसमें यह स्थापना है कि पारिवारिक संस्कृति और भारतीय नैतिकता की धारणा क्रान्ति के मार्ग में अवरोध उपस्थित कर रही है 'घर गिरस्ती में यहां का व्यक्ति अब तक जुटा है और भारतीय नैतिकता उस परिधि में घेर कर उसे बन्द और निस्पंद किए जा रही है। अब पारिवारिक नहीं सामाजिक संस्कृति चाहिए। परिवार स्थापित स्वार्थ बनता है और सार्वजनिकता में गांठ पैदा करता है। हमारी संस्कृति ने हमें परिवार में जड़ दिया है इससे हम पिछड़ रहे हैं। छोटे-छोटे

४ त्यागपत्र पृ० ६४-६५, २२ वां संस्करण, १९६७।
५ कल्याणी पृ० ८९ राजकमल पॉकेट बुक्स, १९६०।

स्वार्थों के भवरों में चकराते रह जाते हैं वे नहीं पाते। बिखर कर रहते हैं राष्ट्र में हारकर सहज ढंग से नहीं हो पाते। मूल में है ब्याह का हमारा विवाह, जो प्यार को बांधता है मानता नहीं। प्यार ही एक कारण है वध यही तो मर गया।[६]

प्रस्तुत अनुच्छेद में भाव ने जो बात रखी है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपनी व्यक्तिगत दुर्बलता के लिए बौद्धिक आधार ढूंढ रहा है। इस दुर्बलता का युक्तिकृत (रेशनलाइज्ड) रूप भी कहा जा सकता है। फिर भी इसमें जो बात कही गई है, उसके सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता। यह सच है कि पारिवारिकता व्यक्ति को पशु बना देती है और वह कुछ करने धरने लायक नहीं रहता।

इसी बात का एक दूसरा पहलू हम विवर्त में मिलता है। जब हम अपने से आशा रख सकते हैं। तब देश हममें आशा रख सकता है और क्रान्ति हममें आशा रखती है। जालम यदि हमारे लिए मस है तो यही चाहिए।[७] चिपटते हैं जो जिन्दगी से, वे ही उसका स्वाद नहीं जानते। जीते हैं वे जो मौत से खेलते हैं। मगर रुपया काम में आएगा। खेलनेवाले का यह सहारा देगा भूखा को खाना देगा।

यहां क्रान्तिकारियों की बातचीत का एक अंश है। उन्हें जीवन का मोह नहीं है। वे मौत से खिलवाड़ करते हैं। इस प्रकार के अवसरों पर जनेन्द्र बिल्कुल क्रान्तिकारियों की बोली में बोलने लगते हैं और वहां उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि काफी सबल होती है। जनेन्द्र यद्यपि अहिंसक विचारधारा में आस्था रखने हैं फिर भी एक उपन्यासकार के नाते वे अपने स्वभाव व परिधि से हटकर भी विवरण दे सकते हैं। उपन्यासकार को तो अपनी वैचारिकता को सभी परिस्थितियों के ढांचे में ढालना पड़ता है। इस दृष्टि से जनेन्द्र की देन महत्वपूर्ण है।

व्यतीत में जनेन्द्र का विचार-तत्व एक प्रच्छन्न व्यंग को जन्म देता है। एक ऐसा व्यंग जो मन को कचोट दे, दाम का वैभव के साथ उनकी पत्नी आई। देखकर चमत्कृत और प्रसन्न हुआ। आयु वहां ठहरती नहीं थी, मानो थी ही नहीं, इतनी प्रफुल्लिता थी। कुछ हो भी, तो प्रसाधन का साधन साथ था। यह आयु-काल को अलग संभ्रम से खड़ा रख सकता था।[८]

---

६ सुनन्दा पृ० १११ द्वितीय संस्करण १९६१।
७ विवर्त पृ० १२६ दूसरा संस्करण, १९५७।
८ व्यतीत पृ० सं० १३६ दूसरा संस्करण १९५६।

परिप्रेक्ष्य में काम प्रवृत्ति का विश्लेषण है। काम प्रवृत्ति मनुष्य अतृप्त रहने के लिये ही है। जब प्रत्येक पुरुष आत्मा पुरुष हो जायेगा, तभी वह पुरुषातीत हो सकेगा। काम प्रवृत्ति का विश्लेषण भी आध्यात्मिकता के स्तर पर हुआ है, यह कुछ व्यक्तियों को अटपटा लग सकता है, किन्तु ऐसे अटपटेपन में ही जनेन्द्र की मौलिकता निहित है।

मुक्तिबोध और अनन्तर में जनेन्द्र विचारों के गमन में सहज सामान्य भूमि पर आये हैं किन्तु उनकी दार्शनिकता की प्रवृत्ति फिर भी कुंठित नहीं हुई है। ऐसा ही एक उदाहरण हम सहाय के निम्न उद्गारों में मिलता है मैं कहाँ हूँ ? मालूम होता है कहीं भी नहीं हूँ। अनिश्चय में हूँ और उधर मैं हूँ। पक्षी उड़ते हैं वृक्ष जड़ें डालकर अपने एक जगह खड़े रहते हैं। आदमी घर बनाता है इधर उधर भी चलता फिरता है। पासने की तरह उसका घर एक नहीं हो सकता। मालूम होता है कि उत्कट जीवन उतना ही गतिमय होगा। स्थिति निष्ठ शायद उस जकड़ में जड़ पड़ता जायेगा। लगता है स्थिति को राजश्री के निर्णय पर छोड़ देना चाहिये और अपने लिये मुझे गति का ही ध्यान रखना चाहिये। विचार की इस संगति में मुझे फिर नीला का ध्यान आया और उसके स्वभाव के प्रति जैसे एक स्पृहा-सी मन में उत्पन्न हुई। माता वह है जो अन्की नहीं है। सदा जीवन्त और लहरीली है।[1]

सहाय अपने और नीलिमा के चिन्तन के संदर्भ में सोच रहे हैं कि गतिशीलता क्या है कुंठा क्या है ? वे पाते हैं कि आदर्श चिन्तन ने उन्हें कुंठित कर दिया है और उधर नीलिमा निरन्तर गतिशील है। उसकी गतिशीलता का रहस्य उसकी जीवन्तता में है। वह चिन्तन में नहीं व्यवहार में जीती है इसी लिये उसका चिन्तन सहाय की तरह कुंठित नहीं है। प्रकारान्तर से नीलिमा को ही प्रेरणा का जीवन स्रोत बताकर उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

अनन्तर में जनेन्द्रजी का चिन्तन आर्थिक समस्याओं के धरातल पर ही उतरा है। इसी संबंध में उनका निम्न कथन द्रष्टव्य है पैसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त है। वह है क्योंकि उस पर सरकारी मोहर है। मोहर की वजह से कोरा कागज भी कितनी कीमत का हो जाता है और सरकार वह है जो प्रशासन के बल पर समाज को अनुशासन में रखती है। शासन की इस संस्था से समाज की स्थिति बनती है। मुझे लगता है कि उस सुविधा के लिये शासन का होना और उसके अधीन शासित का होना अनिवार्य है। या तो संसद है धारा-सभायें हैं छत्र-तन्त्र को लोकतन्त्र की दिशा में उठाते जाने के अन्य यत्न

---

१० मुक्तिबोध पृ० ८० प्रथम संस्करण १९६५।

हैं। बीच-बीच मे इसके लिये क्रान्तिया भी होती हैं। और शासन द्वारा पक्ति बद्ध होकर मानव-समूह रह रह कर आपस में युद्ध लड लिया करते हैं। नही तो बताइये लोगो की बेतहाशा बढती फूलती सख्या कैसे काबू म आये ? शासन से इसकी व्यवस्था हो जाती है। बिना ऊपर सरकार हुए सोचिये कि प्रजा मे से फौजें कैसे बनें ? फौजें हो भी तो लडाई कैसे छिडे ? लडाई की तयारी न हो तो सुरक्षा कैसे सुरक्षित रहे ? इस तरह सरकार बहुत ही साधक सस्था है।"[11]

ऊपर की पक्तियो मे सृष्टि-चक्र के मूल रहस्या को पकडने की चेष्टा की गई है। इन पक्तियो म एक प्रकार का निर्व्याज व्यग है जो जनेन्द्र की मूल ग्राही दृष्टि का ही प्रतिफल है। प्रजातत्र एव राजतत्र पर कितना मार्मिक व्याग्य है! सरकारी मोहर सत्ता का प्रतीक है, उसी के ठेले सब चलते हैं। बढती हुई आबादी को कम करने के लिए युद्ध होते हैं और तब जनसख्या का सन्तुलन स्थापित होता है। दुनिया कोल्हू के बैल की तरह एक ही लीक पर चक्कर काटे जा रही है। यह मानवीय नियति का कितना बडा अभिशाप है! इसी तथ्य की ओर उपन्यासकार अपने पाठको का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है।

जनेन्द्र के उपन्यासो के इस विचारगत सर्वेक्षण के उपरान्त हम सहज ही निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं

(१) जनेन्द्र का मौलिक चिन्तन सभी दिशाओ की ओर प्रभावित होता है। वे अनायास ही गहरे पठकर मूल्यवान् मणिरत्नों को निकाल लाते हैं। उनके विचार एक विशेष साचे मे ढले होते हैं उन्हें पढकर सहज ही यह कहा जा सकता है कि ऐसा तो जनेन्द्र ही लिख सकते हैं।

(२) दार्शनिक ऊहापोह के कारण उनका चिन्तन सदैव एक उच्च धरातल पर रहता है कभी-कभी तो यह धरातल इतना ऊर्ध्वगामी हो जाता है कि पाठक का दम फूलन लगता है। कथा रस में जहा इस प्रकार के वचारिक चिन्तन से त्वरा आई है वहा तक यह प्रवृत्ति ग्राह्य है पर जहा इससे कथानक म व्याघात पहुचता है वहा यह अवाछनीय लगने लगती है।

(३) जनेन्द्र के उपन्यासो म विचार और भाव का समुचित सामजस्य नही है। भावों पर विचार हावी हो गए हैं, इसलिए इनमे एक प्रकार की वचारिक रूक्षता है। जहा विचारो एव भावो का सहअस्तित्व सन्तुलित रहा है, वहा औपन्यासिक उपलब्धिया महत्त से महत्तर हो गई हैं। ज्यो-ज्यो उनकी औपन्यासिक सृष्टि म विचारो का जजाल बढ़ता गया है त्यो-त्यो उनकी भावमयी दृष्टि उपेक्षित होती गई है। अपने कथन के प्रमाण म मैं कहना

---

११ अनतर पृ० १०१ १०२।

चाहेगा कि जनेन्द्र के पूववर्ती उपन्यास अधिक सफल हैं और परवर्ती उप न्यास व चौमट म ही नहीं आते।

(४) विचारो की प्रधानता क कारण उनकी शली म एक प्रकार की अस्पष्टता भी आती जा रही है। उनका चिंतन रहस्यमय आवरण म छिपता जा रहा है यह चिन्ता की बात है किंतु यह सज इतना बढ़ गया है कि वे पीछे नहीं लौट सकते। उनकी साधना सहजता म आरम्भ हुई थी किन्तु अब वह विचारो की मग मरीचिका म इस प्रकार खोती जा रही है कि सहजता का स्थान जटिलता ने ले लिया है।

(५) जनेन्द्र के पास दुनिया के लिए सन्देश तो है पर वे उसे नाटकावस्थित (नुगटकाटेड) नहीं कर पा रहे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान म नाटकीय वेष्टन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण बनती जा रही है पर जनेन्द्र इस ओर ध्यान नहीं दे पा रहे। इसीलिए उनके उपन्यास हलक म एक कटु तिक्त स्वाद छोड़ जाते हैं। उनके उपन्यास पाठको की संख्या निरन्तर क्षीण होती जा रही है।

(६) जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि म मनोविज्ञान शलीतत्व सर्वाधिक मुखर है इसलिए प्रबुद्ध पाठको म व पुन-पुन पढ़े जाते हैं और ज्यो-ज्यो पाठक उनके चिंतन की गहराई म जाता है त्यो-त्यो वह मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। व साधारण पाठको के उपन्यासकार नहीं हैं व तो विद्वान् पाठको एव ममभेदी अन्वेषको के उपन्यासकार है। इस प्रकार क पाठको म उनका भविष्य सुरक्षित है किन्तु साधारण पाठक उन्हें उपन्यासकार ही नहीं मानता कारण कि वे उपन्यास म भी निबध लिखने लगते हैं और दशन की परतो-पर परतें डालने लगते हैं।

(७) छायावादी गद्य-शली का वभव हम उनके पूववर्ती उपन्यासो म देख सकते हैं पर अपनी परवर्ती सृष्टि म वे समसामयिक सन्दर्भों म इतना उलझ गए हैं कि उससे उन्हें निस्तार नहीं मिल सकता। नर-नारी की मूल प्रवृत्ति क सधान म और शासनतत्र की बुराइयो म इतना अधिक निमग्न हो गए हैं कि उन्हें एक अच्छा खासा गोताखोर कहा जा सकता है जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ। गहरे पानी म उपन्यासकार तो पैठता ही है किन्तु साथ ही यदि पाठक भी गहरे पानी मे पैठने लगे तो उनके सृजन के प्रति अधिक न्याय कर सकता है, किन्तु यह आशा आज दुराशामात्र ही सिद्ध होती जा रही है।

(८) जनेन्द्र ने अपनी विचारगत शली म न केवल परम्परागत मुहावरो को अपनाया है वरन् नए मुहावरे भी गढे हैं उनके वाक्यो का ध्वन्यात्मक

सौन्दर्य अप्रतिम है। वे विराम चिन्हों के प्रयोग के प्रति भी अतिशय जागरूक हैं किन्तु यह जागरूकता क्षीण होती जा रही है। उनके प्रारम्भिक उपन्यास मौलिक उत्प्रेरणा के फल थे, किन्तु इधर के उपन्यास किसी पत्र या रेडियो की माँग से लिखे गए हैं। प्रेरणा का जितना बाह्यीकरण होता गया है, उतनी ही उनकी औपन्यासिक सृष्टि औपचारिक बनती जा रही है।

परिच्छेद—७



चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति और भाषा-शैली



मनुष्य की मनोरचना बड़ी जटिल एव सश्लिष्ट है। फ्रायड ने मानव मस्तिष्क के तीन स्तर स्वीकार किए हैं

(१) चेतन

(२) अर्द्धचेतन (अथवा अवचेतन)

(३) अचेतन

'अचेतन की कल्पना फ्रायडियन मनोविश्लेषण का आधारभूत सिद्धान्त है, जिसके सम्बन्ध म अत्यधिक लिखित सामग्री उपलब्ध है और सबके विचारो मे साम्य हो, सो बात नही। पर इतना समझ लेने से काम चल जाएगा कि मानव मस्तिष्क का तीन चौथाई अश इसी अचेतना की परिधि के अन्दर हैं और मनुष्य के विचार, उसके *व्यवहार तथा रहन-सहन के ढग की स्वाभाविकता या अस्वा*भाविकता का मूल प्रेरक यही है। जिस तरह एक नदी म तरते हुए बर्फ की चट्टान का अधिकाश जल प्रवाह की तह म पडा नजरो से ओझल रहता है, दिखलाई पडने वाला तो थोडा-सा ही है। ठीक इसी तरह मस्तिष्क का चेतन अश जहा पर सोच समझकर ऐसा-करू इस तरह के व्यापार चलते रहते हैं वह महज छोटा भाग है पर वास्तविक रूप से उसके व्यापार की प्रेरणा तो अचेतन से ही मिलती है। चेतन मस्तिष्क तो अचेतन के हाथ का एक तरह से कठपुतली-सा है और वही अचेतन छिपे छिपे डोर हिलाया करता है। नदी म तरते हुए बर्फ की चट्टान को न देखकर केवल नदी को ही देखिए। पानी का बाह्य स्तर ही दीख पडता है। पर उसके नीचे पानी की एक अविकल राशि

प्रवाहित होती रहती है । इन दोनो मे पारस्परिक आदान प्रदान बना रहता है और नीचे की तह मे रहने वाली जल धारा उठ-उठ कर ऊपर की जलराशि में रूप रग तथा तापमान मे परिवर्तन उपस्थित करती रहती है। उसी तरह हमारे व्यावहारिक जीवन के सारे कार्यकलाप अचेतन से प्रभावित रहते हैं, अचेतन ही उनकी डोर हिलाया करता है ।

इन दोनो स्तरो का मध्यवर्ती स्तर है अर्द्धचेतन, या कहिए स्वल्पचेतन, जो वतमान मे ज्ञान और अनुभूति का विषय तो नहीं होता, पर थोड़े ही प्रयत्न के बाद अनुभाव्य हो सकता है। मस्तिष्क में सबसे बडा और महत्वपूर्ण अश अचेतन म हमारे जन्म से लेकर अब तक की अनुभूतिया पडी रहती हैं और विशिष्ट प्रयत्नो के द्वारा ही उन्हें पाया जा सकता है। चेतन और अचेतन के बीच एक प्रहरी (सेंसर) बैठा रहता है, जो अवाछनीय विचारो को आता देख दरवाजा बन्द कर देता है ।"[1]

डा० नगेन्द्र ने अपने निबन्ध 'फ्रायड और हिन्दी साहित्य' म चेतन अचेतन का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है

"हमारे मन के दो भाग है चेतन और अचेतन (अवचेतन) । इनके बीच म एक तीसरा भाग भी है जिसकी स्थिति चेतन से कुछ पहले है—इसे फ्रायड ने प्री-कान्शस अर्थात् पूव चेतन कहा है। यह अचेतन के लिए एक प्रकार का द्वार है। चेतन की अपेक्षा अचेतन कही बृहत्तर और प्रबलतर है। फ्रायड ने इसके स्पष्टीकरण के लिए एक ऐसे पत्थर का दृष्टान्त दिया है जिसका तीन चौथाई भाग जल मे है और एक चौथाई जल के ऊपर । यह तीन चौथाई अचेतन है और एक चौथाई चेतन। चेतन वह भाग है जो सामाजिक जीवन मे सक्रिय रहता है, जिसकी क्रियाओ का ज्ञान हमे रहता है। अवचेतन वह भाग है, जिसकी क्रियाओ का ज्ञान हमे नही होता, परन्तु जो निरन्तर क्रियाशील रहकर हमारी प्रत्येक गतिविधि को अज्ञात रूप से प्रेरित और प्रभावित करता रहता है। यह अचेतन हमारी उन इच्छाओ और चेष्टाओ का पुज है, जो अनेक सामाजिक कारणो से मूलत सामाजिक स्वीकृति अथवा मान्यता के अभाव मे चेतन मन से मुह छिपाकर नीचे पड जाती है और वहा से अभिव्यक्ति के लिए सघर्ष करती रहती है। इस अवस्था मे उन्हें अधीक्षक (सेंसर) का सामना करना पडता है जो हमारी सामाजिक मान्यताओ का प्रतीक रूप है। वह इन असामाजिक इच्छाओ का दमन करने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह दमन एक छल

---

१ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय, द्वितीय सस्करण, १९६३ पृ० ४५ ४६ ।

मात्र होता है दमित इच्छाएं अनेक छद्म रूप रखकर अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग ढूंढ लेती हैं। ये मार्ग हैं स्वप्न स्वप्न चित्र और कला-साहित्य आदि। इस प्रकार ये सभी स्वप्न के विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार स्वप्न की व्याख्या फ्रायड के गाम्भीर्य विधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

मन का विभाजन फ्रायड ने एक और प्रकार से किया है। यहां भी उन्होंने उसके तीन अंग माने हैं—इड ईगो और सुपर ईगो अर्थात् इद अहं और अति अहं। परन्तु ये वास्तव में क्रमशः अचेतन चेतन और अधीनस्थ (सेन्सर) से बहुत भिन्न नहीं हैं। इड या इद हमारे रागों का पुंज है, जिसमें अचेतन का ही प्राधान्य है। इसकी धारणा बहुत-कुछ हमारी वासना से मिलती जुलती है। अहं चेतन मन है जो नीचे इड या इद में से इच्छाओं के धक्के खाता हुआ सामाजिक मूल्यों के प्रति सचेष्ट रहता है और अति अहं संचित सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक है जिसका काम आलोचना और अधीक्षण करना है। फ्रायड के शब्दों में अहं इद का वह भाग है जिसका निर्माण ऐन्द्रिय ज्ञानमय चेतन के माध्यम से बाह्य जगत के सम्पर्क द्वारा हुआ है। इद का प्रेरक सिद्धान्त है आनन्दवाद और अहं का प्रेरक सिद्धान्त है वस्तुवाद। अहं में ज्ञान का प्राधान्य है और इद में वासना का अहं विवेक और बुद्धि का प्रतीक है और इद रागों का आवास है।

हमारा अचेतन जिन दमित इच्छाओं का पुंज है वे मूलतः काम के चारों ओर केन्द्रित हैं। इस प्रकार जीवन की मूलवृत्ति फ्रायड के अनुसार है काम। उनके अनुसार जीवन में दो वृत्तियां प्रधान हैं—एक प्रेम करने की प्रवृत्ति 'इरास' अर्थात् काम; दूसरी नाश करने की प्रवृत्ति अर्थात् थनेटास। इसमें भी मुख्य है पहली अर्थात् काम दूसरी उसका विपर्यय मात्र है। इसी काम को फ्रायड ने 'लिबिडो' कहा है। हमारी सभी व्यष्टिगत क्रियाओं तथा चेष्टाओं में यहां तक कि समष्टिगत क्रियाओं तथा चेष्टाओं में भी काम के सूक्ष्म अन्तर-सूत्र विद्यमान रहते हैं।"[२]

फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का एक उत्तरपक्ष भी है जो कि मार्क्सवादी विवेचकों की दृष्टि में इस प्रकार है "फ्रायड के अनुसार मनुष्य की चेतना का निर्माण प्रवृत्तियों और अवचेतन के दमन से होता है पर तथ्य यह है कि मनुष्य की चेतना का निर्माण सामाजिक कार्यों के दौरान ऐन्द्रिय अनुभवों से होता है। फ्रायड ने अवचेतन में केवल दमित इच्छाओं, संवेगों तथा विचारों का अस्तित्व माना है, जबकि वास्तविकता यह है कि मनुष्य की इच्छा-शक्ति, जिसका कि

---

२ आस्था के चरण फ्रायड और हिन्दी साहित्य पृ० ५११ १२ प्रथम संस्करण १९६८ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

यह सामाजिक कार्य करते हुए विकास करता है उसके अन्तर्जगत पर अनुशासन रखकर भी मनुष्य को बीमार नहीं होने देती, यही कारण है कि हमारे यहां योग का और फ्रायड के यहां समाज का महत्व दिया गया है।

फ्रायडवाद में दमित इच्छाओं, भावों और विचारों का सबंध देश और काल से सबंधित नहीं माना गया, यह इस-मत का एक और दुराग्रह है।"[1]

फ्रायडीय मनोविज्ञान के पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के इस विवेचन के संदर्भ में इस अध्याय में हमारे लिए चेतन और अवचेतन का अधिक महत्व है, क्योंकि उपन्यासकार की भाषा शैली में मन के यही दो स्तर अपने आपको प्रकट कर पाते हैं, यद्यपि अचेतन के संवेग और भावनाएं बहुत दूर तक इन अभिव्यक्तियों को प्रभावित और नियन्त्रित करती हैं। फ्रायडीय मनोविज्ञान की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि शैली-तात्विक अध्ययन में चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत भाषा शैली का अध्ययन हमारे लिए विशेष रूप से उपयोगी होगा। अगले पृष्ठों में जैनेन्द्र के उपन्यासों से इसी प्रकार के प्रसंगों का उद्धृत और विश्लेषित किया गया है।

अब हम यह पता लगाने की चेष्टा करेंगे कि चेतन मन की प्रक्रिया में किसी भी पात्र की वाक्य रचना, शब्द-चयन और अन्ततः उसकी अभिव्यंजना किन रूपों में अपने आपको प्रकट करती है। जैनेन्द्र आरम्भ से ही एक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार रहे हैं इसलिए परख से लगाकर अनन्तर तक इस स्थिति का सर्वेक्षण करना और तदनन्तर उससे कुछ निष्कर्ष निकालना हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। परख से कुछ उदाहरण लिए जाएं

(१) सत्यधन और गरिमा कश्मीर की मनोरम पृष्ठभूमि में एक दूसरे से मिलते हैं। परिवार के अन्य सदस्य जानबूझकर उन्हें एकान्त देते हैं। गरिमा को कट्टो और सत्यधन के संबंध ज्ञात हैं किन्तु फिर भी वह कट्टो को परास्त कर सत्यधन को अधिकृत किया चाहती है। इसी दौर में जब गरिमा सत्यधन को कट्टो के बारे में बतलाने के लिए विवश करती है तो वह अपनी जान छुड़ाने के लिए केवल यही कह पाता है ?

—वह गवई लड़की है बड़ी पगली है। उसका क्या सुनोगी ?

—बड़ी पगली है।—सुनूँ तो उसका जरा पागलपन ?

—उंह छोड़िए।

—वह तकिया भी तो उसी का पागलपन है न !

---

३ जलते और उबलते प्रश्न, डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—प्रथम संस्करण १९६६ वोहरा प्रकाशन जयपुर।

वह बोला। दशा बात बढ़ रही है।—तो यह लोम में भी रहती है। तबिए का भी पता लगा रखा है। यह बात है! मेरा तो अधिकार कुछ है नहीं अपना अधिकार की सनक्सा न रखा भी करनी आरम्भ कर दो! पर अब यह बात मैं कहा तब भुक्ता जाए? बाला—हां है ता।

—है तो ?—बड़े ढंडे दिल से कहते हैं यह आप!

—नहीं ता क्या

—अच्छा जान दो। गरिमा ने कहा और तभी एक ताजे उठे हुए भाव से उसका चेहरा चमक गया, पूछा, अच्छा, मैं वसी ही बन जाऊं तो कैसा? तुम्हें कैसा लगेगा?

—तुम बन नहीं सकती।

—बन सकती हूं, यही तो तुम जानते नहीं।

'आप' से 'तुम' पर वह कब उतर आई थी, सो उसे पता नहीं चला।[४]

प्रस्तुत उद्धरण म एक नगर-बालिका युवक सत्यधन पर अपना अधिकार चाहती है। इस अधिकार प्राप्ति के मार्ग म कट्टो कांटे की तरह चुभ रही है। इस कांटे को किसी तरह निकाल देना ही गरिमा का लक्ष्य है। उसके चेतन मन म अधिकार प्राप्ति की भावना है अवचेतन मन म अधिकार प्राप्ति की भावना म बाधा डालने वाली बालिका को अपने उद्देश्य के पथ म हटाने की प्रक्रिया है। तकिया प्रणय प्रतीक है। गरिमा का कट्टो जैसी ही बन जाने की भावना उसके व्यक्तित्व पर अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने का एक सबल प्रयत्न है। ठंडे दिल स कहने की बात म एक प्रच्छन्न व्यंग्य है जसे यह कोई एक तीसरी चिमटी हो जिसकी मदद से वह सत्यधन के मन म से कट्टो को निकालकर बाहर फेंक देगी। गरिमा का आप से तुम पर उतर आना उसकी अधिकार भावना का द्योतक है। सत्यधन चेतन रूप से गरिमा के प्रति सम्मोहित हैं किन्तु उनके अवचेतन म कट्टो का प्रभाव अवशिष्ट है। इसी अवशिष्ट प्रभाव को गरिमा एक प्रगल्भ युवती के समान बड़ी कुशलता से निकाल फेंकना चाहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत उद्धरण म चेतन मन की प्रक्रिया भाषा को एक द्रुत रूप प्रदान करती है और उसम मन की प्रकट अप्रकट भावनाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब रहता है। इन भावनाओं के विश्लेषण से हम किसी भी पात्र के मन का 'स्क्रीनिंग' कर सकते हैं। मनोविज्ञान का यह एक अमोघ अस्त्र है।

(२) कट्टो के तेल से गीले हो रहे आने वाले कमरे म विहारी और उसके

---

४ परख पृ० ३१ ३२ दूसरी आवृत्ति १९४१।

बीच जो बातचीत हुई है वह न केवल सम्वाद सौष्ठव की दृष्टि से ही महत्व पूर्ण है बल्कि उसकी व्यजना, चेतन और अवचेतन के अनेक पटो का खोलती है। बिहारी क चेतन मन म यह भावना है कि वह कट्टो को सत्यधन के प्रति विरक्त कर दे और अवचेतन मन म यह भावना है कि सत्यधन के रिक्त स्थान मे अपने लिये स्थान बना लें, किन्तु क्या यह मभव हो सका ? इसी सदभ म हम निम्न उद्धरण पर विचार करेंगे, 'पर देखो-देखो, कट्टो अचेत मूर्च्छित होकर गिरी जा रही है। बिहारी ने झट स सभाल लिया। सत्य पर उस बडा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहा होता तो उसका सिर पकड कर इस कट्टो के पैरा के पास धूल म इतना घिसता कि बाल सारे उड जाते ! हाय, कम्बख्त स्वग के इस अछूते पारिजात को पथ को जूठा करके छोडे जा रहा है।

कट्टो को खाट पर लिटा दिया। कुछ उपचार से होश आया। कट्टो ने जगकर देखा कि बिहारी सुश्रूषा मे लगा है।

बिहारी बाबू आप जाओ। उनसे कह देना अपने कामो मे कट्टो की गिनती न करें। मेरे पीछे उन्हे थोडी सी चिन्ता भुगतनी पडी तो मैं अपने को क्षमा न कर सकूगी। मैं क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होने दुःख भुगता। न हो तो मैं ही उनसे कहूगी। कहूँगी अपनी कट्टो पर इतना अहसान का बोझ न लादो, मुझसे उठाया न जावेगा, मैं उसके नीचे सदा दुखी रहूगी। इससे मेरी गिनती छोड दो। तुम्हारे सुख से ज्यादे मुझे कुछ नही चाहिये। उसी को नष्ट कर दूगी, तो कही की न रहूगी। बिहारी बाबू आप जाओ। बडा कष्ट पहुचाया आपको। पर कट्टो बडी सुखी है। बहुत दिनों के बाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी, जो उनकी खुशी की राह खोल दे। बडा सौभाग्य है कि आखिर मैं उनके किसी काम आऊगी। उनसे कहना, कट्टो पर विश्वास रखें वह उनकी बडी ऋणी है।—नही मैं ही कहूगी।

बिहारी ने कहा—दुनिया में सभी सत्य नहीं है, बिहारी भी है। तुम्हारी तरह पुरुष भी है, जो बिना लिये दे सकते हैं।

—नही, सभी उन जसे नही हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेंगे। और ठीक करने मे अपने को बचायेंगे नही। देने लेने का कुछ सवाल नही है।

—लेकिन

—नही तुम उन्हे नही समझ सकते।

इस तरह वह कर बिहारी चुप खडा रह गया। इस लडकी का विश्वास जो अब गडकर हिलने का नाम नहीं लेगा—चाहे प्रलय आ जाये, चाहे हिमालय ढह पडे, जो अटल अडिग खडा रहेगा। हो जो होना हो। इस विश्वास को

देखकर वह स्तम्भित रह गया।'[5]

उपर्युक्त उद्धरण में बिहारी और कट्टो के मन के द्वंद्व की लेखक ने अभिव्यक्ति दी है। चेतन की प्रक्रिया में पड़कर अवचेतन किन किन रूपों में अपनी पखुड़ियों को प्रस्फुटित करता है, इसका यह एक प्रतिनिधि उदाहरण है। कट्टो सत्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं सुनना चाहती क्योंकि उसके मन में एक अटल अडिग विश्वास है। 'धूल में इतना घिसना कि बाल सारे उड़ जाते।' इस अभिव्यक्ति में बिहारी के मन के अमर्ष की प्रबल व्यंजना है। इस वाक्य का दूसरा पहलू यह भी है कि वह सत्य को अपात्र सिद्ध करके उस प्रद्युम्न पारिजात की गंध का स्वयं लिया चाहता है। रखांकित वाक्य संख्या दो में प्रणयोत्सर्ग का चित्र है। सच्चा प्रेम कुछ लेना नहीं चाहता वह तो अपने को देकर ही फलता फूलता है। रखांकित वाक्य संख्या तीन में बिहारी प्रणय भावना की विमलता की दृष्टि से अपने को कट्टो के समकक्ष सिद्ध किया चाहता है। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से यही भावना है कि कट्टो और सत्य के स्थान पर कट्टो और बिहारी की जोड़ी ही अधिक उपयुक्त रहेगी। रखांकित वाक्य-संख्या चार में नारी के अटल अडिग अखंड विश्वास का एक सजीव चित्र है। प्रणय के ऐसे निर्मल रूप को चूंकि बिहारी ने अभी तक नहीं देखा था इसलिए वह स्तम्भित रह गया। इस प्रकार स्तम्भित रहने में उस अपने प्रणय की विफलता भी दिखाई दी अर्थात् वह कट्टो को दाम्पत्य के प्रणय-सूत्र में आबद्ध न कर सकेगा। प्रस्तुत सम्वाद में मन के चेतन और अवचेतन द्वैतमयी सृष्टि के जड़ और चेतन की तरह एक दूसरे के प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हैं।

(३) परख के अन्तिम से पूर्व के प्रकरण में हम सत्य को गरिमा के प्रति विक्षुब्ध और उससे कटा हुआ पाते हैं। ऐसी स्थिति में कट्टो उससे मिलने आती है और सत्य के पैर पकड़ते हुए कहती है मेरी जाजी का तुम कुछ नहीं कह पाओगे। क्या मैं तुम्हारी नहीं हूं?

—नहीं कोई नहीं हो। मैंने अपने हाथ से तोड़कर तुम्हें दूर फेंक दिया और उस

* * *

अगले रोज आई चालीस हजार के नकद नोट सामने किये।

—न-न-न

—बोलो नहीं वह चुप हो।

---

५ परख पृ० ६६ ७० द्वितीय आवृत्ति १६४१।

६ परख पृ० ११३ द्वितीय आवृत्ति १६४१।

—कट्टो।

—देखो, तुम जुबान हार चुके हो।

—कट्टो मुझे नरक मे मत घसीटो।

—हैं यह क्या अशुभ लाते हो मुह पर।

—उन्हें रुपये की जरूरत थी। वह उनकी आदत मे पड गये थे।

यही कमी थी, जिसने 'न न' को कम करते-करते आखिर अनमने मन से लेने को बाध्य कर दिया।'[7]

उद्धरण सख्या दो म, दो विरोधी भावनाओ की अभिव्यक्ति है। एक ओर कट्टो यह भी नही चाहती कि सत्य गरिमा की आलोचना करे। दूसरी ओर वह सत्य के प्रति अपनी प्रबल आत्मीयता भी प्रकट करती है। एक उत्सगमयी नारी का मन तलवार की ऐसी ही दुधार पर चलता है। सत्य के मन मे विक्षोभ है कि उन्होंने अपने हाथ से तोडकर कट्टो को दूर फेंक दिया और उस मायाविनी गरिमा के चक्कर मे फस गये। उद्धरण-सख्या तीन मे सत्य की 'न न-न' चुपके से हा मे परिणत हो जाती है, क्योकि उनके मन के चेतन मे अस्वीकृति का भाव विद्यमान है और अवचेतन म पसे का लोभ कुडली मार कर बठा हुआ है। मन के ऐसे ही द्वत भावो की अभिव्यक्ति म चेतन और अव चेतन का विरोधाभास स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। रचनाकार की यही मन स्थिति आज सचेतन कहानी म अपनी अभिव्यक्ति ढूढ रही है। मनुष्य का मन स्वीकृति और अस्वीकृति के आवरण मे लिपटा रहता है और उसकी अस्वीकृति कब स्वीकृति का रूप ले लेती है और कब उसकी स्वीकृति, अस्वीकृति मे बदल जाती है इसी रहस्य के सधान मे आज का उपन्यासकार निरत है मन मे जड और चेतन का जो सम्मिलित प्रभाव अगडाई ले रहा है उसी की यह अभिव्यक्ति है। मनोविज्ञानपरक शली तात्विक अध्ययन म इस द्वत स्थिति का महत्त्व निर्विवाद है।

सुनीता

सुनीता भोजन के लिये हरिप्रसन्न की प्रतीक्षा कर रही है। बारह बज गया, एक बज गया दो बज गया वह नही ही आया। इस प्रतीक्षा के भार को हलका करने के लिये वह भूले सितार को छेड बठी है।

'सितार के सुर मिलाकर उसने बजाना आरम्भ किया। जाने भीतर क्या रुका था जो सितार के सुरो म बज उठा। उस सुर मे प्रणय भी नही है,

७ परख पृ० ११४ द्वितीय आवृत्ति, १६४१।

अभियोग भी नहीं है। मात्र एक निवेदन जैसे है। उसमें शिकायत नहीं है, केवल उच्छ्वास है। सितार में से किसके प्रति यह संगीत उत्थित हो रहा है वह नहीं जानती। वह तो बजाये जाती है उस संगीत के भीतर का प्राण उसकी आत्मा में से निकलकर सितार के तार के सहारे गूंज रहा है कि फिर इस शून्य की गोद में खो जाये। वह गूंज कर कमरे में भर गया है और वह बजाये जा रही है।"[८]

जैसे बत्ती खाने से पहले एक साथ विस्फारित हो अतिशय उद्दीप्ति से जल उठे मानो वैसे सुनीता की अंगुलियों की कठोर ठोकर से दो एक अतीव सशक्त स्वर कांपते हुए तार में से निकले। गूंज से अधिक उनमें चीख थी। फले नहीं वे शून्य में भरे अवकाश को चीरते हुए चढ़ते गये चढ़ते गये। दम रहा तब तक चढ़ते गये कि अन्त में दम हार, वे स्वर शीर्ष से गिरकर पाताल में आ एकदम मूर्च्छित हो सोये।

संगीत चुक गया। तब सितार को सुनिता ने धीमे से अलग रखा और आहिस्ता से वह उठकर चल पड़ी।

मानो अब कोई बात नहीं है। अब वह हंस भी सकती है। यदि कुछ था तो सितार से सुबक कर वह चुक गया है। अब सब ठीक है।[९]

प्रस्तुत पंक्तियों में सुनीता के मन में प्रतीक्षा की चेतना है। किसी के लिये जब प्रतीक्षा की जाती है, और जब वह नहीं आता तो मन खीझ उठता है। किन्तु ऐसा तभी होता है जब प्रतीक्षा करने वाला प्रतीक्षित के प्रति दिलचस्पी रखता हो। कहा गया है कि यह दिलचस्पी मात्र एक निवेदन है। उद्धरण के उत्तरार्द्ध में एक वाक्य है गूंज से अधिक उनमें चीख थी। यह चीख किसी के मन की कातरता को प्रकट करती है। यह भी संकेत किया गया है कि यदि कुछ था तो सितार में से सुबक कर वह चुक गया है। इससे सुनीता सामान्य (नारमल) हो आई। उसने अपने मन की भावनाओं का आरोपण सितार पर किया और इससे वह हल्की एवं प्रकृतिस्थ हो सकी। प्रश्न उठता कि प्रतीक्षारत सुनीता के अवचेतन मन में क्या है। यहां निश्चय ही उसके अवचेतन में एक पुरुष के प्रति कौतूहल भावना है। वह प्रतीक्षित के प्रति एक लगाव अनुभव करती है। *सितार के सुरों में उसने अपने वियोग को ही अङ्कित किया है।* चेतन मन की प्रतीक्षा अवचेतन मन में कौतूहल का रूप ले लेती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति की सम्पूर्ण क्रियाओं के मूल में उसका अवचेतन मन ही कार्य करता

---

८ सुनीता पृ० ६५ दूसरा संस्करण १९४१।

९ सुनीता पृ० ६६।

है। अवचेतन मन की अभिव्यक्ति से ही व्यक्ति सहज हो जाता है, जैसे सुनीता सितार के सुरों में अपने आपको व्यक्त कर हल्की हो गई है।

सुनीता की सितार-साधना के समान ही हरिप्रसन्न की चित्र साधना उसकी आत्माभिव्यक्ति की प्रबल साधना है। हरि ने अपने चित्र का शीर्षक रखा है 'ओ तू'। पेन्सिल की मदद से उसी 'तू' को कागज पर बांधने के प्रयास में वह लग रहा है और लग रहा है।

श्रीकान्त ने रात को कोई बारह बजे उठ कर देखा बिजली जल रही है और हरिप्रसन्न चित्र में लगा है सो लगा ही है।

फिर अचानक तीन बजे के लगभग वह फिर चौंक कर उठ बैठा। तब भी देखा बिजली जल रही है। धीमे धीमे पैरों से गया कि कहे, हरि, बहुत हुआ, सोओ। किन्तु पास जाकर देखा, तो हरि दोनों हथेलियों पर ठोडी रखे, उंगलियों से कनपटी पकड़, सामने बिछे कागज पर काली लकीरों से बने आल जाल को ऐसा खोया सा देख रहा है मानो वहां उसके प्राण कील दिए गए हों। देखकर श्रीकान्त चुपचाप लौट आया।[१०]

प्रस्तुत विवरण में एक चित्रकार की तन्मयता स्पष्ट ही आभासित होती है। उसके चेतन मन में यह भाव है कि वह अपने मित्र श्रीकान्त के यहां उसकी सौन्दर्यमयी भार्या सुनीता के निकट सम्पर्क में आया है। उसके अवचेतन को इससे गुदगुदी होती है। क्यों? सम्भवतः सौन्दर्य का सम्मोहन कुछ ऐसी ही प्रतिक्रियायें मन में जगाता है। इसी सम्मोहन की अभिव्यक्ति वह अपने चित्र में किया चाहता है। उस चित्र के प्रति उसकी तल्लीनता उस सौन्दर्य के प्रति उसकी तल्लीनता को भी प्रकट करती है। जहां चेतन में उस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करना ही उसका उद्देश्य है वहां अवचेतन में कुछ ऐसी भावनाएं भी हैं जो अपने असली रूप में प्रकट नहीं हो सकती। उनके लिए किसी कलाभिव्यक्ति का सम्बल चाहिए। यह कलाभिव्यक्ति उसकी भावनाओं का प्रक्षेपण है। यदि हम इस चित्रकृति का विश्लेषण करें तो सहज ही उसके प्राणों की थाह को पाया जा सकता है, और तब हम समझ सकेंगे कि उसके प्राणों में सुनीता का सौन्दर्य किस प्रकार कील दिया गया है।

चेतन और अवचेतन की आंख मिचौनी का प्रतिनिधि उदाहरण सुनीता का निर्वसन प्रकरण है। कभी-कभी ऐसा होता है कि संकट की स्थिति मानव-जीवन के यथार्थ को सतह पर ले आती है। युद्धकाल में आदर्श नहीं चलते। मनुष्य का देवत्व और दानवत्व दोनों ही प्रकट होते हैं। जब हरिप्रसन्न के सिर पर संकट

१० सुनीता, पृ०

मँडरा रहा था तो उसकी इस शोचनीय अवस्था को देखकर सुनीता उस किसी बात के लिए ना नहीं कर सकती थी "उस समय उसकी बाहुओं में घिरी हुई अनुगृहीता की भाँति चलने लगी। मानो इसमें उसे कुछ जीवनकृतार्थता ही उपलब्ध हुई।"[11]

जिस वातावरण में हरि और सुनीता का मिलाप होना है वह भी वहा सम्मोहक एवं मन के अवचेतन या चेतना की सतह पर से आने वाला लगता है "वह एक घिसी चट्टान थी। चट्टान का स्पर्श ठण्डा था। ऊपर तारे थे। बयार धीमी धीमी चल रही थी। आसपास मनुष्य का पता न था। शहर दूर था बहुत दूर। यहाँ वन था वनस्पति थी। और अँधेरे में वन सोया था वनस्पति भी चुप साई थी। हवा में कभी झाड़ियों की कुछ फुनगियाँ जरा हिलती डोलती थी।"[12] ऐसे उद्दीपक वातावरण में हरिप्रसन्न ने जो अपनी बाहुओं से अपनी जंघा का सहारा देकर लिटा लिया है सो वह भी वहाँ लेट गई है। वह कृतज्ञ है।"[13]

हरिप्रसन्न ने कहा सुनीता मैं अब तुम्हें भाभी नहीं कहता जिन्हें भाई कहता हूँ उनकी ही मारफत तुम तक पहुँचूँ अब ऐसा नहीं है। मैं तुम्हें सुनीता कहूँगा। हम सीधे एक दूसरे के सामने हैं। किसी की मारफत हम दोनों के बीच में नहीं है। श्रीकांत तुम्हारा पति है, मेरा मित्र है। पति एक होता है मित्र भी शायद एक ही होता है। मेरे लिए तो वह एक ही है। लेकिन मौत से बड़ी क्या चीज है? अगर कोई प्रभु है ईश्वर है तो मौत में मैं उसे देखता हूँ। यह जो हमारे ऊपर मौत का हाथ है वही उस प्रभु की रक्षा का हाथ है। सुनीता अब मैं और मौत आमने-सामने हैं। मैं उससे आँख मिचौनी नहीं खेलूँगा। मैं खुली छाती पर उसे लूँगा। अब यह दिनों की बात है। दिन उँगली पर गिन जाएँ इतने भी अब हम दोनों के बीच में मत समझना। उस महाशक्ति के सामने होकर मैं झूठ नहीं बोलूँगा। मैं सच कहूँगा। मैं सच कहता हूँ मेरी सुनीता—

और निश्चल पड़ी हुई सुनीता की बाहु को उठाकर उसने अपनी आँखों से लगा लिया। उसका कण्ठ भर आया उसकी देह काँपने लगी। वह जैसे डर से भर गया।

मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ—प्रेम? लेकिन मैं भी नहीं जानता हूँ सुनीता।

---

११ सुनीता पृ० १७७।
१२ वही पृ० १७७।
१३ वही पृ० १७७।

और बिल्कुल अपने मुख के समीप ही ठहरे हुए उस सुनीता के मुख को टकटकी बाधकर वह देखता रह गया।"

प्रस्तुत प्रकरण म एक पुरुष अपने सम्पूर्ण आवरणो का परित्याग कर एक नारी के समक्ष है। आमने सामने की यह स्थिति हम डी० एच० लारेंस की उस मान्यता की याद दिलाती है जिसमे कहा गया है कि स्त्री पुरुष के सामाजिक सबध केवल एक प्रवचना हैं मूल मे वे नर-नारी ही है। सभ्यता और संस्कृति के आवरणो ने उन्हे देवर भाभी भाई-बहन अथवा माता-पुत्र बना दिया है किन्तु इन सामाजिक सबधो से परे वे निरे पुरुष एव निरी नारी ही है। हरिप्रसन्न का आदिम मानव जसे यहा जाग गया है और उसके जागते ही हमे ऐसा प्रतीत होता है कि जसे चेतना और अवचेतना के बीच के विभाजक आवरण हट गए हैं और दोनो मिलकर एक हो गए हैं। ऐसी मानसिक प्रक्रिया मे जनेन्द्र की भाषा शली यथार्थ तत्व को ओढ़कर ही चलना चाहती है। सकट की छाया मे सुनीता की करुणा को भी उकसाया गया है। सुनीता के द्वारा जब हरिप्रसन्न के इस व्यवहार को सहा नही गया तो हरिप्रसन्न ने वहा से चले जाने की बात कही जो कि उस परिस्थिति मे एक धमकी भी कही जा सकती है। हरि वास्तव म वहा से नही जाना चाहता था किन्तु प्रकट मे वह सुनीता से जाने की अनुमति ले रहा था। ऐसी स्थिति मे प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप नायक एव नायिका की सहायता करता है रात का दो ढाई बजे के करीब चाद निकल आया। दूध-सी चादनी बिछ गई। आसमान हसता दिखाई दिया। प्रकृति भी उसके मीच खिली। वातावरण मे अजब मोह था। बयार म गुलाबी सर्दी थी।



और एक घडी बीती, दो घडी बीती। जितनी घडी बिताई जा सकी बिताई। वह इसम हारता ही गया घिरता ही गया। अत म उठा। उठकर चला। वह कुछ नही जानता। (¹) जा रहा है क्योंकि पाव ले जा रहे हैं। कहा जा रहा है ?—जहा पहुच जाए। जहा कही उसके भीतर का दाह उसे ठेले लिए जा रहा है। (¹) उस ओर, जहां कोई सोया पड़ा है। वहा, जहा विश्व का केन्द्र है, जहा से सबको जीवन प्राप्त है, जहा से फिर सबको मौत भी मिलती है।

सुनीता खुले पत्थर पर सो रही है। तकिया बाह का भी नही है। वही है और कुछ भी नही है और वह सो रही है। ओह रेशमी वस्त्र चान्दनी म कसे खिल रहे हैं। और यह मुखडा विनिद्रित, सम्पुटित कसा प्यारा लग रहा

१४ सुनीता, पृ० १७७ १७८।

है। क्या प्यारा और क्या जहर।

* * *

वह आया था कि बस, एक बार उसे सोती हुई को देख कर वह उल्टे पाँव लौट जाएगा। लेकिन वह तो उसे देखने को वहाँ पास लगा। धीरे-धीरे क्या हुआ कि एकाएक बढ़कर उस नारी के चरणों की उँगलियों को उसने धीमे से चूम लिया। ऐसे धीमे कि शायद ओठों ने छुआ भी नहीं।

किन्तु लहर तो लहकती ही गई। वह पास आकर बैठा। धीमे से उसके हाथ को उठाया और मुँह से लगाया। पलकों से फिर सुनीता की देह पर उसने हाथ फेरना शुरू किया। मद जैसे उस पर चढ़ता ही जाता था।

* * *

क्या चाहता हूँ? तुम पूछोगी—क्या चाहता हूँ? तो सुनो, तुमको चाहता हूँ, समूची तुमको चाहता हूँ। उसके बाद।[15]

उपर्युक्त वाक्य समूह एक में चेतन मन, अवचेतन के द्वारा ठगा जा रहा है। नारी-सौन्दर्य को विश्व का केन्द्र बनाया गया है, क्योंकि प्राणों का उत्स वहीं अन्तर्निहित है। दार्शनिकता की धुन में यह भी कहा गया है कि उसी जीवनदायिनी नारी से अन्ततः मृत्यु भी प्राप्त होती है। इसी तथ्य को कवि पंत ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

यदि स्वर्ग कहीं है इस भू पर
तो वह नारी उर के भीतर।
यदि नरक कहीं है इस भू पर
तो वह भी नारी उर के भीतर।

ऐसा कहकर कवि और उपन्यासकार इसी तथ्य को सम्पुष्ट करते हैं कि नारी सौन्दर्य जहाँ एक ओर जीवनदायिनी है, वहाँ उसके प्रति अनियंत्रित अनुरक्ति विनाशकारिणी भी है। चेतन और अवचेतन की कुहेलिका में जैनेन्द्र गद्यकाव्य लिखने लग जाते हैं। इसका उदाहरण 'विनिद्रित एवं सम्पुटित पुलक' वाला प्रकरण कहा जा सकता है।

दर्शन में चुम्बन तक की स्थिति आ गई और वासना थी कि लहकती ही गई। प्रसुप्त वासनाएँ अवचेतन के द्वार को खोलकर चेतन के धरातल पर आ जाती हैं और खुलकर खेलना चाहती हैं और उसकी चरम सीमा है—समूची सुनीता को चाहना। यही चाहना सुनीता को निर्वसन करता है और उस रूप को भग्न न करने पर हरिप्रसन्न भाग खड़ा होता है। प्रश्न उठता है कि क्या यह

---

15 सुनीता, पृ० १७८, ७९, ८०।

स्थिति सम्भाव्य है ? इसका उत्तर हा और ना दोनो ही रूपो मे दिया जा सकता है किन्तु जनेन्द्र का यह एक प्रिय व्यसन है कि वे नायक को चरम सीमा तक ले जाकर पीछे धकेल देते हैं और जिसे नदी के द्वीप के सन्दभ म अज्ञेय ने 'फुलफिलमट' कहा है, वह नही हो पाता। कुछ आलोचको ने इस स्थिति को गाधीवादी उपयासकार की सनक भी बताया है। जब नारी अपने को देने को तयार हो, तो प्रसुप्त वासना स विव्हल पुरुष भला कसे भाग सकता है, किन्तु ऐसे स्थल पर जनेन्द्र दाशनिकता का आवरण डाल देते हैं। वे कहते हैं कि हरिप्रसन्न उस निवसन रूप को सह नही पाया और भाग खडा हुआ। ऐसा करके वे सम्भवत इस बात की ओर सकेत करना चाहते हैं कि सौन्दय के प्रति आसक्ति तब तक है जब तक वह दबा ढका है और जब वह निरावरण हो जाता है तो मोह भग की स्थिति आ जाती है। हरिप्रसन्न अपने चेतन मन से समूची सुनीता को प्राप्त करना चाहता है उसका अवचेतन मन भी उसे इसी ओर ठेल रहा है किन्तु इसकी अतिम परिणति दाशनिकता का रूप ले लेती है। ऐसी स्थिति मे यही कहा जा सकता है कि चेतन और अवचेतन के बीच जो विभाजक रेखाए हैं वे टूट गई हैं और व्यक्ति का आदिम रूप अपनी पूरी नग्नता और यथायता के साथ पाठक के सम्मुख प्रकट हुआ है। हिंदी उपयास साहित्य म यह प्रकरण अत्यन्त विवादास्पद रहा है किन्तु यह भी एक तथ्य है कि इसी प्रकरण ने सुनीता की लोकप्रियता को बढाया है। इसम जो ऐंद्रियता का तत्व आ गया है वह आगे के उपयासो मे क्षीण से क्षीणतर हो गया है। गाधीवाद की गहन दाशनिकता न उपयासकार के इस पुसत्वमय रूप को आगे चलकर लील लिया है।

त्यागपत्र

चेतन और अवचेतन मन स्थिति के अध्ययन की दृष्टि स त्यागपत्र का जनेन्द्र के उपयास साहित्य मे एक विशिष्ट स्थान है। सवप्रथम हम उस प्रकरण को लेंगे जबकि डाक्टर के खत को लेकर प्रमोद लौटा है। इस खत को लेकर तो बावेला मच गया था। बुआ न कहा 'तू कुछ नही जानता। तू गधा है। मेरे दिल मे आग लग रही है।

मैं चुप था।

' तू जानता है दिल की आग क्या होती है ?

किसी दिल की आग को सचमुच मैं नही जानता था, लकिन उस समय बुआ को देखकर उनकी उस क्षण भर मे होकर उसी क्षण बुझ जान वाली अनबूझ मुस्कान को देखकर मेरे मन की पीडा बहुत घनी हो गई थी। मन म होता था

कि किस तरह से मैं इनके काम आ पाऊं कि उनका जी हल्का हो, और नहीं तो *उनके गले लग कर फूट ही पड़ूं।*

उन्होंने कहा 'देख प्रमोद, शीला के भाई का कोई पैगाम आया है कि मैं छत से गिर कर मर जाऊंगी। मुझे उन्होंने क्या समझा है? मैं कहना चाहता था कि शीला के भाई ने कहा है कि वे अभी एक महीना यहीं हैं और कि वे मुझे बड़े अच्छे मालूम होते हैं लेकिन तभी बुआ ने कहा जाकर शीला से कह देना। मैं सच कहती हूं, मैं मर जाऊंगी। मृणाल का कौल झूठा नहीं होता।' —बुआ ने यह ऐसे कहा कि मानो अभी यह काफी नहीं हुआ अभी तो और भी पक्के तौर पर अपने को समझाना है कि ऐसी हालत में मरना ही होगा कुछ भी अन्य सोचना विचारना न होगा।"[16]

दिल में आग लगना मन की द्वन्द्व स्थिति का परिचायक है। मृणाल के चेतन मन में पतिव्रता का भाव विद्यमान है और अवचेतन मन में डा०प्रेमी का प्रसंग कांटे की तरह कसक पैदा कर रहा है, इसी से उसके दिल में आग लगी है। इसी बात को न समझ पाने के कारण प्रमोद को गधा कहा गया है। अनबूझ मुस्कान में एक प्रकार व्यंग्य है जैसे यह मुस्कान एक प्रहेलिका हो। छत से गिरकर मरने की बात में पातिव्रत्य के संकल्प को दोहराया गया है और यह भाव भी व्यक्त किया गया है कि शीला के भाई का पैगाम आना अनुचित है इससे पातिव्रत्य को *ठेस लगती है। मुझे उन्होंने क्या समझा है* में भी यही अन्तर्ध्वनि निहित है कि वह एक पतिव्रता नारी है विश्वासघातिनी नहीं। मृणाल के चेतन में पातिव्रत्य का भाव प्रबल है किन्तु उसका अवचेतन उसे प्रणय प्रसंग की ओर ठेलता है। ऐसी मानसिक स्थिति में वह प्रकट करती है मैं सच कहती हूं मैं मर जाऊंगी। *मृणाल का कौल झूठा नहीं होता।'* इस वाक्य में सच कहने की बात की टेक मन के झूठ को दबाने का एक प्रयत्नमात्र है। दूसरे वाक्य में फिर इसी संकल्प को दोहराया गया है जिससे यही प्रतीत होता है कि झूठ दब नहीं रहा है उभर उभर कर वह मन के ऊपर आ रहा है जहां नैतिकता की भावना मन को दबोच देती है। *यह प्रयत्न ठीक वैसा ही है* कि जैसे कोई कहे कि मैं चोरी नहीं करता। चोर के ऐसा कहने में समाज और पुलिस का त्रास है मृणाल के ऐसा कहने में समाज और पातिव्रत्य का त्रास है जो कि सत्य के प्रति निष्ठा में प्रकट हो रहा है।

उद्धरण के अंतिम वाक्य में यही बात फिर घुमा कर कही गई है। कुछ भी अन्य सोचना विचारना में यही संकेत है कि मृणाल को रह रह कर अपने

---

१६ त्यागपत्र पृ० २२ पाकेट बुक संस्करण।

प्रणय प्रसंग की याद आती है और अज्ञात रूप में यही भावना उसे ससुराल जाने के बारे में उत्साहित नहीं करती।

ज्यों-ज्यों जाने का दिन आता उनकी निगाह कुछ बंधती-सी जाती थी। जहां देखती, देखती रह जाती थी। जैसे सामने उन्हें और कुछ नहीं दीखता। सब भाग्य दीखता है और वह भाग्य चीन्हा नहीं जाता। ऐसी अपेक्षित पूछती हुई-सी निगाह से देखती मानो प्रश्न रोक कर भी उत्तर मांगती हो कि मैं कुछ चाहती हूं, पर अरे कोई बतायेगा कि क्या? [१७]

उद्धरण का अन्तिम वाक्य मृणाल की स्थिति का स्पष्ट दर्पण है। वह स्वयं नहीं जानती कि वह क्या सोच रही और क्या कर रही है। ऐसी ही अनिर्णीत मन स्थिति में व्यक्ति भाग्य का सहारा लेता है सो मृणाल ने भी लिया। और इतनी उधेड़बुन के बाद उसका यही निर्णय था कि वह दवा के नाम पर डाक्टर से जहर मंगवाये और उसे खाकर अपने जीवन को समाप्त कर ले। इससे यही प्रमाणित होता है कि जिस बात का निर्णय किया गया था वही बात प्रकट में हो रही है। डाक्टर के पास दवा के नाम की पर्ची भेजना एक प्रकार का प्रतीकपूर्ण संदेश है, कि उसके मन को इतना आघात लगा है कि वह जिया नहीं चाहती। और मरेगी भी तो उन्हीं के द्वारा भेजे गये जहर से। यह भी अपनी भावनाओं के विनिमय का एक तरीका है जिसे कि मृणाल के अवचेतन मन ने ढूंढ निकाला है। चेतना के स्तर पर जिस बात को वह स्वीकार नहीं कर सकती उसी को अवचेतना के स्तर पर स्वीकार कर लेती है। ऐसे प्रसंगों में जैनेन्द्र की भाषा अत्यन्त अमूर्त एवं वायवी हो जाती है और यहीं हम उनकी शब्द लाघवता की शक्ति एवं व्यंजना की क्षमता का दर्शन करते हैं। मन की आड़ी तिरछी रेखाओं को अभिव्यक्त करने में वे अप्रतिम हैं। प्रेमचन्द की भाषा-शैली से उनकी भाषा शैली में यहां एक स्पष्ट अन्तर आ जाता है और पाठक को यह अनुभव होने लगता है कि जैसे उपन्यासकार एक नई भाषा को गढ़ रहा हो, जिसमें प्राणों की दीप्ति हो और अन्तश्चेतना का ओज हो।

त्यागपत्र में एक ऐसा प्रसंग आता है, जिसमें भूत वर्तमान और भविष्य तीनों में मृणाल की दृष्टि दौड़ती है। प्रकरण बुआ भतीजे की बातचीत का है 'अच्छा, जाने दो इस बात को। यह बता मैं चली गई तो तू मुझे याद करेगा?

उस समय मैंने कहा बुआ मैं तुम्हें पीछे बहुत याद करता था।'

—मर जाऊं, तो भी याद करेगा?

मैं तब समझदार था। कहा, ऐसी बात मत करो बुआ। मैं नहीं सुनना

---

१७ त्यागपत्र पृ० २३।

चाहता।

—अच्छा एक बात बता। तू बड़ा हो जायगा, तब मैं बुलाऊं तो तू आयेगा ?

—फौरन आऊंगा

—किसी भी हालत में हुई तू आयेगा ?

—हां आऊंगा।

—तो सुन मैं कहती हूं तू नहीं आयगा। मैं तुझे बुलाऊंगी ही नहीं। कहती हूं तुम सब लोग मुझे भूल जाना। मैं जैसी गई वैसी मरी। इसके बाद मैं तुम लोगों को बिल्कुल तकलीफ नहीं दूंगी। थोड़ी देर बाद बुआ ने मुझसे पूछा, तू जानता है पति का घर क्या होता है ?

मैंने कहा कि मैं नहीं जानता।

—स्वर्ग होता है।

मैंने मान लिया कि स्वर्ग होता होगा। लेकिन मेरे इस सहज भाव से मान लेने से उन्हें जैसे सान्त्वना नहीं हुई। बोली वह तो स्वर्ग ही होता है, जिसके लिये ऐसा नहीं है वही अभागिनी है।[15]

प्रस्तुत प्रसंग में अपने भविष्यत् जीवन को लेकर बुआ की मानसिक उपयुक्त पंक्तियों में स्पष्ट भाव रही है। उसे इस बात से कुछ सान्त्वना मिलती है कि उसका भतीजा प्रमोद उसे बहुत याद करता है और चाहता है। मैं जैसी गई वैसी मरी।—इस वाक्य से यह स्पष्ट आभासित होता है कि ससुराल को लेकर मृणाल के मन में कोई उल्लास नहीं है बल्कि सन्त्रास है। चेतन मन से वह पति के घर को स्वर्ग बतलाती है लेकिन यही स्वर्ग अवचेतन में मुंह फाड़ता हुआ आता है और उसे लील लेता है। दूसरे ही पल मृणाल यह भी सोचती है कि जिस युवती के लिए पति का घर स्वर्ग नहीं है वह अभागिनी है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसके मन में एक ओर तो ससुराल का आदर्शवादी चित्र है और दूसरी ओर अवचेतन में वह उस कटुभरित अनुभूति भी प्रगट करता है। सारे ही दोष को अपने ऊपर लेकर मृणाल ने वस्तु-सत्य पर लीपा-पोती कर दी है। यह भारतीय नारी का स्वभाव भी है। वह परिस्थितियों से समझौता करने का प्रयत्न करती है चाहे इसमें उसका व्यक्तित्व क्षार-क्षार ही क्यों न हो जाय।

उपयुक्त उद्धरण में चेतन अवचेतन की आंख मिचौनी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

चेतन मन कभी-कभी अवचेतन की बात को स्वीकार करने में भयंकर कष्ट

---

15. त्यागपत्र, पृ० 33।

एव त्रास का भी अनुभव करता है। ऐसा ही एक उदाहरण हम प्रमोद और उसकी मा की बातचीत मे मिलता है, "घर पर मा ने पूछा, 'कहा रह गये थे? सतीश कहता था कि तुम एक रोज उससे पहले कालिज से चल दिये थे।'

' मैंने कहा 'बुआ को खोजता हुआ रह गया था। वह उस नगर म रहती है।

जसे किसी ने उन्ह डक मारा हो मा ने कहा, 'कौ—न।'

बुआ। मैं उनसे मिलकर आ रहा हूँ।'

क्या—आ।'

' 'मा, वे यहा नहीं आ सकतीं?'

मा ने जोर से कहा 'सुन प्रमोद, तेरी बुआ अब कोई नही है मेरे सामने उसका नाम न लेना।

लेकिन सुनती हो अम्मा,' मैंने कहा, 'मैं उनको भूल नही सकता हू।' मा ने कहा, तू जो चाहे कर। पर खबरदार जो मुझसे उसकी बात कही-कुल बोरन कही की।"[१९]

उपर्युक्त पक्तियो म मा का चेतन मन बुआ को पहचानना नही चाहता, इसकी अभिव्यक्ति 'कौ—न' शब्द म हुई है। जब प्रमोद ने उनसे मिलकर आने की बात कही तो मा का मुह फटा का फटा रह गया। क्या—आ म इसी भाव की व्यजना है। मा का चेतन मन बुआ से सम्बन्ध विच्छेद कर चुका है और वे उसे किसी भी रूप मे स्वीकार करना नही चाहती क्योकि वह 'कुल-बोरन है। किन्तु प्रमोद है कि वह बुआ को भुला नही पाता, और मा की डाट डपट के बावजूद भी वह बुआ से सम्बन्ध बनाये रखता है। यहा प्रमोद के चेतन और अवचेतन मे कोई भेद नही है पर उसकी मा ने चेतन और अव चेतन के बीच इतनी ऊची दीवार खडी कर दी है कि जहा से कोई किसी को देख न सके। यह मा का कट्टर आदर्शवाद ही है, जो कि वस्तु-सत्य को नहीं देख पाता और परिणाम मे उनका चेतन, अवचेतन को दबाये रहता है। ऐसी मन स्थिति मे जनेन्द्र घृणा एव जुगुप्सा के सूक्ष्म भावों को बडी नाटकीयता के साथ प्रकट करते हैं। 'कौ—न,' 'क्या—आ,' मेरे कथन के साक्षी हैं। एक से विस्मय और दूसरे से क्रोध की नाटकीय व्यजना हो रही है।

कल्याणी

कल्याणी का जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि म एक विशिष्ट स्थान है। उसके

१९ त्यागपत्र पृ० ७९।

सम्पूर्ण जीवन पर एक रहस्यमयी आध्यात्मिकता का आवरण पड़ा है। वह जो कुछ प्रकट में दिखाई देती है, उससे बहुत कुछ भिन्न है। उसके बाह्य और आतरिक रूप में एक बड़ा भारी विरोधाभास है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके जीवन की सभी अंतःप्रवृत्तियाँ अवचेतना में ही सांस लेती हैं। वह हीनता की भावना से ग्रसित है उसे अपने अतीत जीवन का भूत सदा सताता है। इसी से त्राण पाने के लिए उसने अपने घर के बड़े से कमरे को जगन्नाथधाम का रूप दिया है। यह धाम उसकी आस्था का प्रतीक है। इस मंदिर में जात-पांत धर्म-सम्प्रदाय अमीर-गरीब किसी का भेद नहीं है। जगन्नाथजी की लगन में वह अपना सब कुछ भूल गई है। उनका सब कुछ जगन्नाथजी और अन्नपूर्णाजी को अर्पित है। बूढ़ाघर को वह अपनी जगह समझती है। जगन्नाथजी का पल भर को भी यदि विस्मरण हो तो इसी 'बूढ़ाघर' में वे अपने को पटकने लायक समझती हैं। ऊपर से अंग्रेजी सभ्यता की प्रतिच्छवि उनके पहनावे में दीखती है लेकिन अंदर जगन्नाथधाम की ही भावना प्रबल है। मजे की बात यह है कि जब से मंदिर हुआ है उनकी आमदनी तब से बराबर बढ़ती जा रही है। रोगियों की परिचर्या ही उनके जीवन का लक्ष्य है। इसी परिचर्या में वे भगवान के रूप को देखती हैं। पति के प्रति उनका दृष्टिकोण इस प्रकार है "आप उन्हें नहीं जानते हैं। शारीरिक के अलावा वह मुझे और कष्ट नहीं दे सकते। मैं अपने ऊपर उनके प्रेम के दावे को जानती हूं।([1]) प्रेम करते हैं, इसी से मार तक सकते हैं। लेकिन वह छोड़िए। मेरे शरीर को उन्होंने इतनी साज सज्जा में रखा है अगर उसको वह कड़ी चोट भी दें तो उनको अधिकार है। उनके दंड से मैं बच क्या ?([1]) क्योंकि जो पुरस्कार सिंगार वह मुझे देते रहे हैं, वह मेरी पात्रता से बहुत था। उसको मैंने अपना प्राप्य नहीं माना। इससे। जितना मुझमें छीना जाता है उतनी मुझ पर कृपा की जाती है उतना ऋण उतरता है। पर आप सच मानें, डाक्टर साहब शरीर के अतिरिक्त मेरा कुछ न छुएँगे। और शरीर --रोज तो रोगियों को देखती हूँ। उसकी यथार्थता पर मुझे जुगुप्सा होती है। उसकी ममता अब मुझमें बस नहीं सकती। शरीर की ममता। आह मैंने किस किस अवस्था में उसको देखा है। इससे देह को साज से सजाया जाए बेंत से उधेड़ा जाए, या औजारों से चीरा फाड़ा जाए, सब एक बात है।[२]

रेखांकित वाक्य संख्या एक में, कल्याणी ने एक विचित्र किंतु स्वाभाविक तर्क दिया है जो प्रेम करता है वह मार भी सकता है। इस प्रसंग को वे आगे

---

२० कल्याणी पृ० ७९-८०।

नही बढाना चाहती कारण कि इससे उनकी दुखती रग छिल जाएगी। रेखाकित वाक्य-सख्या दा म हीनता की ग्रभिव्यक्ति है । 'पुरस्कार' ग्रौर सिंगार' को कल्याणी पतिप्रदत्त वरदान मानती है। उद्धरण के ग्रतिम ग्रश म शरीर के विभिन विवरणो म एक दाशनिकता का ग्रारोप किया गया है इसी के बीच बेंत स उधेडे जाने की बात भी ग्राई है। जो नारी बेंत से उधेड जाने ग्रौर देह को सजाने इन दोनो को एक ही चीज के दो छोर समझती हो उसकी दाशनिकता की तो हम प्रशसा कर सकते हैं, पर यह भी निश्चय है कि वह एक ग्रसामाय नारी है । वकील की पत्नी ने कल्याणी के चरित्र म जिन ग्रसाधारण लक्षणो का जायजा लिया है वे निराधार नही हैं। यह कसी नारी है जो पति के द्वारा दी गई यातना को फूला की महक के साथ सूघती है ग्रौर जिसे ग्रपनी स्वाधीनता का ग्रपहरण किचित भी ग्रपमानजनक प्रतीत नही होता।

कल्याणी के उद्गारो म भारतीय सस्कृति एव नारीत्व का गौरव-गान है, किन्तु वह जिस रूप मे ससार की घटनाग्रो को ग्रहण करती है उससे उसकी दाशनिकता ही प्रकट होती है, ग्रौर ऐसा लगता है कि कल्याणी के कठ म स्वय उपयासकार बोल रहा है। मन के इसी द्वैत भाव की ग्रभिव्यक्ति उस स्वप्न क विवरण म स्पष्ट रूप से ग्राभासित हाती है, जो कि पुरुष-कठ ग्रौर स्त्री कठ के माध्यम से वर्णित किया गया है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि प्राणी ग्रपने ही त्रास को, ग्रपनी बुभुक्षा को एक रूपक दे देता है। ऐसा ही एक रूपक निम्न पक्तियो मे दृष्टव्य है एक पुरुष कठ ने कहा – "चुप नही रहेगी, क्यो ?'

स्त्री-कठ ने उत्तर दिया– मैं नही रहूगी चुप। कभी नही रहूगी। मुझे मार क्या नही डालते ? लकिन चुप मैं नही रहूगी। मैं

'नही रहेगी ? मुझे गुस्सा मत दिला।

जो मन म है पूरा क्यो नही कर डालते हो ? लो मुझको मार डालो । पर समझ रखना, चुप मैं मरने के बाद भी नही रहूगी।'

नही रहेगी ?'

'नही, नही, नही रहूगी।'

देख मैं फिर कहता

नही, नही, नही हा, घोटो गला '

नही ? तो ले, मत रह चुप

उसके बाद ग्रावाज कुछ मर्राई-सी निकली छटपटाहट सुनाई दी ग्रौर धीमे धीमे सब शात। [21]

---

२१ कल्याणी पृ० ८३ राजकमल पाकेट बुक्स १९६०।

प्रस्तुत उद्धरण में असरानी-दम्पति के वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति है। वह अपने ही अन्तर्व्यक्तित्व का इस रूप में साक्षात्कार करती है। जिस जीवन पर आध्यात्मिकता एवं आदर्शवादिता का आवरण पड़ा हुआ है उसका असली रूप उपर्युक्त पंक्तियों में अभिव्यंजित है। ऊपर हमने कहा है कि कल्याणी के जीवन में अवचेतना ही चेतना बन गई है और चेतना अवचेतना के रूप में या उसके माध्यम से ही प्रकट होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने उपर्युक्त शब्दों में कल्याणी के वास्तविक स्वरूप का एक्स रे चित्र ही प्रस्तुत कर दिया है। छीना झपटी, गाली-गलौज, धमकी और डाट डपट की ही भावनाएं इन पंक्तियों में अभिव्यंजित हुई हैं।

कल्याणी में हमें एक ऐसा प्रसंग भी मिलता है जिसे हम चेतन मन की अभिव्यक्ति मान सकते हैं किन्तु इसकी जड़ें भी दूर कहीं अवचेतन में हैं। 'मैंने उन्हें कहा कि अपने को हीन मानने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन मैंने जो क्रमशः सुना, मैं मानूं कि उससे मैं दंग रह गया। वह प्रसंग दोहराने के लिए नहीं है। पर उससे मालूम हुआ कि इस विवाह के लिए कितनी होशियारी उन्हें खेलनी पड़ी थी। जो आज पत्नी है विवाह से पूर्व वह क्या प्रान्त भर की रत्न न थी? अच्छे-से अच्छा सबंध क्या उन्हें दुर्लभ था? फिर भी मैं सफल हुआ तो... पर यह इस कथा से प्रसंगान्तर है, जाने दीजिए। किन्तु मुझे यह सब सुनकर अत्यन्त कष्ट हुआ। लेकिन देखता हूं कि डाक्टर जिसको अपनी कारगुजारी मानते आए थे उस पर उन्हें अनुताप भी है। अब वह उन्हें अपनी महिमा नहीं, लज्जा मालूम होती है।'[22]

प्रस्तुत प्रसंग में असरानी-दम्पत्ति के सम्पूर्ण जीवन का एक विहंगावलोकन आ गया है। डाक्टर अपने कुकृत्य को स्वीकारता है जिस चीज को लेकर उसके मन में कभी महिमा जागी थी, आज वही चीज उसकी लज्जा एवं संकोच का आधार बनी हुई है। इस अनुच्छेद में वर्णन शैली जैसे हवाई उड़ाने भरती है और जीवन का बीता हुआ रूप, जो कि अवचेतना की जटिलता में खो गया था, आज चेतन मन के धरातल पर तैरता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार की स्थिति में जनेन्द्र की भाषा शैली अनेक सम्भावनाओं से परिपूर्ण लगती है। जिस प्रकार चेतन और अवचेतन एक-दूसरे से प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हैं उसी तरह पात्रों का अतीत, वर्तमान एवं भविष्य भी इस प्रकार के वर्णन में से झांकता हुआ प्रतीत होता है। इसे कालातीत स्थिति भी कह सकते हैं। एक दार्शनिक के नाते जनेन्द्र इस अमूर्त स्थिति को भी अपने शब्दों में मूर्तिमान कर

---

२२ कल्याणी पृ० १३६।

देते हैं यह दूसरी बात है कि इस प्रकार के वर्णनों में एक प्रकार की रहस्यमयी जटिलता भी आ गई है जो कि तत्कालीन युग प्रवृत्ति के अनुकूल कही जा सकती है।[22]

सुखदा

सुखदा में हम एक ऐसी नारी से परिचित होते हैं, जो कि अज्ञात रूप से क्रान्तिकारी जीवन के प्रति सम्मोहित है। इन क्रान्तिकारियों की कहानी के सम्मुख वह अपने पति को अपदार्थ समझती है—कहती है उसके पैर की धूल भी तुम हो? क्रान्तिकारियों के प्रति गौरव और पति के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा सुखदा के मन में इस कदर भरी हुई है कि वह एक दिन अपने हाथ की, सोने की चूड़िया, अंगूठी गले का लाकिट उतार कर जोर से फर्श पर फेंक देती है और अपने पति से कहती है—'लो, यह अपनी चीजें रखो। इन्हीं का तुम्हें डर है न?

पति कुछ देर चौंक हुए खड़े रह गए और फिर उन फैली हुई चीजों को उठा कर ताक में रख दिया। फिर अपने आप धरती पर बैठ गये। बोले, 'हां मैं डरपोक हूं। शायद तुम्हारे लायक नहीं हूं।

मुझे वे शब्द काट गये। तख्त पर से ही बोली 'जो लायक हो, उसे घर में क्यों नहीं लाते? मैं जानती हूँ वह कौन है।

पति का चेहरा राख जैसा सफेद हो आया। लेकिन मैंने कहा तुम्हारा जो कुछ है मुझसे ले लो। मुझे न जेवर चाहिये, न दुलार चाहिये और न कुछ चाहिये। उस वक्त न जाने मेरे मन में क्या हो रहा था। जी होता था कि जो ये कपड़े पहन रही हूं चीर चीर कर फेंक दूं। लेकिन बैठी रह गई। पति नीचा सिर किये बैठे थे।

समझ में नहीं आता कि मनुष्य में क्या क्या कुछ दबा रहता है। मुझे नहीं पता था कि जिसके लिये मेरे मन में से अगाध प्रेम का भाव समय-समय पर फूटा है, उसके लिये अपार घृणा भी मेरे मन के भीतर हो सकेगी। पर उस समय वहां तख्त पर बैठे बैठे जो हिंस्र भावनायें लपटें दे देकर भीतर सुलग आई, आज उनका विचार कर भी कांप जाती हूँ।[24]

। । प्रस्तुत पंक्तियों से एक बात स्पष्ट है कि सुखदा भी कल्याणी की तरह

---

२३ कल्याणी का रचना-काल सन् १९३९ है इस समय हिन्दी साहित्य में छायावाद रहस्यवाद अपने अंतिम सोपान पर था।

२४ सुखदा पृ० २० २१, द्वितीय संस्करण १९६१।

अवचेतन म जीती है और वही अवचेतना, पति के प्रति धिक्कार म उसके मन स फूटती है। रेखांकित वाक्यो म सुखदा की आत्म स्वीकृतियां स्पष्टत अंकित हैं। उसका प्रेम कब घृणा का रूप ले लेगा और उसका अनुराग कब हिंस्र भावनाओं की लपटों म परिणत हो जायेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। वस्तुत वह अतिवादी भावनाओं म जीने वाली नारी है जिसके लिये कभी भी कुछ भी कर सकना संभव है। अपने अतिवाद के कारण ही वह आज सैनीटोरियम म म पडी हुई जीवन के ताने-बाने बुन रही है।

एक और प्रसंग मे लाल का पत्र मिलने पर सुखदा की मन स्थिति देखिये 'नहीं जानती कि पत्र म क्या था। मीठी बातें नहीं थी कही तो वह्द उखडी भाषा थी। पर मेरे वह बहुत भीतर तक पहुच सका। जैसे पत्र नहीं वह व्यक्तित्व हो हो।'[२५]

सुखदा के मन म क्रान्तिकारी जीवन के प्रति जो ललक है उसी ने उसे लाल का सम्पर्क दिया है। इस लाल के प्रति वह अपने आप को समर्पित समझती है यही कारण है कि उसके पत्र म वह उसके व्यक्तित्व की ऊष्मा का सस्पर्श पाती है। लाल उस पारिवारिकता की परिधि स निकाल कर उन्मुक्त एव निर्बन्ध यौन जीवन की प्रेरणा देता है और सुखदा है कि लाल की बातो म अनजाने ही बही चली जाती है। उसका विवेक जम गया है और अवचेतन म जीने वाली सुखदा केवल मनोवेग के धरातल पर ही गतिमान है।

सुखदा की ललक की अन्तिम परिणति निम्न पक्तियो म दृष्टव्य है वह क्षण मुझे भूलता नहीं—जीवन और मृत्यु के बीच का क्षण। दोनों मानो एक होकर उस क्षण म पिघल आये थ। इस तरह बांध के स अपने सख्त पंजो म मरे कन्धो को कस मेरी आंखो को वह ऐसे देख रहे थे जैस नहीं बूझ पाते हो कि मैं हूँ कि क्या हूँ कि नहीं हू वह क्षण अनन्त होता चला गया। समय तब न था और वह पल त्रिकाल जितना अन्तिम था। देखते-देखते असह्य हिंसा स उन्होंने मुझे अपने मे जकड़कर दबोच लिया।

उस समय मैंने शारीरिक और आत्मिक दोनो किनारो स अनुभव किया कि मैं नहीं हुई जा रही हूँ। भरी जा रही हूँ निश्चय जीने स अधिक हुई जा रही हू।

कब मुझे अलग किया और छिटका कर दूर फेंक दिया मैं नहीं जानती। मैं सोफे म आ गिरी। वह कोच मे हो बठे कहा जाओ बच गई तुम।

वह हसे कैसी वह हसी थी।

---

२५ सुखदा पृ० ११३।

बोले 'इस बार बच गई आगे मौत मत बुलाना।

मैं उठकर आई और उनके पैरों में बैठकर बोली, मुझे मार दो मार दो।'[२५]

क्रान्तिकारियों के प्रति सुखदा का आकर्षण प्रणय में बदल गया है। लाल के प्रति वह अनुरक्त है। यह अनुरक्ति जब अपनी चरम परिणति को प्राप्त करती है तो सुखदा को एक विलक्षण परितृप्ति अनुभव होती है। चेतन मन में क्रान्ति और क्रान्तिकारियों के प्रति आकर्षण था लेकिन अवचेतन मन में यह भावना प्रसुप्त थी कि ये लोग बड़े निडर होते हैं मौत का इन्हें डर नहीं। क्रान्ति के लिये अपना सब कुछ अर्पण कर देंगे। ऐसे व्यक्तियों के प्रति सुखदा के मन में करुणा का सोता फूट पड़ता है और वह स्वयं उसमें भीग जाती है। लाल इस बात को जानता था इसीलिये उसने कहा तुम गलत समझती हो कि मैं मरने वाला हूं इसी से तो मुझमें आने से अपने को रोकना मुश्किल पाती हो। मेरा नहीं है जानता हूं वह मौत का आमन्त्रण है, उसका आकर्षण है।'[२६]

सुखदा अपने अवचेतन में अपने पति कान्त को घृणा करती है। उसका अपने सामने विनत हो जाना और उसकी आज्ञा का पालन न करना उसे हीनता के चिन्ह ही प्रकट होते हैं। इसलिये सुखदा को किसी ऐसे व्यक्ति की प्रतीक्षा है जो उससे प्रबल हो और मौके पर हिंस्र भी बन सके। वासना के प्रबल वेग में जब लाल ने उसे दबोच लिया तो सुखदा ने शारीरिक और आत्मिक दोनों किनारों से अनुभव किया कि मैं नहीं हुई जा रही हूं। मरी जा रही हूं, निश्चय जीने से अधिक हुई जा रही हूं।'[२८] स्पष्ट ही यह सुखदा के जीवन की सार्थकता (फुलफिलमेंट) है इसीलिये वह लाल के पैरों में बैठकर बोली मुझे मार दो मार दो।[२९]

नारी को पुरुष की हिंसा में भी एक अजीब स्वाद अनुभव होता है—विशेषकर सुखदा जैसी नारी को जो कि अवचेतन में दमित वासना से पीड़ित है। रत्यन्त में उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति देखते ही बनती है। जब वह लाल के कहने पर उसके साथ दादा से मिलने जाती है तब का विवरण इस प्रकार है ? लगा जैसे जाने क्या ऊपर से उतर गया है सामने से हट गया है भीतर से खुल गया है। मानो मैं हल्की हो आई। जैसे मीठी धूप में लजाती खिलती इठलाती हल्की फुल्की बदली होऊं।[३०]

---

२६ सुखदा पृ० १७० ।
२७ वही, पृ० १७० ।
२८ सुखदा पृ० १७० ।
२९ वही पृ० १७० ।
३० वही पृ० १७१ ।

प्रस्तुत पंक्तियों में मदन रति के उपरान्त सुनन्दा के हृदय का चित्रण है। उसका भीतर में घुट जाना, हल्का हो जाना, सजाना, सँवारना—सब रचना के उल्लास के द्योतक हैं। उसका प्रत्येक रमित मानस नारी के सहज में सामान्य (नारीत्व) हो आया है। इस प्रकार यहाँ हम देखते हैं कि जैनेन्द्र की भाषा-शैली यह सूक्ष्म संकेतों के आधार पर चलती है—इतने सूक्ष्म संकेतों के आधार पर कि साधारण पाठक को उसके वस्तु सत्य का भान भी नहीं हो पाता, किन्तु प्रबुद्ध पाठक उन्हीं सूक्ष्म संकेतों से एक काल्पनिक चित्र गढ़ लेता है, और उसके लिए ये शब्द व्यंजकता, संकेतात्मकता और प्रतीकात्मकता शैली-वैशिष्ट्य के समुचित उदाहरण बन जाते हैं।

विवर्त

'परख' में सबर कल्याणी में तीसरा व्यक्ति पृष्ठभूमि में रहा है, किन्तु 'विवर्त' में वह पति के साथ सहअस्तित्व प्राप्त कर लेता है। ऐसा ही प्रसंग नरेश और मोहिनी के बीच है … है। 'अरे क्या हुआ है तुम्हें?' मोहिनी ने हाथ की ट्रे को मेज पर रख देने के बाद कहा। 'देखो चाय आ गई।'

नरेश ने कहा—'भई, वह तुम्हारा क्या होता है? हो तुरीय लोक।'

'वहाँ पहुँचा हुआ था।' 'वहाँ से चाय तक गिरने में क्या कुछ भी समय नहीं देना चाहतीं?'

'ओहो! तो किसके साथ वहाँ घूम रहे थे?' मोहिनी तो यहाँ चाय की पातान भूमिका पर थी।

'एक कोई सम्मोहिनी थी, अब आँख खोलकर देखता हूँ कि वह भी तो मोहिनी ही थी।'

'आप तो कविता करने लगे। जनाब, एस कविस्ट्री कम कीजियेगा?'

'तुम्हारी सम्मोहिनी में कविस्ट्री जाता रहे तो यह घाटे की बात नहीं।

सुनो, हमारे रकीब साहब—अजी बिगड़िये नहीं, रकीब साहब अब तो भले लगते हैं न। चाय पर न आ सकेंगे?'

मोहिनी ने सुनकर पति की ओर देखा। पति ने कहा—'उन्हें बुलवा न लिया जाय क्या?'

'अभी तो—'

'अभी तो कहती थीं, खास अच्छे हैं। भई, जाओ देखो।'

'तो कहू किसी को भी बुला लाये।'

'कहोगी क्या, जाके साथ में क्या नहीं आता?'

मोहिनी ने घण्टी बजाई।

नरेश ने कहा—'क्यो यह क्या ?'

मोहिनी गम्भीर रही, बोली नही और आदमी के आने पर उसने कहा—देखो, मेहमान के कमरे में जाकर कहो कि साहब चाय पर हैं और आपको याद करते हैं। आयें तो उन्हें यहां ले आओ।' आदमी के जाने पर नरेश ने कहा—'मोहिनी।'

मोहिनी के भौंह के बल कम नही हुए और अपने हाथों तयार होते हुए प्यालों से निगाह उसने ऊपर नही उठाई।

नरेश ने कहा—'तीसरा प्याला ?'

मोहिनी ने उसे सुना नही।

मोहिनी। सुन रही हो क्या ?'

मोहिनी ने कहा—हो जायेगा।

नरेश ने आगे कुछ नही कहा।[31]

प्रस्तुत प्रसंग में दाम्पत्य वार्ता की चुहल है जिसे तुरीय लोक कहा गया है वह वास्तव में अवचेतन लोक है। नरेश खुला व्यक्ति है विलायत में पढ़ा है अनेक युवतियों के ससर्ग में आया है इसलिये मोहिनी के संसर्गों के प्रति आशंकित नही है। वह पहले रकीब साहब कहकर-फिर रकीब साहब कहता है, क्योंकि मोहिनी के तेवर उसने देख लिये हैं। वह बड़े खुलेपन से उसे चाय पर बुलाना चाहता है और मोहिनी से निर्देश करता है कि वह स्वय जाकर उसे साथ ले आये किंतु मोहिनी घंटी बजाकर नौकर के द्वारा उसे बुला भेजती है। मोहिनी का स्वय न जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि उसके दिल में अपराध भावना है। आयें तो उन्हें ले आओ, इस वाक्य में ध्वनि यह है कि मेहमान पर जबरदस्ती नही करनी है न ही किसी प्रकार का जोर डालना है यदि वे स्वयमेव आना चाहें तो आ सकते हैं। इसका मतलब यह भी है कि वह पति के सम्मुख जितेन को नही बुलाया चाहती। उसे अपनी ग्रन्थि के खुल जाने का डर है। मोहिनी के भौंहों के बल कम न होना और अपने हाथों तयार होते हुए प्याला से निगाह न उठाना इसी बात के द्योतक है कि उसकी चोरी पकड़ी गई है और वह पति से आखें चार नही कर पा रही। नरेश जब तीसरे प्याले की आवश्यकता जतलाता है तो मोहिनी उसे अनसुना करती है। अपने प्रश्न का फिर दोहराये जाने पर वह हो जायेगा कहकर उसे टालना चाहती है। उसे मालूम है कि जितेन यहां नही आयेगा, इसलिये वह तीसरे प्याले को अनावश्यक समझती है और पति की बात को वह आई-गई कर देती है।

---

३१ विवर्त, पृ० ७० ७१ दूसरा संस्करण १९५७।

नरेश और मोहिनी की बातचीत में चेतन और अवचेतन की धूपछाहीं आँख मिचौनी है। उन दोनों के आचरण और उद्गारों में यहाँ तक कि शब्दों के उच्चारण में भी एक बड़ा बारीक खेल है जिसे प्रयत्नपूर्वक ही पकड़ा जा सकता है। यदि हम इसका विश्लेषण करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि मोहिनी अपने दाम्पत्य-जीवन की परिधि में तीसरे व्यक्ति का प्रकट रूप में प्रवेश नहीं देना चाहती पिछले द्वार से यदि वह आ जाये तो उसे एतराज नहीं वल्कि वह उसका स्वागत करेगी क्योंकि उसका अतीत जीवन इस तीसरे व्यक्ति से हिला मिला हुआ है। चेतन में जिसको स्वीकार नहीं करना चाहती वही अवचेतन में चेतन को ठेनकर अपना मार्ग स्वयं बना लेता है। ऐसी मनःस्थिति की प्रक्रिया में उपन्यासकार की भाषा उस कुशल गृहिणी के समान हो जाती है जो कि बड़ी बारीकी से चटाई पर भावों की बड़ियाँ घुमाती जाती है। उपन्यासकार ऐसी स्थिति में एक बारीक चिमटी से काम लेता है और नब्ज़ का आवश्यकतानुसार बड़ी स्वेच्छाचारिता की त्वरा में प्रयुक्त करता है। यही कारण है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों की पकड़ में उसे कोई कठिनाई नहीं होती वह एक कुशल चित्रकार की तरह अपनी तूलिका से ऐसी आड़ी तिरछी रेखायें अंकित करता है और उनमें इस तरह रंग भर देता है कि धूप की जगह धूप ही लगे और छाया की जगह छाया ही की प्रतीति हो। उनकी शैली में सर्वत्र भावों की चाँदनी अवचेतन में पत्तों पर जैसे फिसल फिसल पड़ती हो।

विवर्त के अन्त में जितेन और तिन्नी का प्रसंग विस्तार से आया है। यहाँ उसकी बहक में उसके अवचेतन का उन्मोचन देखा जा सकता है

तिन्नी क्या कहे? वह बहक को सुनती रही।

बहक ही थी। जितेन ने तिन्नी की तरफ देखकर कहा—सोना पीला होता है पर कभी अच्छा भी लगता है। भाँति भाँति के आकार भाँति भाँति के प्रकार। पर भारी बहुत होता है। खिलौने हों तो अच्छे पर खेला न जाए उनसे इतने भारी हों? और ये पत्थर हाँ पत्थर पर हीरा पन्ना मानिक लगते सुन्दर हैं। क्या तिन्नी नहीं लगते सुन्दर? मैंने कहा मैं सुन्दर बना ऊँगा दानता है वहाँ सुन्दरता लाऊँगा क्या तिन्नी सुन्दरता नहीं चाहती? तिन्नी उठी।

जितेन बोला—क्यों उठी क्या?

दाल जल न जाए।

आज के दिन जलने दो उसे सब जलने दो। और तुम सुनो।

पर तिन्नी ने नहीं सुना। कारण वह दाल के या किसी के जलने से सहमत न थी।

जितेन ने उसके जाने पर हाथ की अगुलियो से अपनी दोना कनपटिया का कमबर दबाया। दाई ओर अगूठे और बाइ ओर चारो अगुलियो के कसाव के नीचे सिमटा हुआ उसका माथा दुखने लगा था। वह चुपचाप उसी तरह कुहनी को मेजपर टेके, हाथ मे माथा झुकाए, देर तक बठा रह गया। क्या यही उसका भाग्य है ? अपने भीतर की एठन को शब्दो मे लाकर कही भी तो वह दे नही सकता बहा नही सकता। वह अलग है सबसे छिटका हुआ सबसे दूर। कभी होता है कि इस दीन हीन तिन्नी के चरण पकड कर बिछ जाए और अपने को रीता कर दे। पर हाय तिन्नी भी इतनी दूर, इतनी ऊची हो आती है कि—।"[32]

जितेन के मन म शान्ति, एक कतव्य के रूप मे सदव तरती रहती है। सुदरता को न कभी उसने समझा न जाना। आज मोहिनी के गहनो ने उसे अलकारा के बारे म सोचने का अवसर दिया है। शान्ति उसके जीवन का श्रेय रही है, किन्तु सुदरता और उसको उजागर करने वाले गहने, आज तिन्नी के सदभ म उसके लिए प्रय हो रहे हैं। उसके अवचेतन में सुदरता की आराधना का विचार है, किन्तु वह जब यह कहता है कि दीनता है वहा सुदरता लाऊगा, तो फिर उसका कतव्य उसके प्रेम म से झाकने लगता है। वह सुदरता के विचारो मे इतना लीन है कि उसे दाल जल जाने की आशका मे तिन्नी का उठ जाना अच्छा नही लगता। वह आग्रहपूवक उससे कहता है आज के दिन जलने दो उसे सब जलने दो। और तुम सुनो' —इस वाक्य म जितेन का अवचेतन मुखर है। उसकी यह भावना पत की रोमानी कविता स मिलती जुलती सी है

आज रहने दो यह गृह काज
प्राण ! रहने दो यह गृह काज।
आज जाने कसी वाताम।
छोडती सौरभ श्लथ उच्छ्वास
प्रिये लालस-सालस वातास,
जगा रोओ म सौ अभिलाष !'[33]

उद्धरण के अन्तिम अनुच्छेद म जितेन की कनपटिया का विवरण देकर उसके शारीरिक तनाव को स्पष्ट किया गया है। ऐसी मन स्थिति म वह विरक्त और एकाकी अपने आपको अनुभव करता है। तिन्नी के चरण पकडकर बिछ

३२ विवत पृ० १६० ६१।
३३ गृह-काज पल्लविनी, प्रथम सस्करण, प० १६४।

जाना और अपने को रीता कर देने की भावना में उसकी दमित अवचेतना के रूप को हम अत्यंत प्रखर रूप में देख सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नारी पुरुष की नियति है चाहे वह क्रांतिकारी हो, या सामान्य मनुष्य। नारी के सान्निध्य में पुरुष का अवचेतन अपने आपको प्रकट करने के लिए विवश हो जाता है। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार की भाषा शैली सभी तनावों को—चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक—पूर्ण वाणी देने में सक्षम है। जैनेन्द्र की विशेषता यही है कि वे सभी मानसिक स्थितियों में अपने आपको 'फिट' कर लेते हैं और उसी के अनुरूप उनकी शैली भी ढल जाती है।

व्यतीत

व्यतीत एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो कि ४५ वर्ष की अवस्था में यह अनुभव करने लगा है कि मैं व्यतीत हूँ। ऐसे व्यक्ति के मन में चेतन और अवचेतन की प्रतिच्छाया ढूँढ़ निकालना बड़ा सरल है

चन्द्रकला को देखा है। जीवन वहाँ ज्वार पर है। ठाठ पर ठाठ देकर लहरें आती हैं और उस पर फेन सा बखेर जाती हैं। बड़ी कमनीय है। यह भी देखता हूँ कि सहसा वह शान्त है। उसकी प्रकृति के लिए यह काफी सूचक है। शायद नीचे भयंकर कुछ हो। पाल उठाए शीतली बहती चली आई है ठोकर कहीं नहीं खाई। अनुभव कर सकता हूँ कि कुमार किस कठिनाई में है। कभी की आशंका को भी समझ सकता हूँ। इस अनम्य वेग का सामना देखकर कभी अपने अस्त की कल्पना से सिहर आए इसमें कुछ अनहोना नहीं है। कुमार के साथ मुझे सहानुभूति है। विवाह को तीन ही वर्ष हुए हैं और अपने एक नन्हे से मुन्ने को घर पर दादी के पास छोड़कर बड़े चाव से दम्पति विलायत की यात्रा के लिए निकले हैं। वहाँ काम करेंगे और निडर होकर एक-दूसरे के लिए रहेंगे। पर चन्द्री का विघ्न आ पड़ा है। मुश्किल तो यह है कि हठात् नहीं आया है बहुत कुछ कुमार की ओर से निमन्त्रित होकर आया है। विघ्न बहुत मनोहारी है अपनी विघ्नता तक से अनजान है उसी से और भी अनिषेध्य है। संकट समझता हूँ लेकिन ।

अनिता ने कहा साथ ले क्यों नहीं जाते उसे? अपने खर्च से जाती है। शायद वहाँ अलग इन्तजाम के लिए राजी हो जाए। तुम्हें संकोच हो तो मैं कहकर देखूँ?

बोली सब समझकर यही तुम कहते हो जयन्त? वहाँ जाकर मन समझ रहा क्या न मर जाऊँ?[38]

३८ व्यतीत पृ० ५५-५६।

इन पंक्तियो म कुमार, उदिता और चन्द्रकला का प्रसग है । उदिता के चेतन और अवचेतन म कोई अन्तर नही है वह पूरे जोर से चन्द्रकला का उनके साथ विलायत जाने का विरोध करती है । कुमार प्रकट म तो विरोध ही करता है किन्तु उसकी अवचेतना मे यही भाव मनमनाता रहता है कि चन्द्रकला उनके साथ विलायत चले । उदिता इस प्रवृति को अपने दाम्पत्य जीवन के लिए अभिशाप समझती है इसी प्रसग मे जब जयन्त उदिता को समझाने की चेष्टा करता है तो उदिता दो टूक बात कहती है ? 'वहा जाकर मरू इसस यही क्यो न मर जाऊ ?" इस वाक्य स उदिता का चन्द्रकला के प्रति आशका भाव पूर्णत पुष्ट हो जाता है और वह जयन्त की बात मानने से इन्कार करती है । इससे यही सिद्ध होता है कि उदिता के अवचतन मे चन्द्रकला के प्रति एक गहरी ईर्ष्या का भाव है जिसके कारण वह उसके सम्पर्क को किसी भी रूप म स्वीकार करने के लिए तयार नही होती ।

व्यतीत' से ही एक प्रसग और ल ।

परो पर शॉल डालकर जरा पलग के सिरहाने झुकते हुए कहा जयन्त क्या बात है ?

कुछ तो नही, अनीता ।'

बहुत कविताए लिखी हैं ?

लिखी तो है कुछ पर अनीता चन्द्री अम्मा सोना चाहती है ।'

तुमने जयन्त ब्याह क्यो किया अब किया है तो

गलती नही सुधर सकती है ? चाहो तभी सुधर सकती है । चाहते हो ?

'अनीता ।'

'अपने का जलाए बठ हो दूसरा को जलाने क्यो बठ गए जयन्त ?

मैं जानता नही था ।'

क्या नही जानते थ ?

कि मैं–मैं बफ था ।'

वफ पानी होता है जयन्त । तुम पानी नही होना चाहते नही चाहते तो मरो पर दूसरा को मारते क्या हो ?

अनीता ।—मैं पास सरक आया । हाथ बढाकर उसके बालो म अगुलिया फेरने लगा । उसने वजन नहीं किया । वह हिला भी नही । कुछ देर वेभान-सी ज्यो-की-त्यो अधलेटी सी बठी रही ।"[३५]

उपयुक्त उद्धरण म जयन्त और अनीता का बातचीत उनकी मन स्थिति का

---

३५ व्यतीत पृ० २१ २२ ।

स्पष्ट प्रतिबिम्ब कही जा सकती है। जयन्त के मन में चन्द्री के प्रति उदासीनता है। उसका मन जो कि अवचेतन से परिचालित है, अनीता के व्यक्तित्व पर मँडरा रहा है। वह उसका साथ ही नहीं चाहता बल्कि उसके बालों में अंगुलियाँ भी फेरता है। इससे उसके मन को विलक्षण तृप्ति अनुभव होती है। चन्द्री अपने चेतन मन में इन सब बातों को जानती है। उसमें नारीजनोचित ईर्ष्या से ऊपर उठने की क्षमता है। वह अपने को काम धाम में लगाकर जयन्त और अनीता को मिलने का अवसर दिया चाहती है। उधर अनीता यह समझती है कि जयन्त ने उसकी भावनाओं को तो जगाया ही है पर उसे क्या अधिकार है कि वह चन्द्री की भावनाओं को भी निरन्तर जलाता रहे। अनीता प्रकट मन में इस बात को स्वीकार अवश्य करती है पर उसके अन्तर्मन अवचेतन में इस स्थिति में गहरी तृप्ति का भाव भी है। प्रधान रूप से वह चन्द्री पर अपनी महत्ता को—अपनी गरिमा को प्रकट करना चाहती है। वह विजयिनी है और चन्द्री पराजिता है। चन्द्री का साहस अहम् इस स्थिति में पुरस्कार पा सकता था किन्तु उसकी उदाराशयता की दाद ही कैसी होगी। वह विवाहित होने पर भी जयन्त के प्रति अपना अधिकार नहीं जतलाती। जिस प्रकार विवर्त में नरेश भुवनमोहिनी के साथ तीसरे व्यक्ति जितेन का सहअस्तित्व स्वीकृत करता है उसी प्रकार चन्द्री भी तीसरे व्यक्ति—अनीता का सहअस्तित्व स्वीकार करती है। यहाँ लेखक की दृष्टियाँ साफ हैं—उसने अपनी इस मान्यता को अनेकाधिक बार भिन्न भिन्न परिस्थितियों में दोहराया है। उधर जयन्त अपने मन को यह बतलाता है किन्तु अनीता उसे याद दिलाती है कि वह पानी भी हो सकता है। वह जैसे चेतन का प्रतीक हो और पानी जैसे अवचेतन का। उद्धरण के अन्तिम दो वाक्य उन्मीलनकारी (रिवीलिंग) हैं। अनीता के बालों में अंगुलियाँ फेरने पर जब वह जयन्त का वर्जन नहीं करती तो इसमें एक प्रकार का स्वीकार ही है। उसका बेभान होना इस बात का परिचायक है कि वह इस स्थिति से गहरी परितृप्ति अनुभव करती है या इस स्थिति में एक प्रकार की अभिनयात्मकता भी है। इस मनःस्थिति का यदि विश्लेषण करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि अनीता के चेतन मन में इस ऐन्द्रीयता के लिए एक प्रकार का निषेध है पर चूँकि चेतन पर अवचेतन हावी हो गया है इसलिए वह बेभान-सी *ज्यों की त्यों अधलेटी-सी पड़ी रहती है।*

व्यतीत में चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति का उपयुक्त उदाहरण एवं सुन्दर निदर्शन कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में लेखक द्वारा नियोजित बातचीत बड़ी सूक्ष्म एवं भाव प्रवण हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अवचेतन में प्रसुप्त मनोवेग एक के बाद एक अंगड़ाइयाँ लेते हुए उठ

रह हा। हृदय के सक्षिप्त उद्गारा म लेखक बहुत कुछ अनकहा छोड देता है, इससे पाठक की कल्पना को एक भावोत्तेजना मिलती है और वह अधूरे चित्र को पूरा करने म सृजनात्मक आनन्दानुभूति म लवलीन हो जाता है। ऐसी स्थिति म मौन ही वाचाल हो जाता है, और यह मुखरित मनोवेग पारदर्शी भाषा-शली का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

व्यतीत मे नर नारी सम्बन्धो के अनेक चेतन, अवचेतन प्रसग भरे पडे हैं। उसका अतिम निष्कप है जयन्त का सन्यासी होना, चन्द्री का कुमार के पास चला जाना और अनिता का विफल होकर पुरी के पास लौट जाना। ये निष्कप इस बात के द्योतक हैं कि मानव की नियति अन्तत चेतन से ही हाथ बनती सवरती है अवचेतन मन की स्थिति म अधिक टिका नही जा सकता, यद्यपि वह बडा प्रबल होना है, और मन का मथ कर रख देता है।

जयवधन

जयवधन म उपन्यास का कथाकार राजनीति प्रधान हो गया है। व्यष्टि से हटकर समष्टि की ओर उपन्यासकार उन्मुख हो गया है किन्तु उसकी मूल चेतना व्यक्तिपरक समस्याओ की ओर ही है, यद्यपि ताम झाम सामाजिकता और राष्ट्रीयता का भी है। अपने कथन की पुष्टि मे मैं आचाय के विलवर के प्रति कहे गय निम्न उद्गारा को प्रस्तुत करता हूँ क्या यह चाहते हो कि मैं बाहर जाऊ और विद्रोह का झण्डा ऊचा करू ? लेकिन वह असम्भव है। जय वधन हा भूला है। वह प्रपच मे पड गया है। सीखा था कि भौतिक माया है, आत्मिक ही है सो है। राज पर पहुच कर जयवधन यह भुला बठा दीखता है। यह चर्खा देखते हा पर वह कातना भूल गया। सुनता हूँ चर्खा कातने की बात पर वह अब हस भी लेता है। अर्को म वह रहने लगा है। इसलिये परिणाम म उसे मोह उपजा है। बहुत और बडा और शानदार उसे चाहिये। यह मोह उस पर सवार है और नकेल बाधकर उसे खीचे लिये जा रहा है। यह महत और बहुत और तुरत की चाह मूल रोग है। इस वेग की वासना मे स वह आसुरिकता उपजी, जिस हमने सभ्यता कहा। आशा थी कि उस चगुल से जगत छूट रहा है। जयवधन से मुझे और सबको इसी दिशा म आशायें थी।

पर होगा वह जो ईश्वर को मजूर होगा शायद आगे म अभी समय है। माया म जो हम भूलते हैं तो वह माया भी तो ईश्वर की आज्ञा से ही मोह जाल लेकर आती है। इसी से यहा बठा मैं प्राथना करने और चर्खा कात लने के सिवाय और कुछ कम अपने लिये नहा देखता हू।[36]

---

३६ जयवधन पृ० ३५ ३६ द्वितीय सस्करण, १९६५।

रेखांकित वाक्यों पर गौर करिये। ये जैनेन्द्र के शैली वशिष्ट्य के स्पष्ट उदाहरण हैं। इनकी वाक्य रचना, शब्द चयन, पद विन्यास और विराम चिह्न सब पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप है। आचार्य के चेतन मन की अभिव्यक्ति में उनकी स्थितप्रज्ञता मात्र रही है। उन्होंने अपनी दृष्टि में यहाँ जयवर्धन का मूल्यांकन किया है और अपने साथ उसके मतभेद की चर्चा की है। यह वास्तव में दो व्यक्तियों—दो जीवन प्रणालियों का अन्तर है। आचार्य की दृष्टि मूल ग्राही है उसमें विश्लेषण का चमत्कार और चिन्तन का ओज—दोनों ही हैं। अन्त में उनके उद्गारों में एक प्रकार की आध्यात्मिक नियतिवादिता प्रकट होती है।

भाव संश्लिष्टता की दृष्टि से लिज़ा के निम्न उद्गार बड़े महत्वपूर्ण हैं वह भरी थी और अस्थिर बोली अभी खास तो नहीं। लेकिन आप कल्पना कर सकते हैं? कोई कल्पना कर सकता है? मेरे साथ तनिक एकान्त पाया तो बोले, श्रीमती क्या मैं एक निवेदन कर सकता हूँ? मैं डर गई। चेहरे पर उनके ऐसी विनम्रता थी मानो आकाशा बोले क्या मैं कुछ सहायता आपसे माँग सकता हूँ? पास कोई न था। नाथ दूर थे मुझे भ्रम हुआ कि क्या मुझे ही कहा जा रहा है? धीमी-सी बोली ऐसा मेरा परम भाग्य। बोले नाथ असहमत तो न होंगे? मुझे आश्चर्य हुआ और हर्ष। कहा नाथ—वह मेरी पूर्ति में बाधक न हो सकेंगे। आप कहिए। बोले आप यूरोप जा सकेंगी रह सकेंगी? मेरी विशेष प्रतिनिधि? दंग रह गई। सहसा कानों पर विश्वास न हुआ। क्या यह सम्भव है? भाव विभोरता में मुझसे कुछ उत्तर न बना। बस उस आदमी को देखती रह गई एक हल्की-सी रेख मुस्कराहट उनके चेहरे पर थी क्या मैं मुग्धा बन आई थी सुना वह कह रहे हैं मैं आपमें भूल नहीं कर सकता। आइए, निश्चय हो जाए। शायद मि० नाथ मेरी पीठ पर कहीं आसपास होंगे या उस ओर आ निकले होंगे कि आगे बढ़ कर जय ने उन्हें लिया, कहा मि० नाथ आइए। आप हितैषी हैं और मुझे चिर कृतज्ञ कर सकते हैं। श्रीमती नाथ राज्य के हित में उपयोगी हों इसमें आपकी अनुमति का प्रार्थी हूँ। उन्हें तो आपत्ति नहीं है—श्रीमती मैं गलत तो नहीं हूँ? यूरोप में हमें एक निजी प्रतिनिधि चाहिए। आपकी अनुमति यदि हो नाथ इस आकस्मिकता का क्या समझते। वह और भी चकित हुए पर अधूरा छोड़ तो जय कम? उन्होंने बढ़कर नाथ के हाथ को अपने हाथ में थामा कहा मैं आप दोनों बंधुओं का कृतज्ञ हूँ। अतिशय कृतज्ञ फिर मुड़कर मेरा हाथ झकझोरा और मानो निश्चित और असंलग्न एक ओर बढ़ गए जैसे इन दो वाक्यों में सब सम्पूर्ण हो गया थी हूस्टन आपके जय विस्मय

पुरुष यह दूसरे पहर की बात है जब एक बडे डेप्यूटेशन मे हम वहा थे अब बताइए, इसकी प्रसन्नता मैं अपने में सभाल सकती थी ? नाथ जाने क्यों प्रसन्न नही है ? पर नही, वह प्रसन्न हैं आप ही सोचिए कैसे हो सकता था कि इस पर वह भाज न हो। अकेले लेती, तो क्या इस समाचार के आश्चय से मैं मर जाती। अब आप, हाथ जोडती हूँ, मग्न दीजिए। क्योकि इससे बडा पद मेरे जीवन म नही आया।

उसकी वात बिखरी थी, उल्लास उसे संयत न रहने दे रहा था। क्या समस्त उल्लास पद-लाभ का ही था ? इतना सर्वांगीण इतना घनिष्ठ ?

जो हो, मुझे स्वय इस सूचना पर विस्मय है। निश्चय ही जय प्रतक्य है। कितना बडा खतरा लेना है यह कि लिजा जसी नारी को यूरोप सबधी भारतीय कूटनीति के स्रोत पर रखा जाए और नाथ ?[37]

लिजा पश्चिमी नारी की प्रतीक है उसका अपना व्यक्तित्व है अपनी आकाक्षायें हैं। पति तो उसकी इन आकाक्षाओ की सम्पूर्ति का साधनमात्र है। प्रस्तुत पक्तियो म लिजा के व्यक्तित्व की रेखायें इसी रूप मे उरेही गई हैं। जय ने लिजा की महत्वाकाक्षा को छू भर दिया है और लिजा है कि भीन आवपक परिधान म होटल के व" आमोद भवन म चहक रही है। लिजा, इस अपने व्यक्तित्व की विजय, अपन सौन्दय का समादर समझती है कि उसे यूरोप मे जय की विशेष प्रतिनिधि के रूप म नियोजित किया जा रहा है। जय के मन म एक योजना है और उसी योजना म वह नाथ-दम्पति को साधन बनाया चाहता है। प्रस्तुत सन्दभ म लिजा के अवचेतन के परत पर-परत खुलते जा रहे हैं और वह अपने सही रूप म पाठक के सामने आती है। बड हल्के-से उपन्यास कार ने विवरण क अन्त मे, एक प्रश्न के साथ पाठक को चौंका दिया है 'क्या वह समस्त उल्लास पद-लाभ का ही था ? इतना सर्वांगीण इतना घनिष्ठ ? इन दो प्रश्नो स पाठक की चेतना झकृत हो आती है और वह मुग्धा लिजा की मानसिक प्रतिक्रिया को अपने सही परिप्रेक्ष्य म समझने लगता है। लिजा इस नियुक्ति म, अपन प्रति जय की आसक्ति को भी अनुभव करती है यद्यपि नाथ इस आकस्मिकता से उतना प्रसन्न नहीं है।

ऐसे स्थलों मे उपन्यासकार हाव भावों का चित्रण बडो बारीकी से करता है। उसके रग चटकीले होते हैं और वह मन की चेतन अवचेतन स्थितियों को भर देता है। पाठक की भावोत्तेजना के लिए वह पर्याप्त उपकरण जुटाता है। लिजा की बातचीत का लहजा, उसका कटाक्ष, उसके परिधान, सब मिल

---

३७ जयवधन प० १७१ ७२ द्वितीय सस्करण।

कर एक थहकती हुई, हुलसती हुई युवती का रूप स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार के विवरणों में एक प्रकार की गतिशीलता रहती है, किन्तु उपन्यासकार का मूलग्राही दृष्टिकोण ऐसी स्थितियों को उपलक्षमात्र ही बनाता है, वह इनमें न स्वयं भटकता है और न पाठक को भटकने देता है।

उपन्यासकार के मन में था कि विन्दर हूस्टन ने कुछ वार्तालापों के आधार पर इला और लिजा की बातचीत में कुछ कल्पना चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं चित्रों में इला का एक विस्तृत संभाषण भी आता है जिसमें वह अपने और जय के संबंध का एक स्पष्टीकरण देती है चुप रह सकती हूं। पर क्या तुम जय को प्रेम करती हो? नहीं भी तो सराहना तो करती ही हो। फिर लिजा क्या तुम ही उनकी साधना में बाधा बनना चाहोगी जो सोचती हो वह बिलकुल नहीं है इस उत्तर में कोई प्रतिक्रिया नहीं है किंचित् भी पराजय या निराशा नहीं है। कोई भी आहत अभिमान का भाव नहीं है कहती हूं तुमसे कि तुम यह मान लो इस राज में अब उन्हें पूर्ति नहीं दीखती है राज की समूची धारणा ही अब अपने लिए उन्हें असंगत और मिथ्या लगती है और मैं नहीं [illegible] उसमें निमित्त। मानो लिजा मैं नहीं हूं। मैंने कभी उन्हें अपनी ओर नहीं मोड़ना चाहा है। साथ और सम्मुख इसलिए रही हूं कि अभाव के कारण कहीं हठात् मेरी ओर उन्मुख न बनें। तुमसे सच कहती हूं मानती हूं स्त्री इसलिए नहीं है कि पुरुष को अपनी ओर ले। उसकी कृतार्थता इसी में है कि वह पुरुष का आगे और उत्तरोत्तर करे। वह पीछे रहने को है इसलिए कि पुरुष किसी भांति पीछे न हो पाय इसलिए लिजा नाराज होकर न जाओ। प्रेम का आधिपत्य नहीं होता है। मैं मान लो कि मेरा आधिपत्य है या होगा जय तुम्हारे इतने ही हैं लेकिन क्या यह प्रेम है लिजा जो आरोप लाता है?

सुनो राज पर होकर जय विहग से मुक्त न रहेंगे प्राण उनमें उसी मुक्ति को छटपटाता है तुम लोग राज की बातों को लेकर क्या उन्हें बांधना चाहते हो! स्वार्थ हो तो भी समझ सकती हूं पर कैसा कोई स्वार्थ तो नहीं दीखता है क्या उनका यही कहना नहीं है कि आप सब लोग मिलकर राज्य संभाल लीजिए। आप लोगों का जो विरोध में है हित और स्वार्थ क्या इसी में नहीं है कि मिलें और शासन को हाथ में ले लें? इसकी सुविधा यदि जय करते हैं तो क्या बुरा करते हैं आपके लिए बुरा नहीं करते हैं तो मैं कहना चाहती हूं कि अपने लिए भी बुरा नहीं कर रहे हैं। क्योंकि यह उनके मन के गहरे की बात है और उसी में उन्हें परम तृप्ति है तुम नाथ की पत्नी हो उनके साथ विरोधी दल की नेत्री भी हो मान ना वह तुम इतना नहीं हो जितनी जय की प्रशंसिका हो तो अच्छा यही सही। लेकिन तब भी यह पहचान कर कि इसी में उन्हें परम

लाभ है, तुम क्या जबरदस्ती उसमें बाधक बनकर खड़ी होना चाहती हो यह तो मेरी किसी तरह समझ में नहीं आता है, लिजा मेरे साथ विवाह क्या यह किसी तरह तुम्हें स्पर्द्धा के भाव का कारण हो सकता है ? पर विवाह मेरे लिए स्वामित्व ता है नहीं, वह तो धर्म की एक सुविधा है। उससे प्यारी एनिजावथ तुम्हारे लिए क्यो विशेष अन्तर होना चाहिए ? मैं ता पहले भी साथ रहती थी।[३८]

प्रस्तुत प्रसग मे इला न अपने चेतन मन से नर-नारी-सबधी प्रेम और विवाह पर अपने विचार प्रकट किए हैं। कहीं-कहीं वह लिजा के अवचेतन को भी स्पष्ट करती है, जैसे कि उसके द्वारा लिजा को जय की प्रशंसिका बतलाना या उद्धरण के अन्त मे जय को लेकर लिजा की स्पर्द्धा भाव की ओर संकेत करना। इला की दृष्टि मे बिना विवाह के भी स्त्री-पुरुष साथ रह सकते हैं जैसे कि वह स्वय रही है। इला यह भी स्पष्ट करती है कि जय के प्रति उसका आकर्षण उसके राष्ट्रनायक होने के कारण नहीं है, वह तो केवल जय के मानवत्व और उसकी सम्भावनाओं को पूर्ण विकास देने के लिए उसके साथ है। इला की दृष्टि म नारी-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य यही है कि वह पुरुष को आगे बढ़ाए। यदि नारी पुरुष को आगे बढाने म सहायक नहीं होती है और उसे जगत-जाल म कद करने का एक साधनमात्र बनती है तो यह उसके जीवन की सबसे बड़ी विफलता है।

इस प्रकार की मनःस्थिति म उपन्यासकार अपनी भाषा शैली को इस प्रकार ढालता है कि वह उसके नए विचारो एव नए सबल सवाहक बन सके। लेखक ऐसे स्थलो की तलाश मे रहता है कि जहा वह किसी जीवन-सत्य का उद्घाटन कर सके या किसी मूल तत्व को पकड सके। कहीं-कहीं तो यह विवेचन इतना सघन और सकुल हो जाता है कि पाठक का धैर्य जवाब देने लगता है। नए वैचारिक क्षितिजों के उद्घाटन हेतु जैनेन्द्र अपने उपन्यासों को एक प्रबल माध्यम बनाया चाहते हैं। इसमें वे बहुत दूर तक सफल भी हुए हैं। अनुच्छेद के बीच में अनेक वाक्यों के बाद डाट के चिह्न का आना इस बात का द्योतक है कि लेखक अनावश्यक विस्तार से बचना चाहता है या यों भी कह सकते हैं कि ये डॉट के चिह्न पाठक की कल्पना को आन्दोलित एव उत्तेजित करने के शक्तिशाली प्रतीक हैं। लेखक पते की बात कहना चाहता है और मूलग्राही दृष्टिकोण के सधान मे उसकी वाणी म अनेक स्थानो म स्खलन आ जाता है। ये रिक्त भाग उसी मानसिक स्खलन के द्योतक हैं,

---

३८ जयवर्धन पृ० सं० ४१६ १७ १८।

जैसे लेखक कुछ विचार बिन्दु जुटा रहा है और पाठक को चाहिए कि वह रिक्त भावों को स्वयं ही भर दे। इस प्रकार के प्रयोगों की जैनेन्द्र में अति है। इसे दार्शनिकता का आडम्बर भी कहा जा सकता है किन्तु कहीं कहीं लेखक ऐसे मणिरत्नों को ढूंढ लाता है कि हम अवाक् विस्मित उसकी वर्णन शैली की दुहाई देते रह जाते हैं। प्राय यह भी देखा गया है कि इन भावों को अभिव्यक्त करने में लेखक काफी दूर तक चला जाता है और वह शब्दों एवं मुहावरों का अपने ही ढंग से प्रयोग करता है। शैली की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि वह प्रचलित से भिन्न हो। जयवर्धन में जैनेन्द्र एक सशक्त शैलीकार के रूप में अवतरित हुए हैं, उन्होंने पाश्चात्य शिष्टाचार का भी सफल निर्वाह किया है। उनका युग-बोध भी सर्वत्र अद्यतन रहा है, किन्तु उनका सन् २००० का कल्पना चित्र हमें उतना प्रभावित नहीं कर पाता। कारण कि ये सब विवरण वर्तमान संदर्भों के आधार पर लिखे हुए हैं। इनमें आगामी कल का अन्तर केवल मूल तत्वों के आधार पर ही मिलती है।

मुक्तिबोध

मुक्तिबोध समसामयिक राजनीति को लेकर लिखा गया है किन्तु राजनीति तो उपन्यासकार के लिये उपलक्ष मात्र है। वह तो मन की उधेड़-बुन का चितेरा है। सहाय अपने शयन-कक्ष में साढ़े दस बजे के करीब पत्नी की प्रतीक्षा में है किन्तु वह वीरेश्वर के संबंध में ठाकुर से विचार विमर्श में लीन है। ऐसी ही मन स्थिति में सहाय के अवचेतन का द्वार खुलता है मेरी ओर से कभी राजश्री पर विशेष ध्यान खर्च नहीं हुआ है न परिवार के दूसरे लोगों पर। लेकिन अब इस शयन-कक्ष के अकेले में साढ़े दस बजने पर अच्छा नहीं लगता है यह कि पति का पत्नी को इतना कम ध्यान है। किताब लेकर मैं बैठा रहा और इधर-उधर का जाने क्या-क्या सोचता रहा। मन में रह रहकर चुभन होती थी। सब तरफ खयाल जाता था पर चुभन का कांटा दूर नहीं होता था। ग्यारह हो गया साढ़े ग्यारह भी बीत गया। मैंने घड़ी को बार-बार देखा। अपनी ओर से राजश्री के अब तक न आने को तरह-तरह का समर्थन दिया। शायद है कि नीला के विचार ने अब तक उसको दूर रखा हो। स्वीकार करना चाहिये कि नीला के संबंध में यद्यपि मैंने प्रकट चोरी नहीं रखी है, पर वह संबंध सीधा है, पत्नी की मारफत नहीं है। मैं साफ-साफ समझ नहीं पाता हूं। पति पत्नी का संबंध केन्द्र है। वह ध्रुव है कि जिसके आधार पर परिवार की एकत्रता और समाज की मर्यादाशीलना खड़ी है। सही-गलत सब उसके सन्दर्भ से बनना चाहिये। लेकिन मैं नहीं जानता कि नीला को लेकर मुझमें

क्या होता है ? एक आत्मिक स्फूर्ति-सी मिलती है। राजश्री को लेकर वह नही हो पाता। वह विवाहित है मैं विवाहित हूं। इसी कारण उस सुख सौहार्द को क्या निषिद्ध बना देना होगा ?[३९]

प्रकट है कि यह सहाय का आत्म विश्लेषण है। जो अवचेतन म था उसे चेतना म लाकर स्वीकार किया गया है। अनुच्छेद के अत म धीमे से एक प्रश्न सरका दिया गया है जिसका भाव है कि 'पराया सुख' निषेध की चीज नही होना चाहिए जबकि उससे आत्मिक स्फूर्ति मिलती है।

पति पत्नी के बीच यह तनाव की स्थिति अधिक देर टिक न सकी और मान मनावन का अत इस प्रकार हुआ उस समय राजश्री जो वयस्क पुत्र-पुत्रियों की माता थी जाने कैसे षोडशी हो आई ! वह ऐसे मुस्कराई और छोटे छोटे कदमो स ऐसी अजब चाल से बिस्तर पर गई और मुझे देखती हुई ऐसे रजाई म दुबकी कि सब भुभम से काफूर हो गया। मैं पिघल कर हर तरफ स मोम हो आया।[४०]

इन पक्तियो म दाम्पत्य की मधुरिमा का यथाथ चित्रण है। बीच म जो मान मनावन की स्थिति आई थी उसस प्रेम और उमड आया। पत्नी की दृष्टि मे एक ऐसी जादू की छडी है जो सारे क्रोध और मानसिक तनाव को पल भर मे पिघला देती है। चेतन मन की लहरो का इन पक्तियो म अच्छा चित्र है।

एक अन्य अवसर पर सहाय और ठाकुर के बीच वीरेश्वर की बात उठती है। वीरेश्वर ठाकुर के साथ फाम पर काय कर रहा है किन्तु ठाकुर को लगता है कि इसस वीरेश्वर की महत्वाकांक्षा की पूर्ति न होगी। ठाकुर का विचार है कि यदि वीरेश्वर कुवर के साथ इण्डस्ट्री म लग जाय तो वहा उसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है। सहाय को यह सुभाव अच्छा नही लगता। वे इस पर यो कहते हैं 'हा वही मैं सोच रहा था कि कुवर के साथ इण्डस्ट्री म उसे लगाने की बात नही आनी चाहिए।'

क्या, उसका मन वहा खुले तो क्या हज है ? सच बात यह है सहाय कि तुम जहा हो वहा नीत की भाषा और नीत का बाना चल सकता है। वीरेश्वर का मन अगर नही चाहता है सेवक बनना तो सेवा की वार्ता को उस पर थोपने की जरूरत क्या है ? आदमी भरता है और फलता है तो आप ही झुक आता है। उससे पहले मन मे उठने बढ़ने की चाह रहती ही है और वीरेश्वर कोई औरों से अलग नहीं है। तुम हमेशा अपनी मिसाल देने लग जाते हो। मैं

३९ मुक्तिबोध, पृ० ५१ ५२।
४० मुक्तिबोध, पृ० ५३।

तो सोचता हूँ कुँवर के साथ होकर एक बार चल निकलेगा तो कहाँ नहीं जा सकता कि वह कहाँ तक पहुँचेगा।'[१]

सहाय वीरेश्वर पर अपनी बात आरोपित करना चाहता है। इसमें चेतन मन के आग्रह की व्यंजना है किन्तु आज के युग में आरोपण नहीं चल सकता। अब नई पीढ़ी का अपना व्यक्तित्व है अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं। वह दूसरे की नहीं सुनना चाहते अपने मन की करना चाहते हैं क्योंकि उनका अवचेतन स्वाधीन है और इस स्वाधीनता में भले ही कितना ही बिगाड़ क्या न हो वह किसी भी स्थिति में दूसरे का आरोपण नहीं सह सकते। ठाकुर जैसा अनपढ़ व्यावहारिक व्यक्ति इस तथ्य को जानता है पर गांधीवादी सहाय अपने किसी आग्रह की भाव में इस तथ्य को विस्मृत कर रहे हैं।

प्रस्तुत उद्धरण में हम भाषा की एक नई ताजगी पाते हैं। नीति 'नीत' हो गई है वीरेश्वर बीरेस्सर बन गया है। आदमी का भरना और फलना एक ऐसा देहाती मुहावरा है जो भाषा में नया आब और नई दीप्ति लाता है। रेखांकित वाक्य की व्यंजना बड़ी अर्थपूर्ण है। उड़ने बढ़ने की चाह और कोई औरों से मतलब नहीं है—इन मुहावरों में इस बात का प्रमाण निहित है कि हमारी देहाती बोली कितनी समर्थ एवं व्यंजनापूर्ण है। जिन बातों को शहरी लोग किताबों से सीख पाते हैं, उन बातों को देहाती लोग सीधे जीवन से ले लेते हैं। देहात की ताजगी एवं जीवन्तता ठाकुर की बोली से फूटी पड़ती है। हम परख की कट्टो, उसकी माँ और बिहारी की बातचीत याद हो आती है, जिसमें कि ऐसी ही रवानगी और ताजगी थी। यद्यपि जैनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि में इस प्रकार के पात्र और इस प्रकार की बोलियाँ कम ही हैं किन्तु उनका निराला अस्तित्व है।

'मुक्तिबोध' के अन्त में एक ओर कुँवर के चक्कर में फँसने की बात है और दूसरी ओर सहाय के मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने की सुरसराहट है। इन्हीं दोनों बातों की तीखी नोकों के बीच सहाय और नीलिमा की बात चल रही है। नीलिमा के उकसाने पर सहाय आत्म-स्वीकृति के रूप में कुछ ऐसी बातें कह जाते हैं जिनसे प्रेयस प्रेयसी के सम्बन्धों पर और उनकी सीमाओं पर एक नया प्रकाश पड़ता है। सहाय के अवचेतन मानस में जो कुछ है वह चेतना के स्तर पर आ जाता है और वे बड़े हो पते की बात कहते हैं "नीला इस बारे में मुझमें न कहो। जितने शब्द बाहर से आते हैं सब मुझमें प्रतिरोध पैदा करते हैं। इससे नहीं चाहता कि एक भी शब्द कर्तव्य धर्म के बारे में मुझ तक आये।

४१ मुक्तिबोध पृ० ७३।

वही मुझे सहज नहीं रहने देता और प्रतिरोध जगाता है। देखो नीला, कभी तुमने मुझे कुछ नहीं कहा है। जैसा हूँ स्वीकार किया है। यही बल है जो तुमसे मुझे मिला है। दूसरे सुधार चाह सकते हैं मुझमें संशोधन चाह सकते हैं, मुझे अच्छा देखना चाह सकते हैं।(१) पर प्रेम चाहता नहीं है, बस मान लेता है। मुझे खुद नहीं मालूम। मेरे बारे में जो होगा उसे क्या तुम वैसे ही स्वीकार नहीं कर सकोगी।(२) नीलिमा, तुम हो कि जहाँ पर मैं अपने पर कोई आवरण नहीं रख सकता और न आवरण ले सकता हूँ, न आदर्श का, न सिद्धान्त, न धर्म का। इसलिये मेरी निपट निजता में से मान दो जो आये। अच्छा-बुरा स्वार्थ निःस्वार्थ जो भी हो वही ठीक होगा। वही मुझे और तुम्हें मंजूर होना चाहिये। कुछ रख जिसमें न मेरा हो, न तुम्हारा हो बस एक ऐसी अनिवार्यता हो जिसमें मैं-तुम कुछ रह ही नहीं।

नीला सुनती रही। उसने फिर मेरे हाथ को अपनी हथेली में लिया और उठा कर धीमे से चूम लिया। कहा, मैं तुम्हारा अन्तःकरण चाहती थी। अब समझती हूँ वह झूठ था। प्रेम का भी यह वश नहीं है। सबके अन्तरंग में बस यह है जो एक है सब है और इसीलिये परम है और भाग्य है।'[४२]

प्रस्तुत पंक्तियों में सहाय अपनी निपट निजता में बोल रहे हैं। उन्होंने प्रेम की इयत्ता निर्धारित कर दी है। रेखांकित वाक्य-संख्या एक और दो इसके प्रमाण हैं। सच्चा प्रेम मैं-तुमसे ऊपर उठकर अनन्त की विराट सीमा में फैल जाता है। नीलिमा की आत्म-स्वीकृति भी ध्यातव्य है। वह प्रेम की सीमा के साथ-साथ अपनी सीमा भी समझ लेती है और अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य से में उसके द्वारा जो कहा गया है उसमें लेखक का अन्तरंग ही बोलता है। यही रचनाकार के चिन्तन का निष्कर्ष है। या नीलिमा जैसी जीवन्त पात्री के मुँह से ऐसी आध्यात्मिक दर्शन में लिपटी हुई बात, कुछ अटपटी-सी लगती है। प्रणय के अन्तर्लोक में, जहाँ अत्यन्त गुह्यता एवं गोपनीयता होती है, वहाँ लेखक की शब्दावली बड़ी सक्षम प्रमाणित हुई है। चेतन और अवचेतन की सीमाएं टूटकर एक हो जाती हैं और लेखक नितान्त अमूर्त भावों को भी शब्दों की सीमा में पकड़ लेता है। यदि हाथ को हथेली में लेने और फिर उसे धीमे से चूम लेने की बात न हो, तो यह सारा विवरण अमूर्त विभूति के अधर में लटका रहता है। इस एक बात ने ऐन्द्रियता के तत्व से समन्वित होकर सारे आध्यात्मिक चिन्तन को एक प्रकट भौतिक आधार दे दिया है। चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया में जैनेन्द्र की भाषा शैली निरन्तर परिष्कृत

---

४२ मुक्तिबोध, पृ० १४४-४५।

होती गई है और मुक्तिबोध में उसके प्रज्वल निखर रूप आ सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे चेतन और अवचेतन के हिमगिरि पर रचनाकार का प्रतिभा सूर्य एक नयी रीति के साथ उदित हो रहा है और उसने जड़ चेतन के मन में एक दिव्य आभा का सौन्दर्य भाव उन्मोचित कर दिया है। मुक्तिबोध की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य यही है।

अनन्तर

अनन्तर एक प्रकार से जनेन्द्रजी का संस्मरणात्मक अभिलेख है। इसमें उन्होंने अपने आस-पास के जीवन की अभिव्यक्ति दी है। प्रसाद के रूप में स्वयं जनेन्द्र ही मूर्त हो उठे हैं। प्रसाद और अपरा को माउण्ट आबू जाना है। वे वातानुकूलित कूपे में बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं

मैंने कहा— तुम्हें मालूम नहीं कि इस समय तुम मुझे कितनी कमनीय लग रही हो और निश्चय से कह सकता हूँ कि मेरे सबंध में तुम अपने को उतनी विवश नहीं हो —सुनते हुए बीच में ही अपरा उठी नाहक अलग रखी ट्रे को उसने फिर उठाया और जाकर दूर कोने में रखने चली गई। आई तो मैंने कहा लेकिन अपने से पार के सुन्दर और सत्य के सामने तो पर डरना ही होना है।

मैं माफी मांगती हूँ यू आर बोल्ड एण्ड ट्रू एज इनडीड ए मैन ऐलान कर दी। फिर मानो बात हटाने के लिये बोली सुनिये अपने आदित्य के बारे में आप क्या सोचते हैं?

आदित्य! तुम उसे कम जानती हो?

यूँ ही पूछा। इज ही वेरी वेरी रिच—एनी वे ही नेवर फार यू ए गुड डील।

मुझे अच्छा नहीं लगा पूछा तुम उसे जानती कम हो?

वह आनन्दजी के पास आये थे कहने कि बाबूजी अकेले न जायेंगे। साथ जरूर किसी को भेजना पड़ेगा। ए० सी० ट्रैवल के लिये उनकी ताकीद थी। मैं तब वहीं बैठी थी।

तो—?

आनन्दजी ने कह दिया अच्छा। बात एक तरह पूरी हुई। लेकिन आदित्य ने मेरी तरफ देखा। मुझसे पहले परिचय न था लेकिन कहा सुना है आपको भी माउण्ट आबू जाना है। मैंने कहा 'हाँ आनन्दजी के साथ मैं जा रही हूँ। बोले नहीं आप बाबूजी के साथ जायेंगी। आप न नहीं कह सकतीं। मैं निश्चिन्त रह सकूँगा और आपका मुझ पर अनुग्रह होगा। गुरुजी -बस यही तय रहा! आनन्दजी ने मुझसे पूछा और मैं चुप रह गई। आदित्य ने कहा

दुख है मैं रुक नहीं सकता। नहीं तो जैसे हो, आपको मना लेता आज ही जाना पड रहा है। मेरी अनुपस्थिति म देखिये आप मुझे डुबा नहीं डालगी। मैं चलू बहुत-बहुत आभार ही वाज प्रेटी क्लवर यूअर आदित्य ही वुड हैव हिज वे इनडीड'।"[43]

प्रस्तुत प्रसग म प्रसाद अपरा की कमनीयता की प्रशसा करते हैं तो वह कुछ लजा जाती है और अपनी झेंप मिटाने के लिये नाहक ही ट्रे को दूर कान म रख आती है। उसके अवचेतन मे जो सकोच का भाव था वही उसे ऐसा करने के लिये प्रेरित करता है। जब अपरा प्रसाद की निडरता और सचाई की सराहना करती है तो अचानक ही वह प्रसग बदल कर आदित्य के बारे म पूछने लग जाती है। दरअसल बात यह है कि ज्योंही उसने प्रसाद की 'बोल्डनेस' का जिक किया तो अचानक ही उसके अवचेतन म से आदित्य की बोल्डनैस उभर आई। प्रसगान्तर का यही कारण है। लग-हाथ वह यह भी पूछ बठती है कि क्या वह बहुत सम्पन्न है। जिस रूप में वह आपकी सुविधा की व्यवस्था करता है उसमे तो उसकी सम्पन्नता ही प्रकट होती है। अपरा के चेतन मन की इस टिप्पणी का आत सूत्र उसके अवचेतन मानस म है। वह वास्तव म आदित्य की सम्पन्नता एव सुघडता से प्रभावित हुई है। बिना परिचय के ही आदित्य, जिस रूप मे अपरा को आभारपूवक अपनी योजना म घसीट लेता है उसम उसकी बुद्धिमत्ता ही प्रकट होती है। सम्पन्नता सुघडता और फिर उसके ऊपर बुद्धिमत्ता हो तो सोने म सुहागे जसा काय करती है। अपरा के अवचेतन मन म आदित्य न एक लकीर खीच दी है। अनुच्छेद के अन्तिम भाग म उसने जिस तुरत फुरत के साथ अपनी योजना को लागू कर दिया, उसमे उसकी सम्पिन्नता एव प्रशासनिक योग्यता ही प्रकट होती है। 'अनुपस्थिति म डुबा नहीं डालेंगी' कहकर वह अपरा को आत्मीयता के बन्धन म भी बाध लेता है। आदित्य का तौर-तरीका निराला है उसे अपनी राह बनानी आती है वह अनिरुद्ध गति से अपने बनाये पथ पर दौड भी सकता है—यही सब गुण अपरा की अन्तश्चेतना म घर कर गय हैं।

चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया म जैनेन्द्र की भाषा शैली का यह बडा सटीक उदाहरण है। आधुनिकता के नाते इसम अग्रेजी अभिव्यक्ति का भी आश्रय लिया गया है। अग्रेजी शब्दो की तो भरमार है ही। भाव-परिवतन की स्थिति म जो आकस्मिकता आ जाती है वह भी सकारण है। चेतन मन की अभिव्यक्ति पर अवचेतन अनायास ही हावी हो जाता है। बोल चाल का

---

४३ अनन्तर पृ० ३७ ३८।

लहजा, अंग्रेजी के साथ-साथ उर्दू शब्दों से भी परहेज नहीं करता। एक प्रकार की नाटकीयता भी इसमें दृष्टिगत होते हैं। दृश्य को मूर्त करने की सजीव सामर्थ्य लेखक में है। अनुच्छेद के अन्त में आदित्य के व्यक्तित्व को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, उससे यही प्रतीत होता है कि लेखक काम की बात ही करना है और करवाता है। तार में जैसी संक्षिप्तता एवं संकेतात्मकता होती है, वैसी ही यहां है, या फोन पर जिस प्रकार दो-टूक शब्दावली का प्रयोग होता है, और कोई भी व्यय का प्रश्न (सुपरफ्लूअस मैटर) नहीं होता, उसी प्रकार आदित्य की शब्दावली को लेखक ने बड़े नपे तुले रूप में और बड़ी बारीकी के साथ प्रकट करवाई है। इससे उपन्यासकार की आधुनिक जीवन के प्रति सपृक्ति ही प्रकट होती है, और उसका लहजा बोलचाल का ही रहता है। सामाजिक भाषा-शैली जैनेन्द्र की निजी विशेषता है चाहे वह हिन्दी हो चाहे वह अंग्रेजी हो दोनों भाषाओं पर लेखक का समानाधिकार है।

अनन्तर में वसुधा दिल्ली के पास शान्तिधाम की स्थापना करना चाहती है उद्देश्य है गांधीजी के रचनात्मक कार्यों का मूर्त रूप प्रदान करना। स्वाभाविक ही है कि इसके लिए पैसा चाहिए। इसी प्रसंग में आदित्य की टोह जा रहा है। इन सबके बीच जो बातचीत हुई उसी का एक अंश देखिए—

आदित्य ने कहा क्या अब मैं जा सकता हूं गुरुजी?

जी नहीं, अभी नहीं जा सकते। अपरा ने कहा यह देखकर जाइए कि आपके सोचने रहने से कोई काम रुकने वाला नहीं है।

हू आर यू?'

मैं! जी, मैं इण्डस्ट्रियलिस्ट नहीं, इन्सान हूं। और अंग्रेज भी नहीं हूं।'

अब मैंने कहा 'अपरा तुम चुप रह सकती हो। मार्क्स अपने जमाने में हो कर गए और अपनी व्याख्या के लिए वे तुम पर भार नहीं डाल गए हैं। इन्सान तुममें खत्म नहीं हो जाता इण्डस्ट्रियलिस्ट में भी रह सकता है। तुम आसानी से साढ़े बारह हजार देना बोल गई यानी तुममें भी उस गर्व की गुंजाइश है।

गुरुजी बोले, छोड़ो प्रसाद! अपरा यह क्या चक्कर तुमने रच डाला है! आदित्य, तुम जान दो। पैसे की ऐसी कोई बात नहीं, वह तो आता-जाता रहता है।

आदित्य हठपूर्वक हँसा, हँसी वह कड़वी थी। बोला, 'अब तो अपराजिता जी हैं—मैं चलता हूं।'

अपरा ने कहा, ठहरिये। साढ़े बारह मैंने कहा है। लीजिए पच्चीस कहती हूं—पच्चीस हजार। वकीलजी इण्डस्ट्रियलिस्ट का इण्डस्ट्री के लिए छोड़िये। कह चुके हैं वे कि और वे नहीं जानते। मत जानने दीजिए उनको

वह सब है। अरमान है उमर है। बताया कि आदित्य हुकूमत करते हैं कोई उन पर नहीं करता। चारू तुम नहीं समझती उनका मन इसी के लिये भूखा हो सकता है—अपने ऊपर किसी को सहन के लिये। क्या कोई उन्हें तावेदार नहीं बना सकता—चारू तुम यह करोगी तो तुम खुश होगी वह खुश होंगे। प्यार में तुम पहल लो अपने प्यार में तुम बेहया और बेरहम बनो—ऐसे जाने क्या क्या कहती रही। और आदित्य के आने के अगले दिन चारू घर पर इतनी खुश इतनी खुश-खुश आई कि मैं क्या कहूं! और अपनी गई बीती रात की याद कर वह बडी हँस रही थी बडी ही हँस रही थी समझे? इसलिये अब डर नहीं रहा।"[४५]

प्रस्तुत पंक्तियों में आदित्य के चरित्र की कुंजी है। आदित्य सभी प्रशासनिक व्यक्तियों का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। वे हुकूमत करते-करते इतने अघा जाते और परिणामस्वरूप इतने एकरस हो जाते हैं कि चाहने लगते हैं कि कोई उन्हें तावेदार बनाये। यदि चारू आदित्य को प्यार में अपना तावेदार बना सके और ऐसा करने के लिये पहल ले प्यार में बेहया और बेरहम बने तो वह आदित्य के दिल को जीत सकती है। यह दीक्षा अपरा ने चारू को दी है और इस दीक्षा का परिणाम भी तुरंत ही सामने आया है। विगत रात को चारू ने अपने दाम्पत्य जीवन की पुन प्राप्ति की और परिणामस्वरूप उसका मन हुलास से फूला नहीं समा रहा है। जो खो गया था उसे उसने पा लिया है। इन पंक्तियों में अपरा की मदद से चारू ने आदित्य के अवचेतन को पढा और तदनुकूल आचरण किया। जब हम किसी की दुखती रग को छू लेते हैं और उसे सहला देते हैं तो वह व्यक्ति खुल आता है। पुरुष का स्वभाव है कि उसे नाज-नखरे और कभी-कभी बेहयाई अच्छी लगती है। जब यही सब आदित्य को अपने ही घर चारू से मिला तो उसे बाहर भटकने की क्या जरूरत है!

उपर्युक्त अनुच्छेद में बातचीत की एक शृंखला है—अपरा ने चारू को दीक्षा मंत्र दिया। उसे चारू ने आजमा कर देखा और सफल पाया। सफल होने पर उसने इसी बात को अपनी मां से कहा मां ने इसी बात को अपने पति प्रसाद से कहा और खुद बेटी के हुलास में फूली न समाई! जामाता के अवचेतन मन की कली खिली तो उसकी महक घर बाहर सब ओर छा गई! हिरनी को क्या पता था कि जिस सुरभि की खोज में वह सारे संसार को छान बैठी थी, वह तो उसी की नाभि में है। चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया में इस बार उर्दू शब्दों की बहार है—निशान हक अरमान, उमर, तावेदार बेहया और बेरहम आदि

४५ अनन्तर पृ० १६७ १६८।

उर्दू शब्दों की झड़ी-सी लग गई है। यह इसी बात का परिचायक है कि उपन्यासकार को अवचेतन की अभिव्यक्ति ही अभिप्रेत है, इसके लिये वह हिन्दी, अंग्रेजी या उर्दू किसी भी भाषा का मोहताज नहीं। अपनी बात की रौ में उसे जो भी शब्द मिल जाये, उसी को वह अपनी प्रतिभा के पारस से कंचन बना देता है। जब भावनाएं प्रबल होती हैं, तो वे अपना रास्ता स्वयं बना लेती हैं। किनारे के पत्थरों और झाड़ झंखाड़ों को चीरती हुई यह वाग्धारा अपने उद्देश्य के महासागर में जाकर ही चैन की बांसुरी बजाती है। इस बात को यों भी कहा जा सकता है कि हिन्दी का मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जिस मुहावरे की खोज और तलाश में था उसे उसने बहुत-कुछ पा लिया है। डा० इन्द्रनाथ मदान कहते हैं कि "आधुनिक हिन्दी उपन्यास अपने मुहावरे की तलाश में है।"[४६] मैं उनसे आगे बढ़कर कहना चाहता हूं कि प्रेमचन्द फिर जनेन्द्र और उनके बाद अज्ञेय और यशपाल ने अपने मुहावरे को तो पा लिया है पर अभी वे किसी ऐसी जीवन्त प्रतिभा की प्रतिष्ठा नहीं कर सके हैं जो युग-युगान्त तक अविस्मरणीय रहे और जिसकी कीर्ति-सुरभि से दिग दिगन्त महक उठें।

निष्कर्ष

'परख' से 'अनन्तर' तक के उपन्यासों का चेतन अवचेतनगत अवगाहन करने और उनकी प्रक्रियागत भाषा शैली का विस्तार से निरूपण करने के उपरान्त यह स्वाभाविक ही है कि हम इससे कुछ निष्कर्ष निकालें।

१ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चेतन अवचेतन स्थिति का बड़ा महत्व होता है चूंकि जनेन्द्र इस प्रकार के पहले उपन्यासकार हैं इसलिये प्रवर्तन का श्रेय उन्हें ही प्राप्त है। प्रेमचन्द की सीधी सपाट भाषा-शैली को और वर्णनात्मकता को उन्होंने अति संश्लिष्ट एवं गहन मनोविश्लेषणपरक भाषा का रूप प्रदान किया।

२ ऐसे प्रवर्तन-कार्य में यह आवश्यक होता है कि नया पथ बनाते हुए उपन्यासकार भाषा के धरातल पर तोड़ फोड़ करे खुदाई करे और फिर से एक नये रूप में सवार कर नये ओज और दीप्ति के साथ परिनिष्ठित रूप में ढाल दे। यदि हम कविता में मैथिलीशरण गुप्त और कामायनीकार प्रसाद की भाषा शैली तथा गद्य में प्रेमचन्द और जनेन्द्र की भाषा शैली का तुलनात्मक अनुशीलन करें तो यह अन्तर स्पष्ट हो जायेगा।

---

४६ आज का हिन्दी उपन्यास अपनी बात—डा० इन्द्रनाथ मदान (प्रथम संस्करण १९६६)

३ जनेन्द्र की भाषा म अराजकता स्वच्छाचारिता एव अव्यवस्था तो है पर यह नवनिर्माण की आवश्यक शत होती है। किसी को बनाने या उस नया रूप देन म पुरान ढाचे का भवन का रूप देना पडता है और तब उसी मलब म स नई इमारत नई साज-सज्जा एव नये गठन सौन्दय का लकर उठ खडी होती है। आज हिन्दी कथा-साहित्य म अज्ञेय, राजेन्द्र यादव उषा प्रियम्वदा और शिवानी म हम भाषा का जो नया निखार दखत हैं उसका प्रारम्भ *जनेन्द्र के ही उपन्यासा म हुआ था।*

४ जनेन्द्र गाधीजी की प्ररणा क कारण हिन्दुस्तानी क पक्षपाती रह हैं। उनकी हिन्दुस्तानी का स्वरूप यही है कि उसम प्रचलित सभी भाषाओं क लिए गुजाइश हो और किसी स परहज न हो। यही कारण है कि वे निस्सकोच उर्दू अग्रेजी और सस्कृत के शब्दों का धडल्ले स प्रयोग करत हैं। यह स्वाभाविक ही है कि एसी स्थिति म हिन्दी और सस्कृत के शब्दों का अनुपात अधिक होगा। जहा पर प्रवाहपूर्ण व्यजना के लिए हिन्दी-सस्कृत म कोई शब्द नही मिल पाता वहा व निधडक होकर उर्दू और अग्रेजी का पल्ला पकड लेत हैं। राष्ट्रभाषा क रूप म जिस हिन्दी की प्रतिष्ठा की गई है उसका हाजमा इतना अच्छा होना ही चाहिये कि वह सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों को पचा कर चल सक। यही कारण है कि प० सुदरलाल और नेहरूजी की हिन्दुस्तानी स गाधीजी और जनन्द्रजी की हिन्दुस्तानी म अधिक साहित्यिकता है। साहित्यिक सन्दर्भों की दृष्टि स जनेन्द्र की हिन्दुस्तानी और हिन्दी म कोई विशेष अन्तर नही है। हिन्दी अपन अखिल भारतीय रूप म हिन्दुस्तानी को आत्मसात् करक ही चल सकती है। इस तथ्य को जितना काका कालेलकर और जनन्द्र सममत हैं उतना और कोई दूसरा नहीं। प० सुदरलाल और नेहरूजी की हिन्दुस्तानी म उर्दू शब्दों का इतना अधिक अनुपात था कि उस भारतीय जन मानस ग्रहण न कर सका पर गाधीजी की हिन्दुस्तानी राजनीतिक सभाओं एव गाधीवादी पत्रों म धडल्ल स फलती-फूलती गई। जनेन्द्र चूकि एक सृजनात्मक साहित्यकार थ इसलिय उन्होंने अवचेतन की मधुरिमा म डुबाकर हिन्दी हिन्दुस्तानी को एक एसा रूप प्रदान किया जो सबके गले उतर सके।

५ जनेन्द्र ने अवचेतन को अभिव्यक्ति देन के लिये जहा परम्परागत शब्दों एव मुहावरों स काम लिया है वहा उन्होंने कुछ नय शब्द एव मुहावर भी घडे हैं। इनका विस्तृत अध्ययन हम शब्द शक्तिपरक अनुसधान वाल अध्याय म करेंगे और वहीं इसके कुछ नमून भी प्रस्तुत किये जा सकेंगे। उनकी वाक्य रचना शब्द चयन एव पद विन्यास प्रचलित से भिन्न है। उस पर उनक व्यक्तित्व की छाप है। शली की इसी सवमान्य कसौटी के आधार पर एक शलीकार क रूप

मे भी उनकी प्रतिष्ठा होगी, यह निर्विवाद है।

६ अवचेतन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से जनेन्द्र को अत्यन्त सक्षम उपन्यासकार भी कहा जा सकता है। उनकी ऐसी अभिव्यक्ति म भावाभा की विविधता, बहुरूपता एव जीवन्तता उन्ह हिन्दी कथा-साहित्य म एक विलक्षण गौरव प्रदान करती है। अज्ञेय-जैसा काव्यात्मक सौन्दय उनके गद्य म भले ही न हो पर जीवन स्थितिया की विराटता एव गहनता म—और परिणामस्वरूप दाशनिक ऊहापोह मे—वे अज्ञेय से आग रहे हैं या यो कहिये कि अज्ञेय ने भाषा शली के सबध म सवप्रथम प्रेरणा एव दीक्षा जनेन्द्र की कृतिया से ही ली है।

परिच्छेद—८

●

परामानसिक स्थिति और भाषा-शैली

●●●

परामानसिक स्थिति से तात्पर्य

परामानसिक स्थिति से तात्पर्य उस इंद्रियातीत स्थिति से है जिसमें कि रचनाकार भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करता है और जिसकी अनुभूति इंद्रियगम्य नहीं होती। स्वाभावतः आत्मा-परमात्मा के प्रसंग व्यक्ति की वे अनुभूतियां जो मानसिकता की परिधि से बाहर की हैं इसके अन्तर्गत ली जा सकती हैं। परामानसिक स्थिति का परामनोविज्ञान से घनिष्ठ संबंध है जिसमें आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म और जन्म-जन्मान्तर की जीवन प्रक्रिया का बोध होता है।

डा० सत्येन्द्र परामानसिक स्थिति को एक विशेष सन्दर्भ में लेते हैं। उनका इससे यह अभिप्राय है कि व्यक्ति के संस्कार और उसकी मानसिक प्रतिक्रियाएं कभी-कभी उसकी विचारधारा से पृथक् भी हो जाती हैं और तब अज्ञात रूप से पूर्वजों के संस्कार हमारे कार्य और व्यवहार में प्रतिबिंबित होने लगते हैं। उदाहरण के लिए किसी ऐसे हिन्दू पात्र की परिकल्पना की जाए जिसका पालन पोषण एवं शिक्षण प्रगतिशील विचारधारा में हुआ है और जो जाति, सम्प्रदाय या संस्कृति की संकीर्ण सीमा में आबद्ध नहीं होता, किन्तु अवसर आने पर उसका व्यवहार ठीक उसी प्रकार प्रतिक्रियान्वित होता है जिस तरह से उसके पूर्वज या उसकी संस्कृति में आबद्ध व्यक्ति व्यवहार करते। एक प्रगतिशील नवयुवक छुआछूत में विश्वास नहीं करता, किन्तु छुआछूत का प्रत्यक्ष अवसर आने पर उसका 'हिन्दू संस्कार' आन्दोलित होता है और उसे अपनी प्रगतिशील विचार

धारा के अनुरूप काय करने मे कठिनाई अनुभव होती है। डा० सत्येन्द्र की दृष्टि मे यही परामानसिक स्थिति है।[1] वस्तुत डा० सत्येन्द्र की मान्यता जुग के अध्ययन पर आधारित है। जुग ने पौराणिक धारणाओ को एव बहुत सी ऐसी मान्यताओ को जो कि अब तक अध विश्वासो पर आधारित थी एक मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इसके प्रमाण रूप म प्राय कहा जाता है कि सभी जातियो एव संस्कृतियो की पौराणिक मान्यताए एक सी ही है। अवश्य ही इनम कोई सार्व भौम सत्य विद्यमान है अन्यथा उनके स्वरूप म और उनकी अभिव्यक्ति म इतनी समानता नही पाई जा सकती थी।

फ्रायड ने मन को तीन भागो म विभाजित किया है (१) चेतन (२) अवचेतन (३) अचेतन। जुग फ्रायड के अचेतन को तो स्वीकार करते है, पर कहते हैं कि इस स्तर के नीचे भी एक और स्तर है अर्थात् अचेतन के दो स्तर हैं वैयक्तिक अचेतन (पर्सनल अनकॉन्शस) और समस्त अचेतन (रेशियल अनकान्शस)। हमारा वैयक्तिक अचेतन भोगेच्छु स्वार्थी, वीभत्स और क्रूर मूल प्रवृत्तियो का तथा दमित भावनाओ का रहस्यागार भले ही हो, पर यदि मन के अन्त पटल को भेद कर देखा जाए तो पता चलेगा कि उसमे एक समष्टि मन का स्तर है जो हमारी सारी सौन्दर्यप्रियता, नीतिमत्ता और खूबियो का अधिष्ठान है। हमारे चेतन मन को जिन खूबियो भलाइयो का भान रहता है व अपने तात्त्विक रूप म समष्टि मन म वर्तमान रहती हैं। जिस तरह अचेतन हमारी अनैतिक भावनाओ का आगार है वैसे ही हमारी नैतिकता का भी। उसी मनुष्य का व्यक्तित्व पूर्ण रूप स विकसित हो सकता है जिसके वैयक्तिक अचेतन और समष्टि अचेतन मे पूर्ण सामजस्य हो। इस सामजस्य की स्थापना के बाद मनुष्य की प्रतिभा को अधिक से अधिक नियन्त्रित होने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। फ्रायड के द्वारा निर्धारित दमित भावनाओ का आगार अचेतन को मानते हुए भी, जुग एक पग आगे बढकर कहते हैं कि इसके बाहर समष्टि मन भी होता है जिसम दमित भावनाओ से कुछ भी सबध नही। इसम निवास करने वाली भावनाए अस्पष्ट निराकार अनियन्त्रित और अनिर्वचनीय होती है पर यह मानव जाति म निसर्ग से प्राप्त है और युग युग स मनुष्य म निवास करती आई हैं। सत्य की खोज, अदृश्य शक्ति म विश्वास देवत्व और ईश्वरत्व म आस्था दूसरे शब्दो म, आध्यात्मिक उत्प्रेरणाओ का निवास चेतनातीत समष्टि अचेतन म रहता है और हमारी चेतना को भी प्रभावित करता रहता है।[2] 'इसी बात

१ डा० सत्येन्द्र से हुई वार्ता के आधार पर।
२ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय पृ० ६१ ६२।

को जुग ने इस रूप म समझाया है

The collective unconscious is a deeper stratum of the unconscious than the personal unconscious it is the unknown material from which our consciousness emerges We can deduce its existence in part from observation of instinctive behaviour—instincts being defined as impulses to action without conscious motivation or more precisely—since there are many unconsciously motivated actions which are entirely personal and scarcely merit the term instinctive—an instinctive action is inherited and unconscious and occurs uniformly and regularly Instincts are generally recognized but not so the fact that just as we are compelled to certain broad lines of action in specific circumstances so also we apprehend and experience life in a way that has been determined by our history Jung does not mean to imply by this that experience as such is inherited but rather that the brain itself has been shaped and influenced by the remote experiences of mankind But Although our inheritance consists in physiological paths it was nevertheless mental processes in our ancestors that traced these paths If they come to consciousness again in the individual they can do so only in the form of other mental processes and although these processes can become conscious only through individual experience and consequently appear as individual acquisitions they are nevertheless pre existent traces which are merely filled out by the individual experience Probably every impressive experience is just such a break through into an old previously unconscious river bed

इन प्रामाणिक विवरणा स यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वयक्तिक अचेतन और समष्टिगत अचेतन दोना ही हमारी क्रिया प्रतिक्रियाओं का बहुत दूर तक प्रभावित एव नियन्त्रित करते हैं। अनेक पात्रा म वयक्तिक अचेतन एव समष्टिगत अचेतन का द्वन्द्व चलता है तो कुछ पात्रा म इन दोना का सामजस्य इस रूप मे प्रस्फुटित होता है कि उनके व्यक्तित्व को एक पूर्णता मिल जाती है। जनेन्द्र के उपन्यासो म प्रथम वग के उदाहरण पुष्कल मात्रा म विद्यमान हैं जबकि द्वितीय वग के उदाहरणा म हम कठिनाई स ही जयवधन प्रसाद गुरु आनन्द माधव, ठाकुर श्रीकात आदि को ले पाते हैं। अगल पष्ठा म हमारा

* एन इण्ट्रोडक्शन टू जुग्ज साइकोलाजी फ्रेडा फोडहम पृ० २३ २४। (तृतीय सस्करण, १९६६)

प्रयत्न यही होगा कि इस द्वैत अथवा इसके सामंजस्य को जनेन्द्र के विभिन्न उपन्यासों से उद्धृत करते हुए उनकी परामानसिक स्थितियों का निर्वचन करें।

इन दोनों दृष्टिकोणों में मानसिक स्थिति और इन्द्रियगम्यता से पर होने की बात समान है। प्रकारान्तर से आध्यात्मिकता को दोनों ही दृष्टिकोणों में स्वीकार किया गया है। अन्तर केवल यही लगता है कि एक में मानसिक चेतना का विस्तृत सन्दर्भ है और दूसरे में संस्कार रूप में हमारे अचेतन में प्रसुप्त भावनाओं को विशेष महत्व दिया गया है।

जनेन्द्र के उपन्यासों में परामानसिक स्थिति का स्वरूप

यदि इस दृष्टि से जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि पर विचार करें, तो परख का सत्यधन और उसका आचरण परामानसिक स्थिति के विरोधाभास को हमारे सामने स्पष्ट कर देते हैं। सत्यधन आदर्शवाद में पला है। वकीलों की शोषण-वृत्ति के प्रति वह बगावत का झंडा खड़ा करना चाहता है किन्तु जब उसके सम्मुख कट्टो और गरिमा में से एक को चुनने का प्रश्न आता है तो उसका सारा आदर्शवाद न जाने कहां विलुप्त हो जाता है और वह गरिमा को ही अपनी जीवन-संगिनी के रूप में चुनता है। उसके अचेतन मन में आभिजात्य के प्रति जो प्रबल आकर्षण था वह उसके चेतन मन पर एकाएक हावी हो जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि उसके अचेतन में प्रसुप्त संस्कार ही उसके लिए निर्णायक प्रमाणित हुए। गरिमा के पिता की मृत्यु के उपरान्त जब वसीयत का विधान सत्यधन के सामने आता है तो वह विक्षुब्ध हो जाता है और उसको तभी शांति मिल पाती है जबकि उसके द्वारा न-न करने पर भी कट्टो चालीस हजार के नोट उसके हाथ पर रख देती है और यह श्रीमानजी औपचारिक नतु-नच के उपरान्त उन्हें अंगीकार कर लेते हैं। इस सम्पूर्ण घटना चक्र में हम सत्यधन की परामानसिक स्थिति का स्पष्ट रूप में सधान कर सकते हैं "बी० ए० पास करने के बाद टाल्स्टाय रस्किन गांधी या जाने किसका एक विचार स्फुलिंग इनके जवानी के तेज खून में पड़ गया था। अब तक भीतर-ही भीतर वह इनके खून में अपना जहर काफी फैलाता रहा था। वक्त आया तो अपनी गर्मी से इन्हें दहका दिया। सोचा—वकालत में क्या है? अपने देश का सत्यानाश है और अपनी आत्मा का सत्यानाश है।"[1] इस विचार की परिणति हमें मुंशी होशियारबहादुर से हुई तकरार में देखने को मिलती है,

१ परख, पृ० १।

जब ये प्रतिनिधि निश्चय के रूप में उसके कहते हैं या तो युधिष्ठिर ही बन सा या करीब हो बन सा ' तब सत्यधन का संकल्प इन वाक्यों में गूंज जाता है झूठ से बिना वकालत नहीं तो मैं वकालत करता ही नहीं। ' यदि यही सत्यधन अपने श्वसुर के वसीयतनामे पर इस प्रकार अपनी मानसिक प्रतिक्रिया प्रकट करता है। वसीयतनामा पढ़कर सत्य की गुस्सा हुआ— यह गए। वह अब इस मकान में भी नहीं रह सकते। बिहारी के दान पर यह नहीं रहेंगे— एक मिनट भी नहीं रहेंगे। तो सत्यधन के उस विचार-स्फुलिंग का अन्तिम परिणाम हमारे पास इस रूप में आया कि कट्टी उर् चालीस हजार के नाम अलग नया मकान बनाकर रहने के लिए दनी है तब लगता उनकी स्थिति पर इस प्रकार टिप्पणी करता है उन्हें त्याग की जरूरत था। वह उनकी प्राप्त में पड़ गए थे। यही कमी थी जिसने नजन्न का कम करते करते, आखिर मनमन मन से लेने का बाध्य कर दिया। जो लता रहा उस रुपया ने भुलाया।[5]

प्रस्तुत प्रकरण में सत्यधन की इस भावना उनके मन का विरोधाभास, स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। पात्र कहता कुछ है और करता कुछ है। उसके मन में उसके प्रसुप्त संस्कार वाचाल हो उठते हैं और सम्पूर्ण स्थिति का अपने हाथ में सम्हाल लते हैं। इस द्वंद्व प्रक्रिया में जनेन्द्र की भाषा नानी बड़ी सटीक बन पड़ी है। नायक की कथनी और करनी का विरोधाभास व्यंजना शक्ति की सपूर्ण सम्भावनाओं सहित अवतीर्ण हुआ है। इस प्रक्रिया में मन के जितने भी स्तर हो सकते हैं उनकी उपन्यासकार ने सजीवता के साथ व्यंजना की है। उपर्युक्त मुहावरों के प्रयोग ने अभिव्यक्ति में चार चाँद लगा दिए हैं।

सुनीता

सुनीता के सदर्भ में हरिप्रसन्न परामानसिक स्थिति का केन्द्र बिंदु कहा जा सकता है। वह प्रारम्भ में सुनीता को मित्र की पत्नी फिर भाभी तत्पश्चात् सुनीता और अन्ततोगत्वा प्रेयसी के रूप में समझने लगता है। सुनीता और हरिप्रसन्न के सम्पर्क से दोनों ओर परामानसिक स्थिति सक्रिय हो उठती है। प्रारम्भ में सुनीता ने हरिप्रसन्न को एक कौतूहल के साथ लिया फिर पति के मित्र के रूप में। पश्चात् एक अंतरंग सहचर के रूप में जिसके साथ बिना वह

२ ३ परख पृ० ३।

४ परख पृ० ११२।

५ परख पृ० ११४।

भोजन ग्रहण नहीं कर सकती और जिसका भोजन पर न आना भी उसे खट कता है और चुभता है। अपनी अपनी मर्यादा मे आबद्ध हरिप्रसन्न और सुनीता एक दूसरे को पाना चाहते हैं। हरिप्रसन्न उसे ध्वजाधारिणी के रूप मे अपने साथी क्रातिकारियो के बीच ले जाना चाहता है पर दरअसल वह तो बहाना था क्योकि झुरमुट के बीच जो हमवार चट्टान थी उसी पर लेटी हुई सुनीता को वह समूची पा लेना चाहता है। उस समय के उसके उद्गार द्रष्टव्य हैं मानो हरिप्रसन्न को पता भी न हो, इस भाति अनायास जोर से सुनीता को अपने से चिपटा कर उसने कहा तुम जानती हो अकेला होता तो मैं अब क्या करता ? वहा सकट है। उस सकट के मुह को ही जाकर मैं पकडता। लेकिन आज तो मैं उधर ताकता दूर खडा हूँ। मैं कुछ भी नही कर सकता।'

और उसी भाति एकाएक झुककर अपने हाथ से सुनीता की ठोडी ऊपर उठाकर बोला क्या ? क्योकि मैं अकेला नहीं हू और प्रेम आदमी को निबल बनाता है।''[६] 'मुह को ही जाकर पकडने मे' उसका क्रातिकारी दप लक्षित होता है। ताकता दूर खडा हू म उसकी प्रेमजन्य विवशता है। इस कृत्रिम दप की रचना कर वह सुनीता के प्रणय को हस्तगत किया चाहता है। अपने जीवन पर सकट का आभास दे वह नारी की दया भावना को उभाडना चाहता है। इस प्रकार उसन जिस दप की रचना की है उसी मे वह अपनी कामनाओ की परि पूर्ति का साधन जुटा लेता है सुनीता मैं अब तुम्हे भाभी नही कहना। जिन्ह भाई कहता हूँ उनकी ही मारफत तुम तक पहुँचू अब ऐसा नही है। मैं तुम्हे सुनीता कहूगा।' इस सुनीता कहने मे जसे प्रेयसी का आवाहन है और यही चुनौती उसके सम्पूर्ण अस्तित्व म से फूटी पड रही है 'मैं तुम्हे प्रेम करता हूँ—प्रेम ? लेकिन मै भी नहीं जानता हू सुनीता।'[७] इस न जानने का कारण है हरिप्रसन्न के आदश का आवरण, जो तुरन्त ही यथाथ मे परिणत हो जाता है। 'तुम पूछोगी—क्या चाहता ■ ? तो सुनो तुमको चाहता हू समूची तुमको चाहता हू। उसके बाद—'[८] इस प्रकार हरिप्रसन्न परामानसिक स्थिति से उत्प्रेरित हो पूरा नग्न हो गया और क्राति के आदश का आवरण तार-तार होकर उसी के व्यक्तित्व को विद्रूपित करने लगा।

---

६ सुनीता पृ० १७६।

७ सुनीता पृ० १७७।

८ सनीता पृ० १७८।

९ सुनीता पृ० १८०।

स्पष्ट ही यहाँ हरिप्रसन्न के अशान्त मन की अभिव्यक्ति है जिसे सुनीता ने जानबूझ कर उत्तेजना दी है कि उसके मन की ग्रन्थि मुक्त हो जाय। हरिप्रसन्न के मन का प्रसुप्त आत्माभिमान यहाँ जग अंगड़ाइयाँ ले रहा है और उसी मनःस्थिति में जैनेन्द्र की भाषा-शैली चरमोत्तेजना के कगार पर पहुँचकर पुनः लौट आती है। इसे हम रचनाकार का संयम भी कह सकते हैं या कुछ आलोचकों ने तो इसे भी एक विकृत आदर्शवाद ही कहा है। उनकी दृष्टि में तो हरिप्रसन्न को सुनीता को पूरा पा ही लेना चाहिए था। यहाँ महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उपन्यासकार अचेतन मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों को चेतना के स्तर पर ले आता है तब हम हरिप्रसन्न के अन्तर्मन से भली भाँति परिचित हो जाते हैं। इस स्थिति में दोनों पात्रों के अचेतन और चेतन के गहन अन्तर्द्वन्द्व को लेखक ने बड़ी सशक्त व्यञ्जना में पिरोया है। यहाँ उपन्यासकार की भाषा-शैली अत्यन्त सक्षम सिद्ध हुई है।

त्यागपत्र

त्यागपत्र में मृणाल और डाक्टर का प्रणय प्रसंग परामानसिक स्थिति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रमोद मृणाल के लिए डाक्टर का पत्रोत्तर लाया है। उसे मनोयोग से मृणाल ने पढ़ा और फिर उस खत को धीमे धीमे तह किया और मुझसे कहा—मानो उस वक्त मुझे वह पहचान नहीं रही थी। मानो सब भूल गई कि क्या था, क्या है, क्या होगा। फिर उसी बेबूझ भाव में मुझे देखते रहकर मानो यन्त्र की भाँति उस खत को फाड़कर नन्हें-नन्हें टुकड़ों में कर दिया। मानो वे कुछ नहीं कर रही, जाने कौन कर रहा है। हलके-हलके कहने लगी। मानो उन्होंने अब कुछ-कुछ जगत् को पहचाना। थोड़ी देर बाद बोलीं, 'प्रमोद, अब तू यहाँ कभी मत आना। तुमसे जवाब लाने को किसने कहा था? कभी किसी को कोई खत लाने की जरूरत नहीं है। समझा?'[10]

देख प्रमोद, शीला के भाई को कोई पैगाम आया कि मैं छत से गिरकर मर जाऊँगी। मुझे उन्होंने क्या समझा है?

मैं सच कहती हूँ मर जाऊँगी। मृणाल का बोल झूठा नहीं होता।'[11]

प्रस्तुत प्रकरण में मृणाल की चेतना में नए-नए दाम्पत्य-जीवन का दायित्व बोध है, अचेतन में डाक्टर का प्रणय प्रसंग भी कुरेदता है। उसी का परिणाम यह पत्राचार है। पर जब उसके चेतन अहं को अपनी वास्तविकता का बोध

---

१० त्यागपत्र पृ० २१।

११ त्यागपत्र, पृ० २२।

होता है तो वह अपने को धिक्कारती है और मरने की धमकी भी देती है। यह धिक्कार और धमकी दाम्पत्य-बोध की नतिकता के कारण स्वय-आरोपित है, जसे कि यह भी कोई छलावा हो जिससे कि मृणाल का नतिक मन बचना चाहता है पर क्या वह बच सका ?

यहा परामानसिक स्थिति की सवाहिका स्वय मृणाल की भावना है और लेखक ने इसे बडे कौशल से चित्रित किया है। इस चित्रण की बुनावट मे चेतन और अवचेतन की आडी तिरछी रखाए हैं। अस्तत परिस्थितिया से जूझती हुई मृणाल अपने को पति-परित्यक्ता पाकर कोयलवाले को सौंपने के लिए अपने को तयार कर लेती है। इस कोयलेवाले के प्रकरण म उसी पूव प्रणय प्रसग की पुनरावृत्ति है। पूव अवस्था मे चेतन मन इतना सशक्त था कि अचेतन के लाख चाहने पर भी उसे उभडने न देता था। परवर्ती अवस्था म वही चेतन मन बेबूझ भाव' से इतना आक्रान्त हो गया है कि उसे निरन्तर गिरते जान के सिवाय और कुछ नही सूझता। उपयुक्त पक्तियो म बेबूझ भाव परामानसिक स्थिति की ओर सकेत करता है। ऐसी स्थिति मे आदमी अपने मे रह नही पाता उसके प्रसुप्त सस्कार ही उस ठेलते रहते हैं। कुछ कुछ जगत् को पहचानने म यही भाव लक्षित होता है कि मृणाल की चेतना का एक चरण तो परामानसिक स्थिति में पक म डूबा हुआ है और दूसरा चरण चतन जगत् मे पडना चाहता है पर जसे कोई उसे पडने स रोकता है। ऐसी स्थिति मे उपन्यासकार की भाषा शली सकेतात्मक एव प्रतीकपूण बन जाती है और उसका लाक्षणिक सौदय अपनी चरम सीमा पर पहुच जाता है। जनेन्द्र ऐसी परामानसिक स्थिति के अद्भुत शिल्पी हैं।

कल्याणी

कल्याणी म परामानसिक स्थिति का विशुद्ध उदाहरण अनेक स्थला पर उपलब्ध हाता है। यो सम्पूण कल्याणी परामानसिक स्थिति की एक विशिष्ट रचना कही जा सकती है। कल्याणी के चेतन और अचेतन म इतना अन्तद्वन्द्व है कि उसकी कथनी और करनी म अनेक स्थला पर विरोधाभास झलकता हुआ प्रतीत होता है। उसके प्रसुप्त सस्कार इतन प्रबल हैं कि वह अनजान ही बहुत मे एस काय कर जाती है जिनका सामान्य स्थिति म कोई औचित्य प्रतीत नही होता। कथन क साम्य म निम्न उदाहरण को लिया जा सकता है—

बोली— मैं बतलाती तो हू सुनिये डाक्टर साहब दान देते हैं, सो सस्थाए मुझे मान देती हैं। इससे सस्थाओ को लाभ होता है हम भी लाभ होता है। परस्परोपकार। बताइये, इसमे गलत क्या है ? तिस पर मुझे अपनी कीमत के

बड़ा म क्या झिझक होनी चाहिए ? पर आप कुछ और न मानियेगा मैं हू एव इनवेस्टमण्ट ।

मैंने देखा कि वह आत्मलाछना पर ही आ तुली है। मैंने कहा—अच्छा कहिय ता ।

वह विनम्रता भाव स मुस्कराकर बोली–आपकी नोयत नक नहीं है । मैं मिलता हुआ सम्मान छोडन वाली नही हू । चार बजत हैं और मुझे अब चलना चाहिए ।—यह कहकर चलन का उद्यत हो गयीं।

मैंने विनम्रपूवक कहा–मुझे साथ चलने का निमत्रण क्या आप भूलकर भी नहीं द सकती ? मैं भी मन-भभव देखता ।

उन्होने साश्चय कहा—सच क्या आप चल सकेंगे ? मैं सोचती थी कि बच्चो का तमाशा है आपको क्या भला लगेगा ।

मैंने कहा—झूठे भी आप निमत्रण देती तो मुझे सोचने का मौका था । अब तो ।

उन्होने किंचित् मदनापूवक कहा—मैं जानती हूँ। आप चलनेवाल नहीं हैं।

मैंने हसकर कहा—जानती तो आप उपयोगी बात हैं। यह साहित्य-सभा का मानपत्र है ना ?

हसकर बोली—हा-आ ।

मैंने पूछा—तब तो इधर आप कुछ लिखती भी रही मालूम होती हैं।

बोली—जीवन ही दुःख की कविता है । अतिरिक्त कविता अब क्या लिखू ! नहा आप मानिये मैंने कुछ नही लिखा । धम स छूटू तब तो आत्मा की सोचू । पर देखिये आप मेरा चार का समय चुकाना चाहते हैं । आपकी कविता के पीछे मानपत्र गवानवाली मैं नहीं हू ।

इस बार नमस्कार करके वह बिलकुल नही रुकी जसे कि पल भर देर हुई कि सब बना बिगड जायेगा ।



उसी दिन सध्या के अनन्तर श्रीधर ने आकर एक अप्रत्याशीय घटना ना सुनाई । मैंने कहा—यह क्या कह रहे हो जी श्रीधर ?

उसने कहा—जिसने आखो देखा है उसी की कही सुना रहा हू । डाक्टर ने खुले रास्ते जूता तक से उन्हे मारा । तांगे म बठी थी वहा से खींच-खींच लिया। चलती सडक पर तमाशाई न जाने कितने जुड गये थे देखने वाला कोई एक तो था नहीं, भीड की भीड थी ।'[१२]

---

१२ कल्याणी प ५४ ५५ ।

इस सम्पूर्ण घटनावली का यदि हम विश्लेषण करें तो कई बातें हमारे सामने स्पष्ट होकर आती हैं

१ जब कल्याणी वकील साहब से मिली, तो साहित्य सभा में जाने का उत्कट भाव उसमें था पर वह वहां न जाकर कहीं और चली गई और परिणाम स्वरूप उसे डाक्टर असरानी का न केवल कोप भाजन ही बनना पड़ा बल्कि खुले रास्ते उनके जूते भी खाने पड़े।

२ इस घटना में कल्याणी के मन का अन्तर्विरोध पारदर्शी रूप में स्पष्ट झलकता है। वह चेतन मन से साहित्य सभा में जाना चाहती है, पर परामानसिक स्थिति उसे डाक्टर भटनागर के यहां ले जाती है।

३ कल्याणी सार्वजनिक मार्ग पर डाक्टर द्वारा पीटे जाने पर विक्षुब्ध नहीं है उसके अन्तर्मन में इसका औचित्य ही तरंगित होता है।

४ कल्याणी ने अपने आपको इनवस्टमेंट बताया है इसी इनवेस्टमेंट के विरुद्ध उसका मन है इसीलिए वह उत्कट भाव होने पर भी साहित्य सभा में नहीं जा पाती उसका अन्तर्मन भली भांति जानता है कि डाक्टर असरानी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उसका उपयोग कर रहे हैं इसीलिए अनजाने ही उसके पैर साहित्य सभा से विरत होकर दूसरे मनचाहे स्थान पर चले जाते हैं।

५ इसमें कोई सन्देह नहीं कि अभिनन्दन कल्याणी का ही था, किन्तु उस अभिनन्दन की आड़ में एक कुत्सित स्वार्थ रंग रहा था, उसी का दंश कल्याणी की अन्तश्चेतना में इतना तीखा होकर गड़ा कि वह अपने मार्ग को बदल बैठी।

इसी प्रकार की परामानसिक स्थिति कल्याणी के जगन्नाथजी के मन्दिर में भी देखी जा सकती है। अपने अशुचि जीवन की क्षति-पूर्ति कल्याणी जगन्नाथ जी के मन्दिर में करती है और अपना स्थान कूड़े की जगह बतलाती है। उसके अन्तर्मन में अपना कूड़े से अधिक महत्त्व नहीं है। यह आत्म धिक्कार और प्रवचना का प्रतिनिधि उदाहरण कहा जा सकता है। जगन्नाथजी के मन्दिर में उसका जो सेवा भाव है वह उसकी परामानसिक स्थिति की ही व्यंजना है।

इस प्रकार के विवरणों में जनेन्द्र की भाषा-शैली एक नये निखार के साथ जीवन असंगतियों का चित्रण करती है और अन्तश्चेतना में जो भी आड़ी तिरछी रेखाएं होती हैं उनका फोटोग्राफिक विवरण प्रस्तुत करने में जनेन्द्र की असाधारण क्षमता ही उनकी भाषा शैली में प्रकट होती है। वे मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों के अद्भुत शिल्पी हैं। उनकी वाक्य रचना और शब्द-चयन में तथा घटनाओं के शिल्प विधान में जो सूक्ष्मता रहती है, वह मनोविश्लेषणात्मक

उपन्यासों में प्रायः विरल ही है। इस दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की उपन्यास-रचना से उनकी सहज ही तुलना की जा सकती है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में सूक्ष्म मनोविश्लेषण का आधिक्य है, उनका विवरण मनोविज्ञान की पुस्तकों पर आधारित होता है। यही बात आंशिक रूप में अज्ञेय की नगन दासी के बारे में भी कही जा सकती है, किन्तु जिस स्वाभाविकता के दर्शन हम जैनेन्द्र में मिलते हैं—विशेष रूप से उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों में—वस्तुतः वह जैनेन्द्र की निरूपण-क्षमता की ही परिचायक है।

सुखदा

सुखदा में आभिजात्य के संस्कार आरम्भ से ही हैं, इसीलिए कान्त को वह अपने से हीन समझती है। सुखदा में बाहर के निमन्त्रण के प्रति इतनी ललक है कि वह परिवार की परिधि में अपने आप को रख नहीं पाती। यही कारण है कि प्रकट में मर्यादा-भावना का ध्यान रखने पर भी वह अवचेतन में लाल के प्रति खिंचती जाती है और अन्त में उसके प्रति समर्पित भी हो जाती है। लाल के व्यक्तित्व में उसके आभिजात्य संस्कारों की परिपूर्ति थी, यही कारण है कि वह उसके आगे विनत है और उसकी इच्छा के आगे अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं रख पाती। सुखदा की परामानसिक स्थिति ही उसे लाल के प्रति समर्पित होने को बाध्य करती है। इस समर्पण और परामानसिक स्थिति की प्रबलता के लिए हम निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत करना चाहेंगे—

ठोड़ी पकड़ कर उन्होंने मेरा मुँह ऊपर किया। मेरी आँखों में क्या दहशत थी? फिर ठोड़ी उन्होंने छोड़ दी। मेरा मुँह उसी तरह ऊपर की ओर टिका रह गया। तब उन्होंने झुक कर निश्चेष्ट पड़े मेरे बायें हाथ को ऊपर उठाया और दोनों हाथों में लेकर उसे दबाते और कुचलते हुए कहा, मैं क्या करूँ सुखदा बता तू मैं क्या करूँ?

उन शब्दों की व्यथा मुझे भीतर तक चीर गई और मैं चुप बनी रही।

तभी एकाएक वे गिर आये और मेरे घुटनों में सिर डालकर वह सुबक उठे—'मैं क्या करूँ, सुखी! क्या करूँ?'[13]

मेरे भीतर एक भी शब्द किसी ओर से बनकर नहीं उठ सका। इस प्रकार गोद में पड़े उस पुरुष के बालों को सहलाती हुई मैं बैठी रह गई। शायद व्यथा स्वयं सान्त्वना है। याद नहीं कि मेरी आँखों से आँसू बहे कि नहीं। वह हो कि न वह हो, दोनों ही बात एक हैं। लेकिन मेरी गोद में काफी आँसू गिरे। और

---

१३ सुखदा पृ० २०२।

मैंने पाया कि अपने दोनों हाथों से धीमे से उस मस्तक को दोनों कनपटियों पर से सम्हाले हुए मैं बड़े प्यार से कह रही हूँ, 'उठो लाल उठो !'

वह चेहरा उठा। आँखें मेरी ओर हुइं। आँसुओं से धुली वे आँखें। और मुँह पर लज्जा से लाल एक फीकी, आकुल, तृप्त मुस्कराहट।

उस समय मालूम हुआ कि पुरुष दुर्दम और दुर्धर्ष, कभी कितना निरुपाय है !

और ठीक उस समय स्त्री, अबला और असहाय कितनी सक्षम और समर्थ है।"

यह संयोग की ही बात है कि जैनेन्द्र का क्रान्तिकारी नारी के सम्मुख अपने आपको निपट निस्सहाय पाता है। सुनीता, सुखदा और विवर्त में क्रान्तिकारी की यही नियति है। जैनेन्द्र अपने नारी पात्रों को परिवार की परिधि से निकालते तो हैं पर इन महिला पात्रों में एक भीति की भावना भी है विशेष रूप से सुखदा में। उसके मध्यवर्ग के संस्कार जैसे उसके कार्यों का विरोध करते हों। सुखदा में तो लाल के प्रति नाममात्र को भी विरोध नहीं है, इसी कारण शचीरानी गुर्टू इसे जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद समझती हैं।[१४] कोई भी सामान्य नारी ऐसी स्थिति में बिना किसी अन्तर्द्वन्द्व के समर्पण नहीं कर सकती।

इस प्रकार के विवरण में पुरुष की निरीहता नारी की दया को उभारती है और इसी करुणा के माध्यम से पुरुष विजयी होता है। इसे पुरुष का ढोंग भी कहा जा सकता है किन्तु नारी पर उन्माद इस कदर छाया रहता है कि वह ढोंग के असली स्वरूप को नहीं समझ पाती। सम्भवतः नारी इस स्थिति में अपने अहंकार की विजय देखती है और उसी के मोह में समर्पित हो जाती है। कुछ है जो उसे ऐसा करने के लिए ठेलता है। ऐसे स्थलों पर अचेतन में सोयी हुई प्रसुप्त आकांक्षाओं के स्वरूप को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उद्धरण के अंतिम अंश में नाटकीयता का स्वरूप मार्मिक बन पड़ा है। इन पंक्तियों में शेक्सपीयर के उस प्रसिद्ध कथन की अनुगूंज है, जिसमें उसने कहा है "फ्रेलिटी दाई नेम इज़ वूमेन।" ऐसे विवरणों में ऐन्द्रियता पर्याप्त मात्रा में मिलती है मनोवेगों की झंकारों को भी स्पष्ट सुना जा सकता है और मुँह पर लज्जा से लाल एक फीकी, आकुल तृप्त मुस्कराहट में रत्यन्त का सुरतिपूर्ण चित्र है जिसकी संकेतात्मक व्यंजना अंतिम दो वाक्यों को एक विशेष अर्थ प्रदान करती है।

---

१४ वैचारिकी में शचीरानी गुर्टू का निबन्ध जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद पृ० सं० २१० २१५।

विवन

यों तो विवन आभिजात्य वर्ग की कहानी है किन्तु तिन्नी और जितेन का प्रसंग इसे एक नया मानवीय आयाम प्रदान करता है। जितेन और तिन्नी के संबंध यद्यपि अस्पष्ट तथा भ्रमपूर्ण हैं उनके बीच स्नेह की धारा फूट-फूट पड़ना चाहती है पर भावनाओं के मुख पर जम कहीं स्थायी है अवरोध है। यही कारण है कि यह प्रसंग उपन्यास का केन्द्र बिन्दु बन गया है। तिन्नी के प्रसंग की तुलना हम 'शासन' में डा० महता और उनकी युवती के प्रसंग से कर सकते हैं। जितेन और तिन्नी के बीच अनन्त व्यापार फैला रहता है। तिन्नी जितेन को बहुत प्यार करती है उधर जितेन भी उसे नाराज नहीं किया चाहता किन्तु कुछ है जो उन दोनों को बन्द किये है। तिन्नी जितेन-संबंध में हम पराभावनागत स्थिति से स्पष्ट कर सकते हैं। जितेन ने कहा— दरवाजा क्यों खुला है ! बन्द कर लो।

तिन्नी ने कुछ नहीं किया। वह जाकर फर्श पर बिछी अपनी दरी पर लाई सिर तक ओढ़कर लेट गई। जितेन ने बढ़कर अपने हाथ से द्वार भिड़ाया और बाल्टी के ठंडे पानी के छींटे जोर से मारकर मुँह धोया। अब उसने अपने को कुछ ताजा अनुभव किया। तिन्नी सो नहीं रही थी। लेटे-लेटे ही उसने हाथ बढ़ाकर आहिस्ता से द्वार के पट फिर खोल दिये थे। दिन के भारी थे। तिन्नी जानती न थी पर अनुभव करती थी। इससे सोने में भी वह जागती थी। यह आदमी उसके लिए है ताबीज जिसके अन्दर जन्तर बन्द होता है। नहीं जानता मन्तर वह क्या है अगर तब नहीं जानती। यह आदमी क्या लिखता है क्या पढ़ता है क्या सोचता है क्या चाहता है क्या करता है—सब उसे अगोचर है। निश्चय ही जहाँ वह रहता है अपर लोक है। वह तो रत्न है पर मान बैठा है कि उस पर हान के लिए डिबिया जैसे वह स्वयं है। रत्न जौहरी जाने और उसे जो पहने सो पहने। पर सुरक्षा की डिबिया है। किसी का पीछे हो पहने वह डिबिया का है। इस नाते इस आदमी के वह चारों ओर रहती है और नहीं चाहती कि हवा भी उसे छुए।

* * *

जितेन आया तो बिना किसी ओर ध्यान दिये अपने कमरे के कोने की बाल्टी की तरफ बढ़ता चला गया। साबुन से हाथ धोने को हो था कि झपटती तिन्नी आई और पानी फेंक लाने का सामने से उठा ले गई। जितेन को बुरा लगा लेकिन वह भीतर ही भीतर अतिशय कृतज्ञ हो आया। एक मिनिट बाद गरम पानी का भरा लोटा उसके आगे आ गया। जितेन ने मंजन किया फिर मुँह हाथ धोकर घड़ी देखी और वह कमरे में घूमने लगा। जैसे सहसा उसे याद हो

आया, कहा—'दरवाजा बन्द कर लो।

तिन्नी ने धीमे से कहा—'तुम्हें नींद नहीं आई !'

जितेन क्षण के शून्य भाग तक ठिठका। बोला— दरवाजा बन्द कर लो। बात तेज पडी। तिन्नी खडी खडी रही। उपाय न देख आखिर लौट आई। इस आदमी के सब कपाट बन्द हैं किसी द्वार से भी प्रवेश नहीं। उसने भी खीझकर दरवाजे का कुण्डा अपनी ओर से लगा लिया।"[१५]

जितेन के दरवाजे को बन्द कर लेने की बात एकाधिक बार आई है। इस से यही प्रमाणित होता है कि उसके अचेतन में जो भय का भाव भर गया है, वह कभी खाली नहीं होता। तिन्नी जितेन के प्रति धीरज के साथ प्रतीक्षा में है कि कभी तो कुछ खुलेगा। पर जितेन है कि उसके कपाट सब तरफ से बन्द हैं किसी ओर से भी प्रवेश नहीं। अतः तिन्नी खीझकर रह जाती है और दरवाजे का कुण्डा अपनी ओर से लगा लेती है। जितेन के अचेतन मन में तिन्नी का अहसास है वह उसके प्रति कृतज्ञ भी है पर वह जिस कार्य में नियोजित है उसके कारण उसे वैयक्तिक प्रसंगों के लिए कोई अवकाश नहीं है। उपर्युक्त अवतरण में मन की सूक्ष्म तरंगों, वर्जनाओं एवं निषेध का पूरा प्रतिबिम्ब है। ऐसी स्थिति में लेखक की भाषा शैली चित्रकार की सूक्ष्मता ले लेती है और चित्र अपने पूरे रंगों एवं वैभव में उभर आता है। इन पंक्तियों में रत्न, डिबिया और जौहरी का प्रतीक सांगरूपक का उत्कृष्ट उदाहरण है। अंतिम पंक्तियों में स्नेह-कातरता के उपरान्त आक्रोश की गूंज है।

व्यतीत

व्यतीत में जयन्त नामक एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो पूर्व प्रेमिका के ध्यान में रहकर चन्द्री जैसी पत्नी को अपना नहीं पाता। उसके प्रसुप्त मन में अनीता के प्रणय-संस्कार इस कदर जड गये हैं कि वह अपने आपको बर्फ समझने लगता है, जो कभी गलेगी नहीं। चन्द्री के वैभव और अपनी धन हीनता के कारण जयन्त के मन में एक आहत अभिमान की ग्रंथि बन गई है जिसका अंतिम परिणाम यही हुआ कि कमीशन से लौटने पर उसे गैरिक वसन धारण करने पड़े। प्रश्न उठता है कि ऐसी कौन सी परामानसिक स्थिति थी जिसके कारण वह चन्द्री को अपना नहीं सका अनीता को ले नहीं सका और अपने ग्रह को कहीं खाली कर न सका? युवावस्था का आरम्भिक जीवन प्रणय के जो संस्कार उसे दे गया था उन्हीं के कारण वह बन्द रहा और कभी

---

१५ विवर्त १८४-८५।

खुल नहीं पाया। इसी स्थिति का एक चित्र उपन्यासकार के शब्दों में इस प्रकार है नहीं समझती थी चन्द्री कि सुख के लिए मेरी वह दुःख की रचना है। पर उस सुख किसी को मिला है इस परवशिटी में! वह मुझे कवि जानती थी पर मैं आज जानता हूँ मैं पशु था! तब तो शायद मैं भी कवि जानता था अपने को महान् जानता था विचारक जानता था। निर्णय के भाव से औरों को देखता और फैसला देता था। तब चन्द्री मेरे लिए मानिनी थी, अनिन्द्य रमणीया थी इसी से मेरे लिए उसे तिरस्करणीया बन उठी मान नीया थी इससे अपमाननीया हो गई। घनशालिनी थी इससे दलनीया बन गई ऊँची थी इससे नीची बनाना शायद मेरे लिए आवश्यक हो गया। आप बया मन की कमी मेरे भीतर इतनी गहरी जा बैठी थी, कि वह स्व बन कर बस गई आहत अभिमान की ग्रंथि भी बन उठी। जो हो वह अभ्यर्थना में झुकती मैं अनादर से तनता। कहता कुछ नहीं, तुम रहने दो। [16]

प्रस्तुत अवतरण में रमणीया तिरस्करणीया माननीया अपमाननीया दलनीया आदि की जैसे झड़ी लग गई है। इस प्रकार की तुकें मिलाने का भी लेखक को विशेष शौक है। या इन शब्दों की रचना सर्वथा सार्थक है और इनका व्यंग्य बड़ा मुखर है। आत्म लाञ्छना के भाव भी इन पंक्तियों में कम नहीं हैं। आरम्भ से लगाकर अन्त तक एक आत्म विश्लेषण की प्रवृत्ति यहाँ काम कर रही है। वह अभ्यर्थना में झुकती मैं अनादर से तनता —जैसे वाक्य एक विलक्षण अर्थ-गौरव से पूर्ण हैं। इनका सन्दर्भ और व्यंग्य बड़ा मार्मिक है। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार का दृष्टिकोण मूलग्राही बन जाता है और वह प्रसंग गर्भत्व से पूर्ण वाक्यों की रचना करता है।

जयवर्धन

जयवर्धन मूलतः एक राजनीतिक उपन्यास है। इसमें विभिन्न दलों एवं व्यक्तियों का अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट होकर कथानक के पट पर उभरा है। अनेक ऐसी स्थितियाँ जयवर्धन में आई हैं जहाँ पात्र वैयक्तिक अचेतन के स्तर से समष्टि अचेतन के स्तर तक उतरा है और वहाँ एक प्रकार की *रहस्यात्मकता* का भी आविर्भाव हुआ है। ऐसा लगता है कि उपन्यासकार किसी अबूझ पहेली को बुझा रहा है। अँधेरे में टटोल कर कोई प्रकाश की किरण पाना चाहता है। ऐसा ही प्रकरण विलबर की डायरी में जयवर्धन को लेकर आया है स्नान मुस्कराहट थी और वहाँ दूरस्थ दृष्टि। वास आदमी यही सोचा करता है।

---

१६ व्यतीत पृ० ११५ १६।

अपने को केन्द्र मान लेता है और फिर तर्क करता है कि केन्द्र गया, तो वृत्त कैसे टिक पायगा ? विलवर ब्रह्माण्ड ज्यामिति का वृत्त नहीं है। यहाँ जीव सब केन्द्र हैं और हर जीव प्रतिक्षण मर-जी रहा है। किन्तु हरएक केन्द्र अपने ही वृत्त का है इसलिए हर मरने और हर जीने में से सत्य स्खलित तनिक भी नहीं होता—यह तो इस तरह उत्तरोत्तर प्रकाशित और सिद्ध ही होता जाता है कौन जाने कि इस समय यही आवश्यक और उपयोगी हो कि स्थिति शून्य बन जाए आवर्त घुमड़ें और शक्तियों के लिए सतुलन का उसमे से उदय हो वह जो हो मैं पा गया हूं कि यह सब विचार मेरे लिए अयथार्थ है इसलिए यथार्थ की ओर जाने से अब मुझे कोई या कुछ रोक नहीं पाएगा लिज़ा को मैं समझा नहीं सका किसी और को भी कैसे समझाऊं ? लेकिन तुम, विलवर समझोगे कि यह कदम मेरे लिए पीछे हटने का नहीं है आगे बढ़ने का ही है। क्या मैं इतना निकम्मा हूँ या निकम्मा ही मुझे बन रहना है कि राज मेरे सामने रह पीछे न हो पाय। सुनो, अब मैं उसे पीछे ही छोड़ आया हूँ क्योंकि पुकार कर आगे बढ़ने से मुझे रोका नहीं जा सकता राज कई हैं और रहेंगे लेकिन मानवता एक है। मुझे विग्रह का नहीं रहना है मुझे उस एक की सेवा में होना है। और जब मैंने आवाज को पहचान और सुन लिया है तब ऐहिक उपयोग की कोई भी बात मुझे उसके पीछे चलने से रोक कैसे सकती है।"[१७]

जयवर्धन के जीवन में एक ऐसी स्थिति आई है कि वह सत्ता की लिप्सा से ऊपर उठ सका है और राज्य के त्याग में ही अपने जीवन की पूर्णता देख पाता है। उद्धरण के प्रथम रेखांकित वाक्य में मूलग्राही चेतना की पकड़ है और द्वितीय रेखांकित उद्धरण मे मानवता के प्रति उसकी निष्ठा प्रकट होती है। जय ने यह भली प्रकार समझ लिया है कि अन्ततः राजनीति विग्रहकारिणी है और यदि जीवन को पूर्णता प्राप्त करनी है तो उसे अखिल मानवता की सेवा में जुटना होगा। जय की अंतरात्मा की यही पुकार है। इस प्रकार के प्रकरण में उपन्यासकार की भाषा-शैली क्लिष्ट रहस्यात्मकता के झीने आवरण मे ढकी रहती है। यदि हम उसे कई बार पढ़ें और उसका विश्लेषण करें, तो उसका अन्तःसौन्दर्य प्रस्फुटित हो उठता है। एेसे स्थलों पर विचारों की गरिष्ठता तो रहती है किन्तु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्तःप्रवाह भी प्रशांत गति में आन्दोलित होता रहता है। सम्भवतः उपन्यासकार अपरिग्रह और निष्क्रियता में ही जीवन की पूर्णता का दर्शन करता है। भारतीय दर्शन का यही सार-तत्त्व है और इसी को जय ने आत्म

---

१७ जयवर्धन पृ० ३७२-७३।

सात् कर लिया है।

मुक्तिबोध

मुक्तिबोध में सहाय परामानसिक स्थिति के बहुत अच्छे उदाहरण कहे जा सकते हैं। उनके वैयक्तिक अचेतन में अधिकार एवं सत्ता के प्रति निःस्पृहता की भावना अपने प्रच्छन्नात्मक रूप में प्रवाहित है किंतु समष्टि मन में इस तथाकथित निःस्पृहता की ठीक विरोधी अर्थात् अधिकार एवं सत्ता के प्रति लिप्सा की भावनाएं अस्फुट रूप में प्रतिभासित होती हैं। सहाय ने गांधीवाद का लबादा जरूर ओढ़ रखा है पर उनका असली रूप प्रकट होते देर नहीं लगती। अपने कथन के साम्य में मैं निम्न उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा

(गांधी) समाधि बंद थी और घोर सन्नाटा था। ड्राइवर मुझे देख रहा था। देख रहा था कि मैं दरवाजे तक जाता हूँ और वहां चुपचाप खड़ा रह जाता हूं। दो एक मिनट बाद लौटता हूं और घूमता हुआ पांव पांव समाधि के दूसरी तरफ चला जाता हूं। मुझे मालूम नहीं होता लेकिन ड्राइवर धीमे धीमे चुपचाप गाड़ी उसी तरफ ले आता है। दूसरी तरफ के दरवाजे पर जहां सन्नाटा और भी घना है खड़ा हुआ मैं समाधि के अंदर देखता रह जाता हूं। चारों तरफ ऊंचा परकोटा है और ठीक मेरी आंखों के सामने से प्रकाशित एक खोह सी बनी है। उसके पार नहीं दीखता है। लेकिन मैं देख लेता हूँ कि समाधि है जिसके पत्थर हैं और वहां हे राम! जड़ा है। गांधी की अंतिम पुकार हे राम!

रघुपति राघव राजा राम। रघुपति राघव राजा—ऐसे राम कौन हैं? कहां हैं मेरे वह क्या हैं? लेकिन मेरे मन से भी निकलता है—हे राम! जी हुआ कि खड़ा ही रहूं अंदर से पुकारता रहूं—हे राम हे राम! कारण कहीं कुछ और नहीं बचा है एक राम की ही शरण रह गई है!

लौटकर सड़क पर आया तो गाड़ी खड़ी थी। मैंने ड्राइवर को कहा कि गाड़ी तुम ले जा सकते हो। लेकिन वह मुझे देखता रहा और गाड़ी ले जाने को तैयार न दीखा। मैंने फिर कहा कि गाड़ी ले जाओ जगह दूर तो नहीं है पैदल चला जाऊंगा। लेकिन वह मुझे किसी तरह नहीं समझ पाया और दरवाजा खोले खड़ा ही रहा। उसने मेरा घर देखा था जानता था कि फासला तीन मील का हो सकता है। मेरा मन उसकी बेबसी को देखकर कुछ झुंझलाया सही लेकिन मैं गाड़ी में बैठ गया। बैठते ही मालूम हुआ कि राम मुझसे दूर हो गया है संसार फिर आकर घिर गया है।[१८]

---

१८ मुक्तिबोध पृ० १०० १०१।

स्पष्ट ही यहा सहाय के मन पर गाधी का प्रभाव क्षणिक एव औपचारिक है। औपचारिकता भी एक आवश्यकता बन गई है अन्यथा लोगो को गाधी वाले नेताओ का विश्वास कैसे होगा ! ऐसा लगता है कि सहाय का ड्राइवर स्वय सहाय की तुलना मे उन्हे अधिक समझता है तभी तो उनके पुन-पुन कहने पर भी वह गाडी वापस नही ले जाता। अनुच्छेद की अन्तिम पक्ति म स्वय सहाय की स्वीकारोक्ति बडी सटीक है—'राम का दूर हो जाना' और 'सासारिकता का घिर आना' सहाय की वास्तविक मन स्थिति के परिचायक हैं। ऐसे प्रसगो मे जैनेन्द्र चित्रात्मकता का सहारा लेते हैं। समाधि यहा प्रयोजन बिंदु है और उसी को लेकर अतरात्मा की लहरें लहरा रही हैं किन्तु सहाय का समष्टि अचेतन यहा सक्रिय है और उसम उनका स्वार्थ और असली रूप झाक झाक जाता है जिसकी परिपुष्टि उनके नन्न करते हुए भी कार म जा बैठने से होती है। प्रस्तुत उद्धरण मे चित्रात्मकता के साथ ही साथ मनस्तत्त्व को उरेहते हुए व्यजना शक्ति को मुखर किया गया है। या गाधी-समाधि की साम्प्रतिकता भी स्वत मुखर है।

अनन्तर

'अनन्तर' जैनेन्द्र का आत्मकथात्मक अभिलेख है। इसमे कहानी एक परिवार के इर्द गिर्द ही मडराती रहती है और वह परिवार स्वय लेखक का है, ऐसे आभास अनेक स्थलो पर मिलते हैं। अनन्तर की केन्द्र बिंदु अपरा को कहा जा सकता है विभिन्न घटनाओं की सयोजिका और आकर्षण बिंदु भी वही है। यह अपरा विलायत म बहुत-कुछ देख भोग कर पुन भारत इसलिए लौटी है कि सम्भवत उसकी आत्मा को यहा शान्ति मिले। शान्ति के साथ इसके जो सबध हैं उनकी ध्वनि में हम परामानसिक स्थिति के दर्शन कर सकते हैं। अपरा ने चारु को एक विस्तृत पत्र लिखा जो अत्यन्त उन्मीलनकारी है

'चारु हम स्त्रियो के शरीर के प्रति पुरुष म बडा लालच होता है। यह हममे अपने को खाने को आतुर होना है लेकिन उसमे पहले चाहता है कि स्त्री भी अपने को लेकर उसमे खो जाए। पुरुष की यह लालसा स्त्री की शक्ति बन सकती है चारु बशर्ते कि स्त्री ऊपर से चाहे जो दीखे भीतर स ठण्डी बनी रह मुझे ठण्डी होने की जरूरत नहा होगी। विलायत म इतना कुछ देखा भोगा है कि अब चाह उपजती ही नही और चारु, इस सब और हम सबके पार ईश्वर है। असल म वही है उसमे ही सब जीन भरते हैं। यह ध्यान म रहे तो न स्त्री पुरुष के लिए और न पुरुष स्त्री के लिए रोक बन सकता है। तब लालसा उनमे पार जाती है वह अभीप्सा बन जाती है और व्यक्ति अटूट

बनता है। चारु तुम्हारे प्रादित्य महत्त्वाकांक्षी हैं ऊंची कामयाबी उन्हें पाना है लेकिन इस माग में महत्त्वाकांक्षी ही टूटते हैं मैं यह जानती थी और अचरज है कि मैं अब तक जीवित हूँ सफलता न जाकर अगर रह जाते तो शायद मुझे जान से मारे बिना न रहते एक तरह मुझे अपने मारने को यहा से गए हैं लेकिन डरो नहीं चारु तुम हो बच्चे हैं और उनके प्रताप से तुम देखोगी कि वह नए तरीके से जीना शुरू करेंगे नहीं जानती मैं तुम्हें क्या-क्या लिखना चाहती हूँ। जब सोचती हूँ कि तुम्हारी अपराधिनी हूँ तो जी होता है तुम्हारे भाग सुनीली हो जाऊ। जो जितना बन्धन में है उतना दुखी है। जितना निरावरण है उतना सुखी। चारु यह मैंने इसलिए कहा कि ईश्वर का जिसे भरोसा हो उसे फिर बन्धन का या किसी की क्या चिंता ? तुम भी एम रहोगी तो पति तुमसे ईश्वर दूर नहीं जा सकेंगे। लेकिन तुम पत्नी हो सब-कुछ तुम्हें देना है मैं पत्नी नहीं थी और इसीलिए जो कुछ नहीं दे सकी वह मेरी अपनी और अलग बात है लेकिन इसके बाद चारु बुरा न मानना अगर कहूँ कि तुम्हारे प्रादित्य को मैं प्यार करती हूँ। जिसे इतना कष्ट दिया है तुम्हीं सोचो उसे प्यार करने से कैसे बच सकती हूँ। उस कष्ट में मुझे वह पीट सके, मार डालने तक के किनारे आ गए तो उनके लिए क्या उनको कृतज्ञ होने से मैं बच सकती हूँ पर उनकी चाह मेरी लिपट टूटी कृतज्ञता से लौटकर पहुंचे चाहे उनको घायल करे पीछे भरपूर और सम्पन्न बनाएगी इसका मुझे विश्वास है तब तुम देखोगी कि तुम्हारा पति तुम्हें इतना मिला है कि अब तक नहीं मिला होगा।"[१९]

प्रस्तुत प्रकरण में भौतिक विलास से ऊबी हुई नारी की करुणा कथा है। यह युवती शरीर से प्रादित्य को कुछ न दे पाई किंतु बड़े आत्मविश्वास के साथ वह उसकी पत्नी चारु को उसे प्यार करने की बात कहती है। अपने पत्र के अंत में दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए अपरा ने कुछ संकेत-सूत्र दिए हैं जोकि मानवीय संबंधों की दृष्टि से अबूझ और जटिल ही कहे जा सकते हैं। पुन पुन शून्य बिंदुओं का प्रयोग कथन की तारतम्यता पर आघात करता है किन्तु यह बात भी सच है कि उच्चतर चिंतन की परामानसिक स्थिति में इस प्रकार का विचार-स्खलन सर्वथा स्वाभाविक है। इस पत्र की शब्दावली पर एक जटिल रहस्यात्मकता का पर्दा पड़ा हुआ है बहुत प्रयत्न करने पर ही कुछ सूत्र हाथ आ पाते हैं जैसे यह पत्र नहीं बल्कि ऊंचे दर्शन की दावा हो। उपन्यासकार की आस्था का स्वर अनेक स्थलों पर प्रस्फुटित

१९ अनंतर पृ० १४४-४५।

हुआ है, किंतु उसके आने से दार्शनिक सूत्र और भी जटिल बन गया है।

अपरा अपने अनुभवों से जान गई है कि अपने शरीर को पुरुष के प्रति समर्पित करने से तृप्ति हाथ नहीं लगेगी, इसलिए महज प्यार से वह उस तृप्ति को हस्तगत किया चाहती है। इस चिंतन के मूल में उसकी परामानसिक स्थिति की नैतिकता ही काम कर रही है, जो संयम और विवेक में ही जीवन की सिद्धि देखती है। प्यार तो एक प्रकार की सकामकता है, जिसने पहले आग्रिय को पछाड़ा और अब जो अपरा से दो दो हाथ करने की तयारी में है। मन की इस द्विविधा स्थिति का प्रस्तुत पंक्तियों में एक सटीक चित्र है। अचेतन में जमे हुए संस्कार अपरा का मार्गदर्शन करते हैं, और चेतन क्रिया कलाप में वह ऐसा कुछ भी नहीं कर पाती जो कि दूसरे के द्वारा चाहा जा रहा हो, अथवा जिसके प्रति स्वयं उसके मन में ममत्व एवं दुर्बलता हो। ऐसे स्थलों पर उपन्यासकार 'क्षण जाने क्षण ही की भाषा' के स्तर पर आ जाता है और अनेक अबूझ पहेलियों को बूझने का विफल प्रयत्न करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लेखक की अभिव्यंजना लड़खड़ा रही हो। मन की सूक्ष्म वायवी भावनाओं को पकड़ने के प्रयत्न में ही उपन्यासकार की यह नियति बनती है। यहां उपन्यासकार अपनी परिधि को लांघकर दार्शनिक परिधि में पहुंच जाता है। ऐसी मन स्थिति में कबीर ने सन्ध्या भाषा का प्रयोग किया था और जैनेन्द्र अस्फुट संकेत-सूत्रों से उसी सिद्धि को पाया चाहते हैं।

निष्कर्ष

(१) जैनेन्द्र के उपन्यासों में परामानसिक स्थिति के सर्वेक्षण के उपरान्त हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि उपन्यासकार को इस स्थिति के चित्रण में असाधारण सफलता मिली है। वैयक्तिक अचेतन और समष्टिगत अचेतन के द्वन्द्व को लेखक ने बड़ी ही सूक्ष्म एवं व्यंजनापूर्ण शब्दावली द्वारा उरेहा है। परामानसिक भावों के विविध आयाम कहीं संकेतात्मक रूप में तो कहीं सन्ध्या भाषा में प्रस्फुटित हुए हैं।

(२) पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में परवर्ती उपन्यासों में यह प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। कल्याणी व्यतीत जयवर्धन मुक्तिबोध और अनन्तर में इसके पुष्कल उदाहरण विद्यमान हैं। यहां यह बात भी उल्लेखनीय है कि लेखक क्रमशः भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हुआ है। भौतिक स्तर पर उसकी शैली में अधिक चटकीलापन है क्रमशः यह चटकीलापन क्षीण होता गया है और उपन्यासकार की जीवन्तता भी परवर्ती उपन्यासों में मन्द से मन्दतर पड़ती गई है।

(३) इस प्रकार के विवरणों में जनेन्द्र की भाषा-शैली एक नये विचार के साथ जीवन-असंगतियों का चित्रण करती है और अन्तश्चेतना में जो भी आड़ी-तिरछी रेखाएं होती हैं, उनका फोटोग्राफिक विवरण प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की असाधारण क्षमता ही उसकी भाषा-शैली में प्रकट होती है। वे मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों के अद्भुत शिल्पी हैं।

(४) परामानसिक स्थिति के चित्रण में अनेक स्थलों पर उपन्यासकार की भाषा-शैली क्लिष्ट रहस्यात्मकता के झीने आवरण में ढकी रहती है। यदि हम उसे कई बार पढ़ें और उसका विश्लेषण करें तो उसका अर्थ-सौंदर्य प्रस्फुटित हो उठता है। ऐसे स्थलों पर विचारों की गरिष्ठता तो रहती है किन्तु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्तःप्रवाह भी प्रशान्त गति से आन्दोलित होता रहता है।

(५) परामानसिकता की द्विविधा स्थिति का परवर्ती उपन्यासों में अत्यन्त सटीक विवरण मिलता है। समष्टिगत अचेतन में जमे हुए संस्कार पात्रों का अबूझ रूप में मार्गदर्शन करते हैं और चेतन क्रिया-कलाप में अथवा वैयक्तिक अचेतन में इससे विपरीत ही आचरण होता है। ऐसे स्थलों पर लेखक की अभिव्यंजना प्रायः लड़खड़ाने लगती है। मन की सूक्ष्म वायवी तरंगों को पकड़ने की स्थिति में ही उपन्यासकार की यह नियति बनती है। यहां उपन्यासकार घटना-परिधि को लांघकर दार्शनिक परिधि में पहुँच जाता है और प्रायः संध्या भाषा का प्रयोग करने लगता है।

परिच्छेद—९



शब्दशक्तिपरक अनुसधान प्रतीक-योजना

●○○

(१) शब्द-शक्तियो का पारिभाषिक विवेचन

सदर्भ

ध्वनि सिद्धात मुख्यत भाषा की अर्थ शक्ति या अर्थ व्यक्त करने की विभिन्न विधियो पर आधारित है। इसके प्रवर्तक ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन है जिनका जन्म लगभग आठवी-नवी शताब्दी मे हुआ। भारतीय आचार्यों ने शब्द-शक्तियो का विवेचन इन्ही के आधार पर प्रतिपादित किया है।

शब्द-शक्तियों के तात्पर्य

ससार मे जितने भी कार्य सम्पन्न होते हैं उनके मूल मे कोई-न-कोई शक्ति कार्य करती है। इसी नियम के अनुसार शब्द भी अपना कार्य अर्थ देने का कार्य जिस शक्ति के द्वारा सपादित करता है उसे शब्द की शक्ति या शब्द शक्ति कहा जाय तो अनुचित नही है।[1] शब्द-शक्तिया सामान्यत तीन प्रकार की हैं अभिधा लक्षणा और व्यजना।

अभिधा शक्ति से तात्पर्य

अभिधा की परिभाषा करते हुए विभिन्न विद्वानो ने इसे शब्द के मुख्य

१ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त पृष्ठ २७८।

अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)[२] या साक्षात् संकेतित अर्थ का बोधक व्यापार (पं० रामदहिन मिश्र)[३] अथवा शब्द के साक्षात् संकेतित अर्थ की प्रतीति कराने वाली शक्ति (डा० भोलाशंकर व्यास) कहा है। इन विभिन्न परिभाषाओं में सामंजस्य स्थापित करते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने एक सर्वमान्य परिभाषा देने का प्रयत्न किया है जो इस प्रकार है भाषा की जिस शक्ति से शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का बोध होता है वह अभिधा शक्ति कही जाती है।[५]

अभिधा के तीन प्रकार

अभिधा के द्वारा जिन शब्दों का अर्थ-बोध होता है उन्हें वाचक शब्द कहते हैं। इन वाचक शब्दों के भारतीय आचार्यों ने तीन प्रकार बताये हैं—(१) रूढ शब्द—जिनकी व्युत्पत्ति नहीं की जा सकती। जैसे पेड़ घोड़ा घड़ा आदि। (२) *यौगिक शब्द*—जहाँ दो अवयवों (*प्रकृति और प्रत्यय*) का योग होता है। जैसे भूपति (भू+पति) पाठशाला (पाठ+शाला) आदि। (३) योगरूढ—जिनमें उपयुक्त रूढ और योग दोनों प्रकार के सम्बन्धों का समन्वय हो जैसे गणनायक (गणेश) मृगनयनी।

लक्षणा शक्ति से तात्पर्य

प्राचीन आचार्यों ने लक्षणा शक्ति की परिभाषा सामान्यतः इस प्रकार दी है—मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढि या प्रयोजन के कारण जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो उसे लक्षणा कहते हैं।[६] इस परिभाषा का विश्लेषण करते हुए डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने लक्षणा शक्ति की तीन विशेषताएँ बतलाई हैं —(१) लक्षणा शक्ति में शब्द के वाच्यार्थ या मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित हो जाती है या वाच्यार्थ वहाँ अपने प्रचलित अर्थ में प्रस्तुत नहीं रहता परिवर्तित हो जाता है। (२) लक्षणा से प्राप्त लक्ष्यार्थ वाच्यार्थ से संबंधित होता है अर्थात् दोनों में कोई-न-कोई सम्बन्ध बना रहता है। (३) लक्षणा शक्ति के पीछे किसी विशेष रूढि या

---

२ रस मीमांसा पृष्ठ ३७१।
३ काव्यदर्पण पृष्ठ २०।
४ ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त पृष्ठ ६६।
५ साहित्य विज्ञान, पृष्ठ २८०।
६ काव्य दर्पण रामदहिन मिश्र पृष्ठ २१।

वक्ता के किसी विशेष प्रयोजन की प्रेरणा अवश्य रहती है।[7]

लक्षणा के प्रकार

लक्षणा शक्ति के प्रारम्भ म दो भेद किये गये हैं (१) रूढिलक्षणा (२) प्रयोजनवती लक्षणा। रूढिलक्षणा के पीछे रूढि की प्रेरणा होती है जबकि प्रयोजनवती म प्रयोक्ता का विशेष प्रयोजन होता है।

अभिधा और लक्षणा की भेदक विशेषता स्पष्ट करते हुए डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने कहा है जहा अभिधा का निवास अलग अलग शब्दो मे भी रहता है वहा लक्षणा की उद्दीप्ति शब्द-समूहो वाक्याशो या वाक्यो म ही होती है। जब प्रत्येक शब्द का मूल अर्थ वाक्यगत अर्थ के अनुकूल रहता है, तो समझना चाहिए कि वहा अभिधा है अन्यथा वहा लक्षणा या व्यजना होगी।[8] अत वाक्य-योजना के अन्तगत मूल शब्द का बदलना और न बदलना ही लक्षणा और अभिधा के बीच की सीमा रेखा है। वस्तुत जहा अभिधा का क्षेत्र शब्दो म सीमित है वहा लक्षणा का क्षेत्र शब्द-समूहो वाक्य-खडो और वाक्यो म व्याप्त है। मूल शब्द का अर्थ वाक्य के अन्तगत बदल जाने के कारण ही मुख्यार्थ की बाधा तत्सबधी अन्य अर्थ की उपलब्धि और चमत्कार की उद्दीप्ति होती है। तथाकथित रूढि-लक्षणा म ये बातें नही मिलती, जबकि मुहावरो और लोकोक्तियो मे—जो कि चमत्कारयुक्त वाक्यो या वाक्य-खडो के रूप मे प्रचलित होते हैं—ये मिलती हैं अत रूढिलक्षणा को अस्तित्वहीन मानते हुए हम मुहावरो एव लोकोक्तियो को लाक्षणिक प्रयोग के रूप मे स्वीकार कर सकते हैं।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयोजनवती लक्षणा ही वास्तविक लक्षणा है। इसके भी आचार्यों ने दो भेद किये हैं[9] (१) गौणी और (२) शुद्धा। शुद्धा के भी दो भेद—उपादानलक्षणा और लक्षण लक्षणा—किये गए हैं।[10] लक्षणा के ये ही दो प्रकार प्रचलित एव सवमान्य हैं।

उपादान लक्षणा

जब लक्ष्याथ मे वाच्याथ सम्मिलित रहता है अर्थात् जब वाच्याथ का

---

७ साहित्य विज्ञान, पष्ठ २८२।

८ साहित्य विज्ञान, पष्ठ २८५।

९ साहित्य विज्ञान पष्ठ २८५।

१० काव्य दपण रामदहिन मिश्र, पष्ठ २९ ३५।

सर्वथा त्याग नहीं होता इसे अजहत्स्वार्थी (अपने वाच्यार्थ को न छोड़ने वाली) लक्षणा भी कहते हैं। जैसे हाथ-पैर बचाते हुए काम करो। यहाँ हाथ-पैर का अर्थ शरीर के अंग होगा। शरीर के अंगों में हाथ-पैर भी सम्मिलित हैं।

लक्षण लक्षणा

जब लक्ष्यार्थ में वाच्यार्थ सम्मिलित नहीं होता अर्थात् जब वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग हो जाता है तो इसे जहत्स्वार्थी (अपने वाच्यार्थ को छोड़ देने वाली) लक्षणा कहते हैं। जैसे यह बालक सिंह है। यहाँ सिंह का अर्थ वीर होगा।[11]

व्यंजना-शक्ति से तात्पर्य

विभिन्न आचार्यों ने व्यंजना शक्ति की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं जिनमें से कुछ निम्नांकित हैं—

(क) आचार्य मम्मट अनेक अर्थ वाले शब्द का जब संयोगादि के द्वारा वाच्यार्थ नियत हो जाता है तब भी उस शब्द के किसी और अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है। वैसे ज्ञान के उत्पन्न करनेवाले व्यापार का नाम अंजना या व्यंजना है।[12]

(ख) आचार्य विश्वनाथ अपना अपना अर्थ-बोधन करके अभिधा आदि वृत्तियों के शान्त हो जाने पर जिससे अन्य अर्थ का बोधन होता है वह शब्द में तथा अर्थादिक में रहने वाली वृत्ति (शक्ति) व्यंजना कहलाती है।[13]

(ग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व्यंजना शक्ति ऐसे अर्थ को बतलाती है जो अभिधा लक्षणा या तात्पर्यवृत्ति द्वारा उपलब्ध नहीं होता।[1]

(घ) पं० रामशंकर मिश्र (अ) शाब्दी व्यंजना की परिभाषा संयोगादि के द्वारा अनेकार्थ शब्द के प्रकृतोपयोगी एकार्थ के नियन्त्रित हो जाने पर जिस शक्ति के द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान होता है वह अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है। लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना उस शक्ति को कहते हैं जिससे प्रयोजन के निमित्त लक्षणा का आश्रय लिया जाता है।[15]

---

११ अलंकार-परिचय नरोत्तमदास स्वामी पृष्ठ ६१ ६२।
१२ काव्यप्रकाश मम्मट पृष्ठ २८।
१३ साहित्य दर्पण विश्वनाथ।

(आ) आर्थी व्यजना जो शब्द शक्ति वक्ता, बोधव्य, चेष्टा आदि की विशेषता के कारण व्यग्याथ की प्रतीति कराती है, वह आर्थी व्यजना कही जाती है।[१६]

इन सब परिभाषाओ के आधार पर डा० गणपतिचन्द्र गुप्त न निष्कप रूप मे एक सवमान्य परिभाषा देने की चेष्टा इस प्रकार की है व्यजना भाषा की वह शक्ति है जिसके कारण किसी प्रकरण या प्रसग विशेष म एक साथ अनेक स्वतन्त्र अर्थों की अभिव्यक्ति या प्रतीति होती है।[१७]

शाब्दी और आर्थी व्यजना की परिभाषा प० नरोत्तमदास स्वामी ने इस प्रकार की है जब व्यजना शब्द म हो। व्यजना शब्द मे है यह तब कहा जाता है जब उस शब्द को बदल दने स व्यग्याथ नष्ट हो जाय।' जसे—

चिरजीवो जोरी जुर क्यो न सनेह गँभीर।
को घटि ? ए वृषभानुजा वे हलधर क वीर॥

राधा-कृष्ण की यह जोडी चिरजीवी हो। परस्पर गहरा प्रेम क्यो नही जुडे ? दोनो मे कौन घटकर है ? यह वृषभानुजा है तो वे हलधर के भया हैं।

यह वाच्याथ है। पर वृषभानुजा और हलधर शब्दो के अनेकाथ होन के कारण एक दूसरा अथ भी ध्वनित होता है—ये वृषभ की अनुजा (बल की छोटी बहिन हैं), तो व हलधर (बल) के भया है। यह दूसरा अथ व्यग्याथ है। यहा शाब्दी व्यजना है क्योकि वृषभानुजा और हलधर के स्थान पर 'वृषभानु सुता' और बलराम शब्द रख दिय जायें ता उक्त व्यग्याथ नष्ट हो जायेगा।

आर्थी व्यजना—जब व्यजना अथ म हो, अर्थात् शब्द के बदल दन पर भी व्यग्याथ निकलता रह। जस—सध्या हो गई।

यहा वाच्याथ है—सूर्यास्त का समय हो गया।

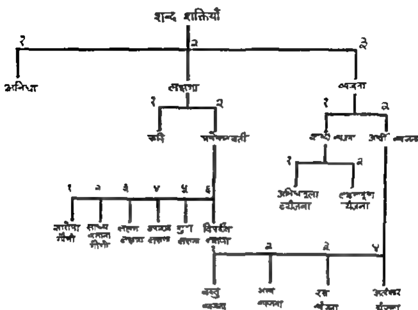
व्यग्याथ होगा—घूमने को चलने का समय हो गया।[१८]

शब्द शक्तियो के तात्त्विक विवेचन के उपरान्त अब हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि जनेन्द्र क उपन्यासो म इनकी क्या अवस्थिति है। आरम्भ म ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि शब्द शक्तिया मुख्यतया काव्यानुशीलन मे सहायक होती हैं उपन्यास के सदभ म इनको अक्षरश लागू नही किया जा सकता।

अभिधा शक्ति का उपयोग तो सभी उपन्यासकार करते हैं इसम कोई वशिष्टय नही है पर लक्षणा और व्यजना के प्रयोगो का अध्ययन हमारे लिए

---

१६ काव्य दपण रामदहिन मिश्र, पष्ठ ३५ ३८।
१७ साहित्य विज्ञान गणपतिचन्द्र गुप्त पष्ठ २८०।
१८ अलकार परिचय नरोत्तमदास स्वामी पष्ठ ६३ ६४।



१० वृन्त च्युत फूल की तरह उसका मन टूटकर धूल में लोट रहा है। (पृष्ठ १६) —सारोपा गौणी लक्षणा

११ कट्टा लकड़ी के ठूंठ की नाईं काठ-मारी खड़ी थी। यह कैसी आवाज आई—कट्टा और उसी के साथ हँसी का ठहाका। (पृष्ठ १८) —उपादान लक्षणा

१२ इस गूंथन के साथ न जाने और क्या गूंथ दिया गया है। सो उसका अधिकारी मैं कैसे बन जाऊं? (पृष्ठ १९) —भाव व्यंजना

१३ पर सत्यधन को (क्या शेक्सपीयर से कम आँखें हैं?) जूलियट से कम का स्वप्न वह किसी तरह नहीं देख सकते (उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि शकुन्तला होना अब बन्द हो गई है।) होनी हैं पर भाग्य चाहिए और वह अपने भाग्य को हेय मानने को तैयार नहीं है। (पृष्ठ २१) —(अ) लक्षणा-लक्षणा —(ब) भाव व्यंजना

१४ गरिमा इण्टरेंस भी पार कर चुकी है और किशोर-वय भी। अब यौवन वसन्त की देहली पर खड़ी उस वसन्तोद्यान की झाँकी ले उठी है। वसन्त की वायु झोंके ले-लेकर आती और उसके शरीर पर अपना नशा फेंक जाती है। यानी दर में देहलीज से उतर कर वह भाग बढ़ चलेगी वह चलेगी। चलने से पहले वह अपने को चाह से भरपूर भर लेगी जिससे यह चाह उसे यौवन के काल में उड़ाए ले चले उड़ाए ले चले। (पृष्ठ २३) —सारोपा गौणी लक्षणा

१५ समझ गए इस परमाथ के काम के लिए बिहारी को ही (पकाया जा रहा दीखता है।) (पृष्ठ २७) —वस्तु यजना

१६ कहकर वह भट मे भाग छूटी और पास के एक दरख्त पर चढ गई। जैसे अभी बदर की आत्मा उसम आ गई हो। (पृष्ठ ३२) —लक्षण लक्षणा

१७ चचलता स नही सुष्ठु गाम्भीय से भरा बालोचित औत्सुक्य की जगह स्नेहाभिषिक्त प्रणयाकाक्षा से खिलता हुआ यह विह्वलता बरसाता चेहरा कट्टो का नही है। (पृष्ठ ३८) —भावव्यजना

१८ परा का पाकर कट्टो ने अश्रु-जल से उनका खूब ही अभिसिचन किया। (पृष्ठ ३८) —प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा

१९ पर आसुओ से धोये जा रहे है और मन देह के बधन मे स फट निकल कर बह रहना चाहता है। (पृष्ठ ३९) —भावव्यजना

२० इधर कट्टो सौभाग्य के पहाड के नीचे दबकर अचेतन सी हो गई। (पृष्ठ ३९) —अलकार व्य जना

२१ अपनी अकेली बेटी को—जो विधवा है और बच्ची है इस (चूसने की घात लगाए बठी दुनिया) मे छोड जान की तयारी करती हुई दुखिया मा के कलजे मे निकला यह दद सत्य ने वरदान रूप मे स्वीकार किया। (पृष्ठ ४३) —आर्थी व्यजना वस्तु यजना

२२ खीर क भोजन म यह नौन की अनी मुह बिगाड गई। (पृष्ठ ४३) —वस्तु यजना

२३ यह जानकर सत्य पर बफ सा पड गया। बिहारी से किस मुह से मिलेगा। (पृष्ठ ४६) —सारोपा गौणी लक्षणा

२४ फिर अपनी अग्रेजी डिग्री को, चोगो और मनदा का खूटी पर लटका कर कहूँगा—लाओ वह रही तुम्हारी वकालत और वह रही तुम्हारी अग्रेजी। उन्हे हाथ जोडो मुझे छोड दो। मुझे चुपचाप किसान बन कर रहने दो। (पृ० ५१ ५२) —भावव्यजना

२५ खेत म बठे-बठे इस तरह जो बगीचे उसने बनाए और किले खडे किए उन सबके बीच म आ प्रतिष्ठित होती थी वही कट्टो! (पृष्ठ ५२) —गौणी लक्षणा साध्यवसाना

२६ इस आमद-खच की हिसाबी सूक्ष्म बुद्धि पर चढकर जब वह तौलने बठता है तो वह देखता है कट्टो की ओर आमद नही खच ही खच है। (पृष्ठ ६१) —वस्तुव्यजना

शब्द शक्तियाँ

- १ अभिधा
- २ लक्षणा
  - १ रूढ़ि
  - २ प्रयोजनवती
    - १ सारोपा गौणी
    - ६ विपरीत लक्षणा
- ३ व्यंजना
  - १ शाब्दी व्यंजना
    - १ अभिधामूला व्यंजना
    - २ लक्षणामूला व्यंजना
  - २ आर्थी व्यंजना
    - १ वस्तु व्यंजना
    - ३ रस व्यंजना

१० वृन्त च्युत फूल की तरह उसका मन टूटकर धूल में नाच रहा है। (पृष्ठ १६) —सारोपा गौणी लक्षणा

११ बट्टा लड़का के ठूंठ की नाई काठ-मारी खड़ा थी। यह कभी आवाज आई—बट्टा और उसी के साथ हँसी का ठहाका। (पृष्ठ १८) —उपादान लक्षणा

१२ इस गुपन के साथ न जाने और क्या गूथ दिया गया है। सो उसका अधिकारी मैं कब बन जाऊं ? (पृष्ठ १६) —भाव व्यंजना

१३ पर सत्यधन की (क्या शेक्सपीयर से कम मानते हैं ?) जूनियर से कम का स्वप्न वह किसी तरह नहीं देख सकते (उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि शकुन्तला होना अब बन्द हो गई है।) होनी है पर भाग्य चाहिए और वह अपने भाग्य को हेय मानने को तैयार नहीं है। (पृष्ठ २१) —(अ) लक्षण-लक्षणा —(ब) भाव व्यंजना

१४ गरिमा दस्तूर से भी पार कर चुकी है और किशोर-वय भी। अब यौवन वसन्त की देहली पर खड़ी उस वसन्तोद्यान की मादी न उठी है। वसन्त की वायु आकर ले-लेकर आती और उसके शरीर पर अपना नशा फेर जाती है। थोड़ी देर में देहलीज से उतर कर वह आगे बढ़ चलेगी वह चलेगी। चलने से पहले वह अपने को चाह से भरपूर भर लेगी जिससे यह चाह उसे यौवन के बाग में उड़ाए ले चले उड़ाए ले चले। (पृष्ठ २३) —सारोपा गौणी लक्षणा

१५ समझ गए इस परमार्थ के काम के लिए बिहारी को ही (पकाया जा रहा दीखता है।) (पृष्ठ २७) —वस्तुव्यजना

१६ कहकर वह झट से भाग छूटी और पास के एक दरख्त पर चढ गई। जसे अभी बदर की आत्मा उसम आ गई हो। (पृष्ठ ३२)

—लक्षणा-लक्षणा

१७ चचलता से भरी, सुष्ठु गाम्भीर्य से भरा, बालोचित औत्सुक्य की जगह स्नेहाभिषिक्त प्रणयाकाक्षा से खिलता हुआ यह विह्वलता बरसाता चेहरा कट्टो का नहीं है। (पृष्ठ ३८) —भावव्यजना

१८ परा को पाकर कट्टो ने अश्रु-जल से उसका खूब ही अभिसिंचन किया। (पृष्ठ ३८) —प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा

१९ पैर आसुओ से धोये जा रहे हैं और मन देह के बधन म स छट निकल कर वह रहना चाहता है। (पृष्ठ ३९) —भावव्यजना

२० इधर कट्टो सौभाग्य के पहाड के नीचे दबकर अचेतन-सी हो गई। (पृष्ठ ३९) —अलकार व्यजना

२१ अपनी अकेली बेटी को—जो विधवा है और बच्ची है इस (चूसने की घात लगाए बठी दुनिया) म छोड जाने की तयारी करती हुइ दुखिया मा के कलेजे स निकला यह दद सत्य ने वरदान रूप म स्वीकार किया। (पृष्ठ ४३) —आर्थी व्यजना वस्तुव्यजना

२२ खीर के भोजन म यह नौन की अनी मुह बिगाड गई। (पृष्ठ ४३)

—वस्तुव्यजना

२३ यह जानकर सत्य पर बर्फ-सा पड गया। बिहारी म किस मुह से मिलेगा। (पृष्ठ ४६) —सारोपा गौणी लक्षणा

२४ फिर अपनी अग्रेजी डिग्री को चोगो और सनदो का खूटी पर लटका कर कहूँगा—लोगो यह रही तुम्हारी वकालत और यह रही तुम्हारी अग्रेजी। उन्हें हाथ जोडो मुझे छोड दो। मुझे चुपचाप किसान बन कर रहने दो। (पृ० ५१ ५२) —भावव्यजना

२५ रेत म बठे-बठे इस तरह जो बगीचे उसने बनाए और किले खडे किए उन सबके बीच म आ प्रतिष्ठित होती थी वही कट्टो। (पृष्ठ ५२)

—गौणी लक्षणा साध्यवसाना

२६ इस आमद-खर्च की हिसाबी सूक्ष्म बुद्धि पर चढकर जब वह तौलने बठता है तो वह देखता है कट्टो की ओर आमद नही खर्च-ही खर्च है। (पृष्ठ ६१)

—वस्तुव्यजना

२७ इस कल्पनातीत बात—इस अमोल दाँव के आगे तत्त्वज्ञता की सुसन्नद्ध नक्र-सेना के रहते भी सत्य सिटटी भूल गए।' (पृष्ठ ७८)
(१) गौणी सारोपा लक्षणा
(२) गौणी लक्षणा साध्यवसाना

२८ आगू डरकना बन्द हो गया है मह के बाद अब चान्दनी मानो मुह पर थिरकने को हो रही है—यह अब ताजी धुली हुई बूटों की निर्मल कौमुदी मानो हँस देगी। (पृष्ठ ८१) —अलंकार व्यंजना

२९ यह सुहाग बूटों का उतरन है। (पृष्ठ ८५) —वस्तुव्यंजना

३० दुनिया का आठवाँ आश्चर्य उतरकर मानो गाँव आ गया है। (पृष्ठ ९३)
—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

३१ वह इतना हरी हो गई जैसे बारिश से भरी धुली नई फुलवारी हो। (पृष्ठ ९७) —उपादानलक्षणा

३२ उनहार मनुहार छीन झपट गुदगुदाहट और जबरदस्ती आदि आदि बहुत-सा व्यंजन भी थाली के व्यंजनों में मिल गए। (पृष्ठ १०२ ३)
—वस्तुव्यंजना

उपन्यास सुनीता

१ मैंने इन पिछले दिनों अपने में से क्या खो दिया है कि उनके सामने फूल सी खिल नहीं जाती हूँ? (पृष्ठ ८) —सारोपा गौणी लक्षणा

२ सुनीता अपने घर में घन निरानन्द को हृदयंगम करती है और जब सोचती है कि यह कैसे हटे तो अस्पष्ट रूप में ही वह पाती भी है कि अपने जीवन और घर के किवाड़ और खिड़कियाँ खोल दे खूब हवा आने-जाने दे, तभी ठीक होगा। (पृष्ठ ८) —वस्तुव्यंजना

३ और तुमको यह भी क्या मालूम है कि साधूपन में निरा रेत-ही रेत है पानी कहीं भी नहीं है। (पृष्ठ १०) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

४ मैं अपनी सहानुभूति पर कोई भूगोल की सीमा न चढ़ने दूँगा। (पृष्ठ १६) —शुद्धा लक्षणा

५ कमर पर कसी धोती का फेंटा जैसे कहता था कि कोई अवश्य परास्त होगा। (पृष्ठ २३) —प्रयोजनवती लक्षणा

६ इन प्यारी प्यारी जिल्दों को यों एक पर एक सिर टेके कवायद सी में प्रस्तुत रखने में किसकी चिन्ता व्यय हुई है! (पृष्ठ २८)
—वस्तुव्यंजना

७ उसने शों को औंधा मेज पर रख दिया[1] और वह टहलने लगा। मन म उसके उठा कि विवाह और पत्नीत्व ऐसी क्या वस्तु हैं कि स्त्री अपना नाम भी खो दे और अमुक एक पुरुष के नाम को अपने ऊपर छत्र की भांति लेकर उसके नीचे उसकी सम्पत्ति हो रहे ?[2] (पृष्ठ ३०)

—(१) उपादानलक्षणा, (२) सारोपा गौणी लक्षणा

८ बहुत हैं जो धन से भरे हैं और मन से खाली हैं। तब धन से खाली होना क्या कुछ उजली बात नही हो सकती ? (पृष्ठ ३७)

—लक्षण लक्षणा

९ लेकिन वह तो कमरे के बाहर तर गई।[1] उस समय उसकी रेशमी साड़ी की धानी आभा ही कांपती हुई झलमल झलमल हरिप्रसन्न की आंख में रह गई। (पृष्ठ ३६) —(१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

—(२) भावव्यंजना

१० वक्त को जब हरिप्रसन्न नहीं काट पाता (तब खाली रहकर वही हरिप्रसन्न को काटता है।) (पृष्ठ ८३) —वस्तुव्यंजना

११ किन्तु पास जाकर देखा तो हरि दानो (हथेलियां पर ठोडी रखे उंगलियां से कनपटी पकड़, सामने बिछे कागज पर काली लकीरो से बन आल जाल को एसा खोया)[1] सा देख रहा है, मानो (वहां उसके प्राण कील दिये गये हो।)[2] (पृष्ठ ८८) —(१) भावव्यंजना

—(२) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

१२ (हरिप्रसन्न के रूप पर अलक्ष्य भाव से मानो पानी म भरा हलका-सा बादल आ गया, उस रूप की खिलती हुई धूप कुछ जसे छिन गई)[1] उसने कहा ('एक रोज उनके हाथ की रोटी तुम्हें न मिलेगी इसकी चिन्ता होती है।)[2] (पृष्ठ ६०) —(१) अलंकारव्यंजना

—(२) भावव्यंजना

१३ जो तीखी धार सब-कुछ काट देगी स्वच्छ तरलता को वही किस दांत से काट सकती है ? तीखे की पन की स्पर्धा यहीं कुंठित होती है। (पृष्ठ ६३) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

१४ रुपया क्या है ? वह धातु नही है ? मिट्टी नही है ? वह तो मल है, जो मल का पोषण करता है। फेंकने मे ही उसकी कृतार्थता है। (पृ० १०३) —प्रयोजनवती लक्षणा

१५ फटी पुस्तक की आड बनाने की इस व्यक्ति से बचने के लिए क्या जरूरत है ? यह तो यो ही नख-दन्त विहीन मनुष्य है। (पृष्ठ १०७)

—लक्षणामूलक व्यंजना

१६ (श्रीकान्त घुना रहता है। उसने चाहा है कि हरिप्रसन्न भी बिल्कुल गुरुवर यहां रह किन्तु वह किस भांति अपने को खोलकर रखे यह हरिप्रसन्न स्वयं नहीं जानता।)[1] मानो कि कुछ भीगए उसके अन्दर बन्द है कुछ कुत्सित कुछ कुटिल, (क्या खोलकर उन्हीं रेंगते हुए सर्पों को अपने बाहर कर देना होगा कि बाहर वे अपना विष फैलाए।)[1] छि छि उन जन्तुओं के तो भीतर ही बन्द रहने में कुशल है।
(पृष्ठ ११५) —(१) भावव्यंजना
—(२) सारोपा गौणी लक्षणा

१७ बनावार भरवता न रहे उद्भ्रान्त न रहे किसी प्रयोजन में नियोजित कर लिया जाए तो वह बड़ी शक्ति बन जाता है नहीं तो वह अपने को ही खाता है। (पृष्ठ १३६) —वस्तुव्यंजना

१८ मन-ही-मन में वह "गाय" स्वयं इस बात को अस्वीकार नहीं कर पाता है कि रिवाल्वर में उसके (मन की गांठ ही मूर्तिमान है।)[1] (राह बड़ी है सो उसमें बचने के लिए मानो यह रिवाल्वर का पास-कट है।)[1]
(पृष्ठ १३६) —(१) रूढ़ा लक्षणा
—(२) प्रयोजनवती लक्षणा

१९ क्या मुझे उन्हें जाकर यह सुनाना होगा कि वह रानी माता नहीं हैं वह पतिव्रता गृहस्थिन हैं? (पृष्ठ १५३) —वस्तुव्यंजना

२० वह मानो इस (अनबूझ विश्व ग्रंथ में उलट गए हुए एक अर्द्ध विराम के चिह्न की भांति)[1] वहां बैठा था मानो निखिल प्रवाह के बीच के क्षण की एक चुप को चिह्नित करने के लिए ही वह है अन्यथा वह कुछ नहीं है (मात्र एक काली बूंद है।)[1] (पृष्ठ १८२)
—(१) अलंकारव्यंजना
—(२) सारोपा गौणी लक्षणा

उपन्यास त्यागपत्र

१ उन बुआ की याद जैसे मेरे सब-कुछ को लट्टा बना देती है। (पृष्ठ ५)
—भावव्यंजना

२ बुआ का तब का रूप सोचता हूं तो दंग रह जाता हूं। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। (जब देता है तब कदाचित् उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन-ही-मन नीयत उसकी रहती है।)
(पृ० ६ ७) —वस्तुव्यंजना

३ मास्टर देखते इस तरफ है तो वह आंख किसी और ही तरफ देखती है। (पृ० ७) —वस्तुव्यंजना

४ उनका चेहरा मानो राख मे पुत गया था । ऐसा लगता था कि मां अगले क्षण अपने को ही बत से न उधेड़ने लगें । (पृ० १३)
—भावव्यंजना

५ बुआ के अक म चुपचाप गावद-सा पड़ा रहता । (पृ० १५)
—सारोपा गौणी लक्षणा

६ मा स कह दिया कि तू राक्षस है और मैं इस घर म पैर भी नही रखूगा । (पृ० १५) —लक्षणा-लक्षणा

७ बुआ के उस आसू भरे मुखड़े के आगे मेरी हठ बिल्कुल गल गई । (पृष्ठ १६) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

८ हमारी बुआ फूल-सी थी । (पृ० १७)
—सारोपा गौणी लक्षणा एव भावव्यंजना

९ तेरी मा ने मुझे (धक्का देकर पराया बना दिया है ।)[1] पर मुझे जहा भेज दिया है अमोद (मेरा मन वहा का नही है ।)[2] (पृ० १८)
—(१) वस्तुव्यंजना (२) भावव्यंजना

१० इस पर उन्होंने अपनी मुटठी स दबी कागज की गाठ को खोला और दोनो हाथो के जोर से उस छोटे से कागज के हजारो टुकड़े कर डाले और उन सबको मुड़ी-मुड़ी करके मेरी तरफ फेंक दिया । कहा, (यह है दवा जाओ ले जाओ ।) (पृष्ठ २४) —वस्तुव्यंजना

११ बल्कि उन्होंने तो परोक्ष म फूफा को काफी (सद-अम) तक कह डाला (पृ० २६) —सारोपा गौणी लक्षणा

१२ अपन (फूफा की चीज) को छीनने वाले तुम होते कौन हो ? ?
(पृ०२७) —अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

१३ इस बार पुस्तक कोई साथ नही ले जायेंगी पुस्तकें अच्छी चीज नही होती, उन्हे अच्छी नहीं लगती । (पृ० ३४) —वस्तुव्यंजना

१४ कन्या जाति क्या अपने पिता के घर की होती है ? मैं कोई निराली जन्मी हू ? (पृ० २७) —वस्तुव्यंजना

१५ हमारे यहा का पानी और घी दूध कैसा है, आप जानते ही है । मसल है (घी और मरद पछाह का ।) (पृ० ३८) —रूढा लक्षणा एव प्रयोजनवती लक्षणा

१६ पर आप देखिएगा कि वहा पहुचकर थोड़े ही दिन मे (तबियत हरी) हो जाती है और सच पूछिए तो (छोटे-मोटे रोगो का परवाह करना उनकी परवरिश करना है । सौ दवाओ की एक दवा है बेफिक्री ।)
(पृ० ३८ ३९) —रूढा लक्षणा एव प्रयोजनवती लक्षणा

१७ बाबूजी की बुद्ध (दबी हुई स्थिति)[१] की झलक उनके चहरे पर देखकर बड़ी खीझ मालूम हो रही थी। पर जाने मुझे क्या चीज रोक रही थी कि मैं (फट नहीं पड़ा।)[२] (पृ० ३६) —(१) वस्तुव्यंजना
—(२) भावव्यंजना

१८ तब मैं (छाती निकालकर चलता) हुआ फूफा के सामने खड़ा हो गया। (पृ० ४०) —प्रयोजनवती लक्षणा एवं लक्षणामूला व्यंजना

१९ उस समय मेरे मन में हुआ था कि उल्टे वे ही मुझसे इकन्नी ले लें चाहे दुअन्नी ले लें पर इन मेरी बड़ी-बड़ी नोकीली मूछों को खींचना कैसा मालूम होगा यह जानना चाहता हूं। हो तो चलो इस बात की अठन्नी ही दे दूगा। (पृ० ४०) —भावव्यंजना

२० (पतिव्रता रहन पूतों फलन बड़भागिन होने आदि के आशीर्वाद उन्होंने एक प्रगाल्भ भाव में दिए)[१] कि मानो (उनके नीचे वे गड़कर मर भी जाएँ तो धन्य हो जाए।)[२] (पृ० ४२)
—(१) रूढ़ा (प्रयोजनवती) लक्षणा
—(२) लक्षणामूला व्यंजना

२१ मेरे रहते क्या चली जा रही है? और ये फूफा कौन बला हैं कि ले जाएंगे? ले जाए तो ले जाए। जाएं मेरे टलें तो! (पृ० ४३)
—भावव्यंजना

२२ फूफा ने समोद भाव से कहा प्रमोद साहब! आदाब अर्ज है। मैं मानो घूट पीता हुआ खड़ा था। (पृ० ४४) —भावव्यंजना

२३ (फिर भी उत्तर नीरव भाषा में सदा मुखरित है।) अखिल सृष्टि स्वयं में उत्तर ही तो है। अपने प्रश्न का वह आप ही तो उत्तर है। (पृ० ४५)
—अलंकारव्यंजना

२४ मैं अपनी (ध्यय प्रतिष्ठा के कूट पर बटा [redacted]।)[१] कामयाब वकालत और इसी जजी के इतने मोटे शरीर में क्या राई जितनी भी आत्मा है।)[२] (पृ० ४५) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा
—वस्तुव्यंजना

२५ नयी परिस्थितियां मिलीं नये दोस्त मिले (निगाह फैलती गई और जिन्दगी की ख्वाहिशें मुह खोलकर सामने आई। बुआ की याद धीमे धीमे धीमी हो गई।) (पृ०४६) —अलंकार व्यंजना

२६ अपना पढ़ना लिखना कुछ भी नहीं जब देखो बुआ बुआ। तेरी बुआ मर गई!—हां तो! खबरदार, जो अब बुआ की बात मुझसे की। (पृ० ५०) —भावव्यंजना

२७ बात यह है कि मेरे ब्याह की बातचीत के सूत को उठाकर इस बार मा उसम पक्की गाठ दे देना चाहती थी। (पृ० ५२)

—प्रयोजनवती लक्षणा

२८ जगह को अच्छी कौन कहता है ? पर जगह तो है। (कभी जगह भर होने का भी सवाल बडा होता है।) तुम साफ कहो न प्रमोद, कि क्या तुम्हारी समझ मे नही आता है ? (पृ० ६४)

—रूढा एव प्रयोजनवती लक्षणा
तथा वस्तु व्यजना

२९ तुम समझते हो, यह आदमी जिसके साथ मैं रह रही हूं, ज्यादा दिन रख सकेगा ? नही मैं जानती हू एक दिन यह मुझे छोडकर चला जायेगा। तभी इस कोठरी से मेरे उठने का दिन होगा। (पृ० ६४ ६५)

—वस्तु व्यजना

३० पर मुझे ऐसा लगा कि उनकी आखो मे अब भी मैं काटा हूं। इसकी वजह भी मुझे दीखी कि मेरी उपस्थिति उनको खटके। (पृ० ६७)

—रूढा एव प्रयोजनवती लक्षणा

३१ एक बार घर आकर मैं समझ गई थी कि वसे मके जाना ठीक नही है। स्त्री जब तक ससुराल की है तभी तक मके की है। ससुराल से टूटी, तब मके से तो आप ही मैं टूट गई थी। (पृ०६८)

—वस्तुव्यजना

३२ वह विघ्नो की तरफ से अधा होकर मेरे पास आया। (पृ० ६६)

—गौणी साध्यवसाना लक्षणा

३३ जसी मैं उसकी प्यारा थी और प्यारी हू वह मैं ही जानती हू। उसे अपने मोह का ही प्यार था। (पृ० ७०) —वस्तुव्यजना

३४ मानो समय जमकर खडी शिला हो गया। नीरवता ऐसी हो आई कि हमारे सास ही हम हाय-हाय शोर करते हुए जान पडने लगे। ऐसे कितना समय बीता। त्रास दुवह हो गया। (पृ० ७३) —वस्तुव्यजना

३५ (हा रे जरूर शरीक होऊगी। मैंने करम जो किये है ! बातचीत पक्की हो गई ?) (पृ० ७५) —लक्षणामूला व्यजना

३६ उसके कारण इस दुनिया का बहुत कुछ व्यथ और निकम्मा मालूम होता था, सुख नीरस जान पडता था और दुख सार। (पृ० ८०)

—प्रयोजनवादी लक्षणा

३७ जो भेला है सब पी गई है। सब का रस बन गया है। खार कोई नहीं है। (पृ० ८७) —वस्तुव्यजना

३८ धून में मैं न्हठकर उसी के निर्जीव सूख पिंजर को तू हठपूर्वक सामने लाकर सत्य कहना चाहता है यही झूठ है। (पृ० ८६)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा
और प्रयोजनवती लक्षणा

३९ राजनन्दिनी ने एक बार सामने पड़ी तो सिन्दूरिया हो गई और पल में आगे दूसरा पल वहां नहीं ठहरी भाग आई। (पृ० ९०)

—भावव्यंजना

४० खूब कमा और कमाकर सब इस गड्ढे में ला पटका कर। सुना कि नहीं ? रुपए के जोर से यह नरक-कुण्ड स्वर्ग बन सकता है ऐसा तो मैं नहीं जानती। फिर भी रुपया कुछ-न-कुछ काम आ सकता है। (पृ० १०२)

—सारोपा गौणी लक्षणा

४१ वे धुआं जिन्होंने बिना लिये दिया जिन्होंने कुछ किया मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद मेरे भीतर अब अंगार-सी जलती है जिनका जीवन कुछ हो ऊपर उठती लौ की भांति जलता रहा। धुआं उठा तो उठा पर लौ प्रकाशित रही! (पृ० १०४) —लक्षणामूला व्यंजना

उपन्यास कल्याणी

१ मैंने चाहा कि उधर ध्यान न दूं। सोच लूं कि संसार है नाक करते बैठना शोभा नहीं देता। (ऐसे संसार काटना दूभर होता है। यहां आंख मूंद जिए जाओ और क्या! हलके रहो और खुशी से हटकर गिरो तो भी खुशी पर ही गिरो। रज को पीठ दिए रहो। बुद्धि मानो इसी का नाम है!) (पृ० १०)

—वस्तुव्यंजना

२ पर उस (बिगड़ती सी स्थिति को एकदम अपने हाथों में लेकर कल्याणी ने) श्रीधर की ओर देखते हुए कहा—क्या आप जाइएगा ? (पृ० १४)

—प्रयोजनवती लक्षणा

३ कविता कुछ ऐसे तल्लीन भाव से सुनाई गई कि जब वह पूरी हुई तब उसके बाद भी कुछ क्षणों तक मानो वह प्रवाहित ही रही मानो हवा में अभी घुमड़ ही रही हो। समय बंध गया था और कविता की ही वहां एक गति थी। (पृ० १५)

सारोपा गौणी लक्षणा

४ मुझे सन्देह है कि मैं रोगियों का इलाज करती हूँ। (मालूम होता है कि मैं पैसा कमाती हूं। (पृ० २१)

—अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

५ बोली—ओ, अच्छा! आपको जो कष्ट दिया उसके लिए क्षमा चाहती हूँ। अब कष्ट नहीं दूंगी। (लेकिन स्त्री की कोई बात सच नहीं माननी चाहिए।) (पृ० २२)

—वस्तुव्यंजना

६ प्रतीत हुआ कि सन्त तक्लीफ की बातें ही उनके मन को नहीं घेरे रहती है। (चुहल का भी वहा काफी अवकाश है)[1] पर ऐसे समय वह और भी अनबूझ दीखती है।)[2] (पृ० २३)

—(१) भावव्यजना

—(२) वस्तुव्यजना

७ उन्होंने हँसकर कहा—आप मुझसे डरिए नहीं और (मुझे निर्दोष भी न मानिएगा। स्त्री निर्दोष हो सकती है? पहला दोष तो यही है कि वह स्त्री है।) (पृष्ठ २७) —वस्तुव्यजना

८ कह तो रहा हूँ कि वह अब कोठरी म मुर्दा पडी है। (पृ० ३०)

—लक्षणा लक्षणा

९ मैंने कहा—(यह सवाल करने लायक अब आप नहीं रही हैं।) हँसकर बोली—(हा मैं किसी लायक नहीं हूँ।) मैंने कहा—(गनीमत है कि आप यहा से जाने लायक हैं।) वह बहुत हँस आई। बोली—यही बात है। (मैं हर घर से निकलने लायक अवश्य हूँ।) (पृ० ३७)

—भावव्यजना

१० असल म वह मुझे बहुत उदार है। (पृष्ठ ४०)

—अभिधामूला व्यजना

११ चलते चलते उन्होंने उत्तर दिया कि हा वह साहसी है। (नहीं तो मैं मैं क्या विवाह के योग्य तक थी?)[1]
यह वाक्य सुनकर मैं (सन्न सा)[2] रह गया, कुछ समझ नहीं सका। (पृष्ठ ४३) —(१) अभिधामूला व्यजना

—(२) भावव्यजना

१२ मैंने कहा, मैं आपके (मन की गृहलक्ष्मी)[1] बनकर स्वय भी रहना चाहती हू, पर वह तभी रह सकती हू, जब डाक्टरनी न रहू, डाक्टर होकर (अन्त पुर की शोभा)[2] मुझसे बहुत न बढेगी उस हालत म हर किसी के सामने (मुह उघाडे मिलना और बोलना)[3] होता है। (पृ० ४६)

—(१) भावव्यजना

—(२ ३) वस्तुव्यजना

१३ इस तरह कोई (हफ्त भर मैं नीचे अपनी मेज पर नहीं गई।)[1]
(डाक्टर का मुह इस बीच गिर आया।)[2] (पृ० ४६)

—(१) लक्षण-लक्षणा

—(२) रूढा लक्षणा

१४ कहकर मानो वह कष्ट की हँसी हँसी। (पृ० ४८) —विपरीत लक्षणा

१५ (उस निगाह के अभियोग को कसे बचाता ?)[1] जसे उस निगाह से उन्होंने समूची पुरुष जाति को अभय दिया मानो कहा—तुम अगर अपनी स्वतन्त्रता को और अपने समाज की रक्षा म स्त्री को अरक्षा म छोडकर असहयोगपूर्वक चले जाना चाहते हो तो चले जाओ। तुम्हे शान्ति मिले हमारी चिंता तुम्हारी बाधा न बने। (हम स्त्रिया अपने को सह लेंगी। पर मानो यह अभय ही उनका अभियोग था।)[2] (पृ० ४६)

—भाव यजना

—विपरीतलक्षणा

१६ यो तो आदमी का सारा (पसारा)[1] ही जजाल है। पर यह कहने से (हाथ क्या लगता है।)[2] (अपने को चारा ओर फलाकर)[3] शायद उस फलाव के भीतर आदमी (अपने मन को ही पकडना)[4] चाह रहा है। यह रचता है वह रचता है कि इन (रचनाओ क व्यूह म घेरकर अपने को पा लेगा।)[5] (पृष्ठ ५२)

—(१) वस्तुव्यजना

—(२) रूढा लक्षणा

(३ ४ ५) प्रयोजनवती लक्षणा

१७ इधर पत्नी के साथ डाक्टर साहब की सास फिर जम चली है। सब-कुछ अब डाक्टर क हाथ म है, क्याकि जाहिर मे डाक्टर अब अलग और तटस्थ रहते है। किसी बात म वह विरोध नही करते इसस पत्नी तो और भी किसी बात का विरोध नही करती। बस इतनी सी युक्ति स पत्नी अनुगता हो गई है। उनका कहना था कि (स्त्रिया अपनी नाक स आगे नही देख सकती। उन्हे बुद्धि होती है पास तक की आसपास के बाहर क्या है इसकी उन्हें सुध नही होती। इसलिए विरोध न करो तो उनसे चाहे जो करा लो।) (पृष्ठ ५५) —रूढा लक्षणा

१८ (वह क्षणभर मुझे देखती की देखती रह गई। मानो बिंधी हरिणी हो। बिधकर ही बाघिन बन बठी हो, लेकिन हो प्रकृत हरिणी।)[1] देखते देखते सहसा वह फिर वही (धप से) अपनी कुर्सी म (बठी से अधिक गिर आई) और सामने शून्य म (निगाह गाड देखने लगी)।[2]

(पृ० ५६) —(१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

—(२) भावव्यजना

१६ उन्होने (हवा का थप्पड-सा मारते हुए) कहा। (पृ० ६४)

—विशिष्ट पद रचना

२० इस पर (डाक्टरनी मा)[1] ने एकदम बढकर छोटी का उठा लिया। उस चूमकर कहा—तू तो पगली है। (स्वग मे क्या सब रह सकते हैं ?)[2] (पृ० ७०) (१) सारोपा गौणी लक्षणा
(२) वस्तुव्यजना

२१ उन दिना का सीधा-सा ब्रजपाल और क्रातिलाल !—Red Revolutionary ? वाह, यह भी अजब तुक हुई ! (पृ० १०३)
—विशिष्ट पद रचना

२२ साधु का अकेला भी छोडा जा सकता है पर अभियुक्त को परित्यक्त रखना फाड से फाहे को उतारकर उस उघाडा रखना है। (पृ० १०६)
—रूढा लक्षणा

२३ मुझे उन बातों को सुनकर कष्ट होता था। (जसे भीतर से कोई प्राण उलीच कर बाहर कर रहा हो। भीतर सब रिक्त हो जाए तो क्या लेकर टिका जाएगा ?) (पृ० १११) —प्रयोजनवती लक्षणा

२४ लेकिन उन्होने अपने दोनो हाथो स मेरे दाहिन हाथ को पकडा और उस बार-बार अपन माथे से छुआते हुए वे उसी तरह (तार-तार आसू रोती रही।) (पृ० १२०) —रूढा लक्षणा

२५ एक (करुण मुस्कराहट क भाव से)[1] (उनका चेहरा पीला पड गया।)[2] (पृ० १२८)
—(१) विपरीतलक्षणा
—(२) रूढा लक्षणा

२६ लेकिन मेरी (शरकत म शक होने की कोई) उन्हे (वजह) मिली है ? (पृ० १३३) —विशिष्ट पद रचना

२७ रह रहकर मुझे प्रीमियर कल्याणी और डाक्टर असरानी के चेहरो का ध्यान होता था। (डाक्टर का चेहरा ईर्ष्या के योग्य जान पड रहा था। इतना उल्लास इतना आनन्द।)[1] (कल्याणी मिट्टी-सा पीली थी। शरीर की किंचित् असमथता तो ठीक पर इसके अतिरिक्त मन ही उसका खिला न लगता था।)[2] (प्रीमियर वय प्राप्त ऐस बालक की भाति दीखे जिसके सपने और खिलौने सब खो गए हैं लेकिन जो जानता है कि वह वय प्राप्त है इससे दुखी नही दीख सकता।)[3] (पृ० १३७)
(१) भावव्यजना
(२) रूढा एव प्रयोजनवती लक्षणा
(३) सारोपा गौणी लक्षणा

२८ तबियत के फिटस। (पृ० १४६) —विशिष्ट पद रचना

२६ (नक्शे के ब्यौरे पूरे थे।)
(नक्शा सब ओर से सही है)[1], इस बारे में डाक्टर को किंचित् संदेह न था। (कसर एक यही थी कि कल्याणी का मन नहीं मिलता है)।[2]
(पृ० १५२) —(१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा
(२) रूढ़ा लक्षणा

३० मैं याद करता हूं कि (वह विदा कितनी भीगी थी।) पर यह अंतिम भी होगी इसका अनुमान होता तो—(पृ० १६६) —भावव्यंजना

उपन्यास सुखदा

१ समय खाली रहता है और उसके (शून्य विस्तार पर मेरा ही जीवन की व्यर्थता यहां से वहां तक लिखी जान पड़ती है।)[1] (विधि के उस दुर्लेख को अपनी आखो से देखते देखकर जीना भारी हो जाता है।)[2]
(पृ० ३) —(१) सारोपा गौणी लक्षणा
(२) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२ आज यद्यपि मैं जानती हू कि मुझे छोड़ और कुछ भी नहीं बिगड़ा है, वही गृहस्थी लहलहाती हुई आज भी जुड़ सकती है पर हाय मैं उसी के योग्य होती तो— (पृ० ३) —अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

३ इस समय आकर (बल की पकी हुई मेरी धारणाएं)[1] (ध्वस्त ध्वस्त हो गई हैं)[2] (पृ० ८) —(१) वस्तुव्यंजना (२) विशिष्ट पद रचना

४ पर उस समय वहां तख्त पर बठे-बठे जसी (हिंस्र भावनाएं लपट दे दकर भीतर सुलग आइ) आज उनका विचार कर भी काप जाती हू।
(पृ० २१) —सारोपा गौणी लक्षणा

५ सार्वजनिक जीवन में स्त्री जल्दी ही (वह सकती है) क्योंकि वह (अस्वीकृति कम पाती है।) (पृ० २६) —वस्तुव्यंजना

६ उन बातो (हरीश की बातें) में मुझे कुछ भी पकड़ने योग्य नहीं मिलता था फिर भी वे जाने (मेरे भीतर के किस तार को) छू देती थी कि एक (विचित्र स्वर की झकार) मेरी आत्मा के भीतर भरने लग जाती थी। जी होता था (अपने ही को तोड़कर ऊपर आ जाऊ) सबको इनकार कर दू और कह दू कि मैं नहीं हू मानवी (मैं स्वप्न होना चाहती हूँ।) स्वप्न की भांति उज्ज्वल। उसी की भांति अन्तस्य और उसी की भांति सब-कुछ और कुछ नहीं। केवल मात्र एक चेतना, *एक शक्ति एक जागृति, एक ज्योति एक सकल्प।* (पृ० ३६)
—सारोपा गौणी लक्षणा

७ (मन म कम ज्यादा नही होता, सब वहा होम होता है।)[१] (वहा का सत्य त्याग है हिसाब नही।)[२] (पृ० ३८)

—(१) साध्यवसाना गौणी लक्षणा, (२) वस्तु यजना

८ जो (ठीक ठाक शब्द मेरे मन म बध चुके थ, इस समय खो गये। उन्हे पकडकर फिर वापस लाने के प्रयत्न म, क्षण भर के लिए मैं और खो गई।[१] (वह क्षण भारी हो गया।[२] (पृ० ४५)

—(१) प्रयोजनवती लक्षणा (२) रूढा लक्षणा

९ मुझे लगता है कि तुम सब मुझ पर छोडकर खुद (शहीद बन जाना) धर लेते हो। एसे मैं अपराधिन बन जाती हूँ। (पृ० ४७)

—वस्तुव्यजना

१० इस कमरे का मैं किसी तरह समझ न सकी। (पृ० ५२)

—उपादानलक्षणा

११ मानो उनकी (स्फूर्ति म छूत की ताकत थी।)[१] (समय उन पर रुक न सकता था न वह क्षण पर रुकते थे।)[२] मुझे (अपन आपे मे होने का सुभीता)[३] ही उनके साथ न हुआ। (पृ० ५६)

—(१) प्रयोजनवती लक्षणा
(२) वस्तुव्यजना
(३) विशिष्ट पद रचना

१२ अक्सर मैंने देखा है कि (मन का इलाज हाथ म है।)[१] (हाथा को काम म डाला नही कि देखा और भटका मन स्वस्थता पाने लगता है।)[२] (पृ० ६१)

—(१) लक्षण लक्षणा
(२) प्रयोजनवती लक्षणा

१३ उस समय नए सिर स मालूम हुआ कि गली म इतने अदर आकर मेरा घर है और यह ज्ञान मुझे अप्रीतिकर हुआ। (पृ० ७०)

—भावव्यजना

१४ तुम दिन भर (क्म पिसते हो क्या कि और खटने की सोचते हो?) (पृ० ७२)

—रूढा लक्षणा

१५ अगर रुपए की जरूरत हो तो हमारे लिए लखपति हैं, करोडपति है जो पसे पर बठे उन्हे सेते रहते हैं। वह हमारा ही काम करते है कि पसे को गर्मी देकर बढाते रहते हैं। (पृ० ७७)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा
एव वस्तु यजना

१६ (स्त्री को राह देना उसे न समझना है।)[1] (शनि वह उतनी नहीं चाहती जितना स्वीकृति चाहती है।)[2] (पृ० ८६)

—(१) अभिधामूला व्यंजना
(२) प्रयोजनवती लक्षणा

१७ ऊँचे चढ़ने में स्वाद तभी तक है जब कुछ नीचे रहे। नीचे वाला की ओर से भला कहा तो क्या कहोगे? यही तो कहना होगा कि ये ऊँचे हृदयहीन हैं कि हमारे सिर पर चढ़े हैं। (पृ० ६५)

—रूढ़ा लक्षणा एवं प्रयोजनवती लक्षणा

१८ वह चेहरा उठा। आँखें मेरी ओर हुई आसुओं से धुली वे आँखें। और मुह पर लज्जा से लाल एक फीकी आकुल तृप्त मुस्कराहट। (पृ० १०४)

—रसव्यंजना

१६ उस समय मालूम हुआ कि पुरुष दुर्दम और दुर्जय कभी कितना निरुपाय है—और ठीक उसी समय स्त्री अबला और असहाय, कितनी सक्षम और समर्थ है! (पृ० १०४)

—वस्तुव्यंजना

२० तब अनुभव में आया कि (व्यवहार नाम की चीज में कितनी धार है कितनी क्षमता है। वह दो को मिलाती है, उन्हें अलग और बटा भी रखती है।) देखा कि जैसे दो तट हैं वह उधर है तो मैं इधर। बीच में व्यवहार है जो तटों को जोड़ रहा है। पर क्या जोड़े ही रख रहा है अलग नहीं रख रहा? (पृ० ११०)

—वस्तुव्यंजना

२१ मैं सोचने लगी कि क्या जहर है ऐसा जो कोमल को कलुषित कर देता है और मीठे को तीखा! तरुण वय का वह प्रभात (पात्र विशेष) कैसा नम्र और सौम्य प्रतीत हुआ था। (पृ० ११८)—विपरीतलक्षणा

२२ सब मुझे बिसर गया। अपनी (मेरी निजता भी मेरे भीतर भीगी और ढीली हो आई।) (पृ० १२१)

—भावव्यंजना

२३ स्वामी ने अपने और मेरे बीच उसी (असम्बन्ध के सम्बन्ध को रखते हुए) कहा—नहीं सुखदा यह बात नहीं। (पृ० १३६)

—*विपरीतलक्षणा*

२४ मैं (पत्थर बनी कुछ भी नहीं कर सकी।) (पृ० १५५)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२५ (आदमी हमारा ख्याल नहीं है।)[1] वह शून्य में कुछ है वह सदेह है (कल्पना ही विदेह हो सकती है जो उड़ती जाय और धरती को न छूए।)[2] (पृ० १५६)

—(१) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना
(२) सारोपा गौणी लक्षणा

२६ मैंने मानो (निहोरे लेते हुए,) उस समय उनसे कहा—डर मुझे तो है लाल, वे तुम्हारे शत्रु हैं। (प० १६८) —भावव्यजना

२७ लगा जैसे (जान क्या ऊपर से छुट गया) है।)[1] (सामने से हट गया है, भीतर से खुल गया है।) मानो मैं हल्की हो आई, (जसे मीठी धूप म लजाती, खिलती इठलाती, हल्की-फुलकी बदली होऊं।)[2] (प० १७४) —(१) भावव्यजना (२) अलकारव्यजना

२८ आसपास की भाडिया (जीती और दुबकती-सी) लगती थी। (प० १७६) —उपादानलक्षणा

२९ (आधी की आधी) उससे छोटी चीज नही है। (प० १७७) —वस्तुव्यजना

३० मैं अपने इन स्वामी को बैठी देखती रही (जो खेल म मोहरे ही बन सकते हैं कि जिनसे दूसरे खेलें।) (प० १९८) —लक्षणामूला व्यजना

३१ पर त्रास इतना था कि त्रास देकर ही चन पा सकती थी। (प० १९९) —भावव्यजना

उपन्यास विवर्त

१ शब्द जसे मोहनी वह नही फेंक रही थी। (पृ० १०) —भावव्यजना

२ उसका चेहरा जसे अनबूझ और अधेरा हो आया। (प० ११) —भावव्यजना

३ लेकिन काश कि तुम्हारे मन म प्रेम हो सकता जो फाक न रहने देता। (प० १५) —भावव्यजना

४ गाडी से अलग पर के नीचे उसने धरती पाई। (प० १६) —भावव्यजना

५ इसने सपनो का साथ पकडा। इसी का शायद प्रतिभा कहते हो। यही शायद फिर पागलपन हो। (प० ३९) —विशिष्ट पद रचना

६ कहती हुई मोहिनी मानो तरली-सी वहा से चली गई। (प० ५०) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

७ जितेन के मस्तिष्क म तेजी से एक पर एक लपकते हुए से विचार घूमते रहे। वह उन्हें पकड नही पाता था। उन्हे अलग-अलग नही कर पाता था। लेकिन वे विचार नही थे, उनका कोई आकार नही था, उन पर रेखाए नही थी। रूप था, पर वह बनता नही था कि मिट जाता था। अनेकानेक रूप आपस मे गुथ मिलकर अपरूप बन जाते थे और सिर मे दर्द पदा करने के सिवा और कुछ न कर पाते थे। (प० ५३) —भावव्यजना (इसे विक्षेप व्यजना कहना अधिक समीचीन होगा।)

८ इस योगायोग को वह अपने जीवन से तनिक भी सम्बद्ध नहीं देखती। वह एक ऐसी जानकारी है जिसे जानना जरूरी नहीं। (पृ० ५५)
—अभिधामूला व्यंजना

९ बाईस वर्ष की युवती के पास अपना इतिहास भी हो सकता है। सद्य वर्तमान के पीछे काफी-कुछ अतीत भी हो सकता है। (पृ० ६६)
—वस्तुव्यंजना

१० कुछ काल तो माना कि जैसे संस्कृति का प्रभाव है और सदय रहे फिर वह संस्कृति का प्रभाव उन्हें प्यारा लगने लगा और वह उसके नीचे बालक बनने लगे। (पृ० ७५) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

११ उसने पाया कि एक जगह आदमी कितना बेबस है।[1] वह किनारे ही खड़ा देखता रह सकता है दूसरे की वेदना को तनिक भी छू नहीं सकता जान नहीं सकता है। वह वस्तु जो भीतर से तोड़ती हुई व्यक्ति को निरुपाय निस्सहाय कर देती है, किसी तरह हाथ नहीं आती।[2]
—(१) भावव्यंजना
—(२) वस्तुव्यंजना

१२ मेहमान साहब को बोलो मेज पर चाय और बीबीजी याद करती हैं। (पृ० ९३) —उपादानलक्षणा

१३ आपकी यह उजलपोशी एक निगाह में काली पड़ सकती है। (पृ० ९५)
—वस्तुव्यंजना

१४ नर्स या कुछ अलग और विचित्र थी बहुत पावन पर बेहद बंद। उसकी आँखें थीं जबान न थी। यह बात कि स्त्री के जबान न हो सहसा विश्वसनीय नहीं है पर इस नर्स के बारे में यह विश्वास करना ही पड़ता था। आँखों से देखती थी कि मरीज मरीज नहीं है कहीं कुछ अतिरिक्त भी है। उस अतिरिक्त में वह वहाँ उतरना चाहती थी। लेकिन वह अतिरिक्त खुद उसकी आँखों पर ऐसा आकर पड़ता था कि अपने को उघाड़ना ही चाहता हो। (पृ० १०७) —भावव्यंजना

१५ भीतर उसके गहरा कष्ट था, जैसे मुक्का मारकर उसके भीतर का कीमती कुछ तोड़ दिया गया हो। (पृ० १११)
—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

१६ और आज तुम भी देवांगना दीखती हो। जैसे वस्त्र नहीं जानती वल्कल ही जानती हो। (पृ० ११३) —सारोपा गौणी लक्षणा

१७ पुलिस चतुर है। अन्दर-ही अन्दर भेद फिरो रही मालूम होता है। (पृ० १२४) —रूढ़ लक्षणा एवं प्रयोजनवती लक्षणा

१८ तीनो को लगा यह पुरुष जसे स्वप्न में समाविष्ट है। दुर्जेय हो और दुर्जेय (पृ० १२५) —विशिष्ट पदरचना

१९ जाने कौन थी स्साली। बदसलूकी की शिकायत लाइ होगी। मैं सब जानता हूँ, इन दस घाट की पानी पीनेवालियो को—लीजिए चलिए चलते हैं? (पृ० १५३) —लक्षणामूला व्यजना

२० देखिए आप गए तो मालूम हुआ कि मैं खफा हूँ और आप भी खफा गए हैं। लक्ष्मी, वह इन पर उतरी। (पृ० १५९)

—विशिष्ट पदरचना

२१ तिन्नी ने सक्षिप्त-सा विस्तर तख्त पर फला दिया। (पृ० १७४)

—विशिष्ट पदरचना

२२ वह कुछ देर हवा पीता वहा खडा रहा। (पृ० १७८)

—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२३ तिन्नी जानती न थी पर अनुभव करती थी इससे सोते म भी वह जागती थी। यह आदमी उसके लिए है तावीज जिसके अदर जतर बन्द होना है। (पृ० १८४) —सारोपा गौणी लक्षणा

२४ चडढा आए तब पति पत्नी म कही बारीक भी व्यवधान नही रह गया था। (पृ० २२३) —विशिष्ट पद रचना जो भाव व्यजना का भ्रम उत्पन्न करती है।

२५ बारह हजार रुपए। यह तो भरपूर न हुआ गिनती हुई। तेरह नही है ग्यारह नही है, जो दोना के बीच म है वह बारह है बात क्या है मोहिनी?

मोहिनी ने कहा सुनो एक तिन्नी है। वह साथ तो नही आई, क्योंकि तुमसे पूछना था। कहोगे तो सवेरे वह आ जाएगी बगालिन है, सोने की मूरत समझो होगी बीस बाईस की और बारह लडके हैं। नरेश हँसे—भई बगाली भी खूब होते हैं बीस-बाईस बरस और बारह लडके।

कहकर नरेश कहकहा लगाकर हँसा—मोहिनी भी अपने को रोक न सकी, खुलकर हँस आई।

आपके जितेन साहब की फौज है? मानता हू, खासा रिकाड है।

* * *

तो यह हिसाब है। बारह लडके बारह हजार तो उन द्वादशवाहिनी जगद्धात्री माता का—क्या नाम बताया आपने? (पृ० २२५)

—रसव्यजना

उपन्यास व्यतीत

१ वह मेरे रोम रोम शिरा शिरा को बेध रहा है। क्या इस पैतालीस वर्ष की अवस्था म यही अनुभव करूँ मैं कि मैं व्यतीत हूँ ? (पृ० ५)
—प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा लक्षणा

२ तब कविता मन म फूटी और कागज पर उतरी और नये नाम को ओढकर मैं जयन्त बना। (पृ० ६) —वस्तुव्यजना

३ मेरी स्वावलम्बिता कही मेरी स्व रति ही तो नही है। (पृ० १२)
—वस्तुव्यजना

४ घर उस कोठरी का नाम था जो वडे यत्न के साथ हाथ आई थी। मेरे वतन का और दिमाग का तिहाई भाग खाकर भी सुथरता न सीख पाती थी। कला उस पर उतारता और विनान उस पर रखता लेकिन उसकी दीवारो पर स पपडिया गिरनी बन्द न होती न सील भागनी न दुर्गन्ध जा पाती। वहीं एक दिन क्या देखता हूँ कि लकदक लिवास म अनीता आई खडी है। (पृ० १२ १३)
—वस्तुव्यजना

५ सारा दफ्तर दिप उठा और चौंककर रह गया।[१] यह उसने क्या किया। सादगी से क्या नही आया जा सकता था ? तब मेरी राह म काटे तो न बिछते।[२] (पृ० १५) —(१) उपादानलक्षणा
—(२) प्रयोजनवती लक्षणा

६ दूसरे की कृपा के सिवाय कवि के पास जीने का और उपाय नही है। और यह कृपा का जो उपाय है वही उसकी परीक्षा है। (पृ० २२)
—वस्तुव्यजना

७ आजादी दूर स जाने क्या थी पास आई तो वडी वीरान चीज मालूम हुई। (पृ० २३) —अभिधामूला शाब्दी व्यजना

८ सामान आ गया किताबें लग गई मकान खिल आया। (पृ० २५)
—उपादानलक्षणा

९ इश्यारेन्स एजेन्सिया स्टाक ब्रोकर मिस्टर पुरी का कहना है कि पैसा तो बहता है लेने वाला चाहिए। (पृ० २६) —वस्तुव्यजना

१० जवान किन्तु जिन्दगी के पास होते हैं और नीति नियमो से दूर। इससे कविता के पखो पर बढकर मर्यादा की लकीरो को लाघ जाना उन्हे उतना कठिन नही होता। (पृ० ३० ३१) —वस्तुव्यजना

११ बात यह है कि वह सुदर है और उससे आमदनी होती है और आमदनी कलुओ को अच्छी लगती है। (पृ० ३१) —वस्तुव्यजना

१२ लेकिन दादा शक्ल देखते ही मुझे मारने लग जाते है । ठीक है, मुझे ही न मारें तो जायें कहा ? दुनिया जो उन्ह मारती है। (पृ० ३२)
—भावव्यजना

१३ तन मिट्टी ही तो है। शास्त्र बताते हैं कि वह अपना नहीं है । क्या बुधिया ने इसी मम को पाया है ? उसका तन उसका नही है जसे उसका छोड सब का हो। (पृ० ३२) —वस्तुव्यजना

१४ विवशता आखिर आखो म आसू ले आई और वे ढलकते हुए उसकी मूछा पर बूद बनकर अटक आय। (पृ० ३३) —प्रयोजनवती लक्षणा

१५ सुमिता ऊचे घराने की थी स्वच्छन्द थी। पढ लिख गई थी निषेध को निषिद्ध मानती थी। पर पसे की प्रचुरता और पढाई की अधिकाई कुछ करे थी तो वह कन्या ही। (पृ० ४०) —वस्तुव्यजना

१६ धरती इधर बिछी बठी है, महाशय उधर आसमान म ताकते है। सब स्वाति की बूद चाहते हैं, जसे आसमान को यही काम है। कवि महोदय, धरती की ओर भी देखिए। (पृ० ४६) —भावव्यजना

१७ सब एक-साथ भुगताऊगा। अनिता होता रहन दो जमा। सच जानो मेरा बडा एकाउण्ट है वहा यम के घर मे। (पृ० ४६) —वस्तुव्यजना

१८ समय भारी हो आया जसे सरकना भूलकर जम आया। जसे चट्टान हो अनिता भी जस जमी शिला हो। (पृ० ४६ ५०)
—सारोपा गौणी लक्षणा

१९ चन्द्रकला को देखा है। जीवन वहा ज्वार पर है। ठाठ पर ठाठ देकर लहरें आती है और उस पर फेन-सा बिखेर जाती है। बडी कमनीय है।[1] यह भी देखता हूँ कि सहसा वह शान्त है। उसकी प्रकृति के लिए यह काफी सूचक है। शायद नीचे भयकर कुछ हो।[2] पाल उठाए जीतती बढती चली आई है ठोकर कही नहीं खाई।[3] (पृ० ५५)
—(१) प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा लक्षणा (२) वस्तु यजना
(३) रूढा लक्षणा एव साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२० अब आवाज उसकी काप आई थी, जसे लोहा तपकर पानी हो रहा हो। पर मेरा क्रोध मुझमे पत्थर हुआ पडा था। मैंने लपक कर अटची को हाथ मे उठाया। (पृ० ६७) —भाव यजना

२१ क्षण ही आकृति के सौदय को भाव का सौदय दे जाता है। आकृति का तक शरीर के साथ चली जाती है लकिन जो शरार म है नही, सिफ भाव को दर्शाने के लिए रूप मे रखा ले उठी है वह वस्तु सहज ही कसे चली जा सकती है ? वह मन पर ठहर जाता है और धोखा उस मुश्किल हाता है। (पृ० ६६) —भावव्यजना

२२ शान्ति विचारी शुद्ध की ही पत्नी है—सामान्य नहीं धर्मपत्नी। पत्नीत्व पुराना हो जाता है तो स्वयंवर के समारोह का फिर ठाठ होता है। (पृ० ७०)
—अलंकारव्यंजना

२३ अनिता की दृष्टता माननी होगी। परिवार उसके पास कम नहीं है। ऊँचे घर की मर्यादा है। उसमें से समय और युक्ति निकालकर मुझ जंगली को पालतू बनाने की चेष्टा में चली जाती है। (पृ० ७३)
—वस्तुव्यंजना

२४ उदिता के सत्याग्रह और हत्याग्रह में फर्क न रहा। देखकर एक क्षण सा जी हुआ कि चन्द्री न जाती हो, तो भी उसे भेजकर रहना चाहिए। पत्नी न हुई बला हुई। पत्नीत्व का क्या कुछ इजारा है?' पर धर्मशास्त्र कुछ हो व्यवहारशास्त्र स्वयं अपने नियम बना लेता है। यों भी नियम पोथी के कहाँ प्रकृति के चलते हैं।' (पृ० ७५)
—(१) रसव्यंजना (२) वस्तुव्यंजना

२५ आदमी में भगवान ही तो है जो करता है। वह भगवान बिचारा आदमी की मुट्ठी में होकर चाहे तो शैतान बनने तक तैयार हो जाता है। आदमी मुट्ठी छोड़ दे तो मालूम हो कि कुछ उसे अब करने को नहीं रह गया है कि सीधी राह सामने हो आई है। चन्द्री ने शायद अपने को किसी संकल्प की मुट्ठी में बाँधा था। हाथ की उँगलियाँ कहीं उसने देने को खोली, और मुट्ठी कहीं न रह गई। (पृ० ८२)
—वस्तुव्यंजना

२६ जैसे हर संभावना से भरा क्षण मँडरा आया हो पर हम उसके नीचे अपनी (अपने) हठ में जड़ बने रह गये हों (पृ० ८४)
—विशिष्ट पदरचना

२७ स्त्री का तुम्हारे लिए यही मूल्य है कि वह बोझ है? कवि बनते हो! क्या नहीं कहते कि निरे अभिमान के पुतले हो? हो तो रहो! फिर क्यों सामने आते हो? चलते वक्त सोचा था कि जा रही हूँ और छुट्टी हुई। लेकिन क्या पीछे पड़े हो। हूँ ऊँची तो हूँ। बस? (पृ० ८८)
—भावव्यंजना

२८ लगता है भगवान अनिता से पूछ-पूछकर रहा करते हैं। 'मैं करूँ मैं तो उससे पूछ कर ही करूँगा।' लेकिन क्या अनिता को बीच में डालकर मैं उस भगवान नाम के प्रहरी के चंगुल से बाहर जा सकता हूँ जिसने भाग्य के जाल को फैलाकर हम सबकी सब चेष्टा कामनाओं को रोकने के लिए अपने घेरे में घेरकर निर्दिष्ट कर रखा है?' (पृ० ९०)
—(१) विशिष्ट पदरचना (२) वस्तुव्यंजना

२६ माडन माशल-टाइप चाहिए मेरे लिए तो भाई। अब ता वही जिन्दगी है। (प० ६२) —अभिधामूला यजना

३० ओह। यह बात है। इतने घायल हो ! मैं नही समझती थी जयन्त, कि तुम्हारा यह हाल होगा।' क्या कर दिया है चुडल न दो दिन म ?' (प० ६२ ६३) —(१) वस्तु यजना
(२) रूढा लक्षणा

३१ कश्मीर मे कश्मीरी भी बसते हैं। उन्ह अवकाश ही नही कि मालूम कर पाए कि कश्मीर सुदर है। बस भर मेहनत करते है और तन पालते हैं। फुरसत मिल पाई तो कपडो म से जुएँ बीनत हैं। (प० १०६ ७) —वस्तु यजना

३२ रूप उसके पास है और यौवन और गव और सकल्प और इस सकल्प के नीचे वह जो मूल है घन। (प० १०७) —वस्तुव्यजना

३३ कवि हो तुम्हे आकाश की चन्द्रिमा चाहिए फिर ब्याह क्यो किया किया था तुमने इस धरती की चन्द्री से ? (पृ० ११०) —वस्तुव्यजना

३४ बाल बच्चो से भरी खिली सुदर गृहस्थी किस स्वग से कम है ? (प० ११४ १५) —उपादानलक्षणा

३५ अपने को जलाए बठे हो, दूसरो को जलाने क्यो बैठ गए जयन्त ? (प० १२१) —रूढा लक्षणा

३६ दुहाई है मानव की इस अगम रचना युद्ध की। वह सहस्र सहस्र को काम देता है कारण देता है कि वे जूझें, मारें और मरें (प० १२८) —वस्तुव्यजना

३७ मैं अकेला होता हू, नीद आती नही तब कागज खीचकर उन्हे पसिल से खीच देता हू। (पृ० १२८) —वस्तुव्यजना

३८ क्या खेल है कमबख्त उसका जो नेपथ्य से किसी तरह निकलकर बाहर आता नही है। या उस विज्ञान का, जिसे न मारने मे रुचि है न बचाने मे बस जो अपनी कृतकृत्यता की राह म नए-नए आविष्कारो से लाखो को मारता और सहस्रो को बचाता चला जाता है। (प० १३०) —वस्तुव्यजना

३६ श्रीमती नीला बघावर को अपने डनो मे मुझे ले लेने मे कोई दिक्कत न हुई। बहादुरी का तमगा अब भी मेरे पास है लेकिन कही न रही, मेरी कप्तानी और मदमी। आखिर मरीज का मतलब यह तो नही है कि वह कुछ रहता ही नही बस गीली मिट्टी हो आता है। (प० १३८) —भावव्यजना

४० प्रण किया था कि मर जाऊंगी पर तुम्हारी राह काटने नहीं आऊंगी। (पृ० १४१) —रूढ़ा लक्षणा

४१ कपिला के प्रश्न ने जैसे दंश देकर मुझे चौंकाया। (पृ० १५०) —सारोपा गौणी लक्षणा

४२ मनुष्य की क्षमता सचमुच अगाध है। वह दुष्ट हो सकता है संत हो सकता है, और दोनों एक साथ हो सकता है हो सकता नहीं है। अपने हर क्षण हर सांस में (पृ० १५४) —वस्तुव्यंजना

४३ मालूम नहीं, कितनी सहस्त्राब्धियां बीत गई। लिहाफ के नीचे पड़े मुझ मुर्दे पर से वे बीतती ही चली गई कि चिड़िया की चहचहाहट कानों में आई। दिन अब जगने को था। शायद ऊषा फूटेगी उजाला आएगा और सूरज आएगा और अंधेरा चला जाएगा। (पृ० १५७) —उपादानलक्षणा

४४ उसकी आंखों में जैसे दुनिया भर का अचंभा जम आया। (पृ० १६१) —भावव्यंजना

उपन्यास जयवर्धन

१ वह उन दशा में नहीं है जो इतिहास में रहते हैं। जैसे वह अकाल में रहता है। काल का इतिहास उस पर से होता जाता है। (पृ० ६) —वस्तुव्यंजना

२ यहां का विस्तार उन्हें समा गया। उनका रूप और बल सुतकर यहां की धरती में हवा में, पानी में खिंच रहा। (पृ० १०) —प्रयोजनवती लक्षणा

३ वाणी में वेग उतना ही था जितनी स्थिरता, उच्छ्वास जितना विश्वास। गौरव था यदि उनमें तो अहंतावश नहीं निष्ठा का। वाणी में गर्वोक्ति उतनी न जान पड़ी जितनी व्यथा और वेदना। (पृ० २०) —वस्तुव्यंजना

४ सब मिलते हैं इसमें अपने से मुलाकात का मौका ही नहीं आता।" (पृ० २१) —अभिधामूला व्यंजना

५ 'मैं देखता रहा, गति में वेग था पग थिर थे। दृष्टि कसी और सीधी थी।[१] सब में एक भव्यता और शालीनता थी, जैसे सब स्वस्थ हो। नाटक कहीं न हो।[२] जो हो गहरे तक यथार्थ हो।" (पृ० ३१)
—(१) प्रयोजनवती लक्षणा
—(२) वस्तुव्यंजना

६ 'ठीक है आचार्य को ऐसे ही ऊंचे टांग रखना ठीक है।" (पृ० ४०)
—लक्षणामूलक व्यंजना

७ "कहकर उन्होंने क्ल की भांति अपना चरखा पास खींच लिया। देख सका कि वह यंत्र सधा आयुध है अच्छा शरण स्थल है।' (पृ० ४५)
—प्रयोजनवती लक्षणा

८ 'और सचमुच मैं देखता हूं। यह दिन अंतिम है। आगे वहां जाना न होगा। द्वार बंद है, इसलिए नहीं। पर जैसे उधर गति ही निषिद्ध है।" (पृ० ६०)
—लक्षण लक्षणा

९ क्षण के लिए वह चुप रहे जैसे मेरे प्रश्न को स्तब्ध खड़े रहने को कह दिया गया हो।" (पृ० ६८)
—सारोपा गौणी लक्षणा

१० 'मेरे प्रति पहले से वह बन्द हैं। आएंगे, तो बन्द आएंगे। जैसे अपने व्यूह की सुरक्षा में होकर मुझसे प्रहार मांगते और प्रतिप्रहार देना चाहते हों।" (पृ० ११५)
—वस्तुव्यंजना

११ 'यह भी जानता हूं कि इला का योग अनासक्त नहीं है। बल्कि मुझे ऊंचा पाकर उसको अपने में सुख मिलता है । (पृ० १२३)
—लक्षणामूला व्यंजना

१२ 'वाणी में कसी एक कॅपकॅपाहट थी जैसे वह भ्रांत हो। भीतर तक मुझे वह चीरती हुई चली गई और मैं गड़ी रह गई ।
फले हाथ मेरी ओग आते ही गये और प्यार से बिगड़ा मेरा यह नाम 'इनी' पछाड़ों पर पछाड़ खाता गूंज गूंजकर मेरे कानों के परदों पर पड़ता मेरे समूचेपन में रमता चला गया।' (पृ०१२६) —रसव्यंजना

१३ 'वर्जन करती ही मैं अपेक्षा में रही कि कोई होगा जो मेरी 'नहीं' नहीं सुनेगा और मुझे ले ही लेगा। इस अपेक्षा को ही 'नहीं' में दोह रातीं चली गई हाथों के वर्जन से लानेवाले को हटाती और बुलाती चली गई। (पृ० १२६)
—भावव्यंजना

१४ वह बोली यह बिल्कुल प्रेम कहानी नहीं है। प्रेम में फुरसत होती है। जय को उसका अभाव रहा है। छीनकर कभी वह फुरसत निकाल भी सके हैं तो झट फिर काम ने उन्हें वापस छीन लिया है। प्रेम शायद अवकाश का व्यापार है, लेकिन ' (पृ० १४०)
—वस्तुव्यंजना

१५ "शब्द मुझे बड़े थे, पर कहनेवाले से आकर उनका भाव मुझे सर्वथा अगोचर न रहा।" (पृ० १५१)
—प्रयोजनवती लक्षणा

१६ स्थिति को लिजा ने हाथ में लिया।' (पृ० १५५) —उपादानलक्षणा

१७ निजा वानी मैं भारतीय हू, पर केवल वद्य। यों बाल सुनहरी हैं और नहीं जानती, मैं क्या करूँ।" (पृ० १५६) —वस्तुव्यजना

१८ इस सब सूचना म कुछ प्रश्न बद मालूम होता है।' (पृ० १७७)

—लक्षणामूला व्यजना

१९ "उत्तर मेरा उन्होंने प्रश्न से लिया, पूछा ठीक कहत हो ?
(पृ० १८७) —प्रयोजनवती लक्षणा

२० निजा अकुशल नही है फिर भी खुली और हार्दिक हो सकती है।"
(पृ० २५५) —वस्तुव्यजना

२१ कहकर जय जोर स हँसे। हँसी सक्रामक हुई और करीब सभी हँस आए।" (पृ० २६३) —साध्यवसाना गौणी लक्षणा

२२ —कहानी का कुतुरमुग भी यह अपापन अपनाता कहा जाता है।"
(पृ० ३०६) —लक्षणामूला व्यजना

२३ हा पत्र भी दूगा लेकिन पत्र से ज्यादा तुमको होना है, है न ?
(पृ० ३२७) —प्रयोजनवती लक्षणा

२४ कहकर चहर पर उनके ऐसी करुण व्यगपूर्ण हँसी खिल आई कि मुझे भीतर तक एक पीडा चीर गई।" (पृ० ३३२)

—सारोपा गौणी लक्षणा

२५ आवश का भी एक तनाव होता है और हर तनाव की प्रतिक्रिया है।' भावुक ही क्रूर हो जाते हैं।"' (पृ० ३३३)

—(१) प्रयोजनवती लक्षणा

(२) वस्तु यजना

२६ 'अनुमान है पर निश्चय सच भी है वे वप जय मे जीवित है, इन्द्र जब तुम उसके ये और ।' (पृ० ३४१) —लक्षण-लक्षणा

२७ 'स्वामी आ रहे हैं न ?
'हा।
ता खासा चिडियाघर होगा !' (पृ० ३५६) —वस्तुव्यजना

२८ मैंने उधर स अपनी जिज्ञासा की लगाम खींचकर मोडा ' कारण आगे माग और अवकाश न मिल रहा था।"' (पृ० ३५७)

—(१) रूढालक्षणा

(२) वस्तु यजना

२९ मैं अपने कक्ष मे एक ओर रहा और स्थिति का तनाव उसी सध्या मे चढ़ता हुआ फटने की दशा तक आ गया।" (पृ० ३७४)

—वस्तुव्यजना

३० 'पुरुष कोई नही है, जिसकी कुजी हम स्त्रियो के पास न हो।'
(पृ० ४१३) —वस्तुव्यजना

३१ ऐसे बोला जसे दपण मे अपने को पाकर पूछ रहा हो ।"
(पृ० ४२०) —प्रयोजनवती लक्षणा

३२ "बात जाने किस दूर से आई। मुझे उसकी आहट मिली, अब कुछ भी नहीं मिल पाया।" (पृ० ४२०) —लक्षण लक्षणा

३३ वह भी सम्मिलित हो सकते हैं किन्तु किसी के स्थान पर का प्रश्न नहीं है।" (पृ० ४२८) —विशिष्ट पद रचना

उपन्यास मुक्तिबोध

१ बेटे-बेटी दुनिया मे अपनी तरह स जियेंगे। जमाई लोग अपने बूते बढ़ेंगे। मैं सीढ़ी नही हू कि पैर रखकर मुझ पर चढ़ा जाये।
(पृ० १४) —प्रयोजनवती लक्षणा

२ मौका नाजुक होने पर केलि विनोद म जरा उसको बहला भर लिया करता था नही तो घर गिरिस्ती के सामान असबाब से ज्यादा किसी तरह नही मानता था।' (पृ० १६) —वस्तु यजना

३ व्यक्तित्व को किसी हालत मे कीमत मे नही लिया जा सकता। लेकिन यह सारा तकनिष्ठ भाव किसी तरह भी मेरे भीतर सिर नही उठा सका।' और मैं अवसन रह गया, यह अनुभव करके कि पत्नी ने स्वय मे निस्स्व बनकर मेरे स्व को ऐसा पराजित कर दिया है कि मैं कृतज्ञता मे भीग उठा हूँ।' (पृ० १७) —(१) रूढा लक्षणा
(२) सारोपा गौणी लक्षणा

४ 'अभी तो अनी के दिन हैं। कुछ-का-कुछ हो सकता है। खेल का मजा तो अभी है।' (पृ० १८) —रूढा लक्षणा

५ 'हम सबको जमीन पर छोड़कर तुम उड़ने की जो तयारी कर रहे हो बुनियाद ही नही रहने वाली है, तो ऊपर चिनाई की बात क्या सोचना है।" (पृ० १६) —रूढा लक्षणा

६ ऐसे पन्द्रह बरस से इट इट जोड़ी गई इमारत ढह जाती है।
(पृ० २३) —रूढा लक्षणा

७ 'अरे भई पालियामेंट म क्या होता है, बस दो चार-बरस उछल कूद करने का मौका मिल जाता है। बाहर के लोग देखते रहत हैं कि हमारा आदमी क्या कर रहा है। इस तरह नकेल तो बाहर हम लोगो के हाथ ही रहती है। नही तो जनतत्र के माने कुछ नही रह जाते हैं। (पृ० २४) —रूढा लक्षणा

८ यह संतपना मत आत्ना सहाय, खता साग्राग। यह औरत जो दिखती है, वह नही है। (प० २७ २८) —वस्तुव्यजना

६ प्रताप चल गये और जान का ढग मुझे उनके योग्य नही मालूम हुआ। सदन म कुशल चर्चाकार माने जाते हैं। यह क्या कि खुलकर इस तरह अपनी अरुचि बखेर गये।' (पृ० २८) —वस्तुव्यजना

१० 'ठाकुर मर राजनीतिक जीवन के इतिहास म बुनियाद की तरह अनिवाय रह हैं उन्ही क प्रति दुलक्ष मुझस कम हो सका। शायद राजनीति म यही होने लग जाता है। उपयोगिता की वेदी पर हार्दिकता को इन्सान कुर्बान करने लग जाता है। (प० ३१) —रूढ़ा लक्षणा

११ 'तुम, हुकुम तो मिनिस्टर जसा चला रहे हो। कल शाम सचमुच बन जाय हो क्या? (प० ३२) —लक्षणामूला शाब्दी व्यजना

१२ ' बल्कि पन्द्रह-बास रोज के लिए आप भी हमारी तरफ आ जाइये। फिर यह निबटेंगे अपन अन्तरजामो से। पूरी फुरसत से आरम ध्यान करेंगे और उसम जोत चमनेगी, जो य चाहत हैं। (प० ३४) —अभिधामूला शाब्दी व्यजना

१३ तुमने हमेशा उस साये म और सलामती म रखा। अरे सामने मुश्किल नही आयगी तो आदमी म कस कस पदा होगा? उसका मन उठता है और आसमान तक जाता है पर करन की बात आती है तो हौसला हवा दीखता है।' (प० ३५ ३६) —रूढ़ा लक्षणा

१४ लेकिन तुम कोठा म आती हो, या मा-बाप के पास आती हो? (प० ३८) —अभिधामूला शाब्दी व्यजना

१५ तो मालूम होता है फिर तुम्हारे घर पर मुझे दस्तक दनी होगी। अरे भई राजनीति म जोर ही चला करता है प्रेम नही चला करता है। (प० ४१) —रूढ़ा लक्षणा

१६ जमीन म कुछ पसीना डालूगा और मन को तसल्ली रहगी कि पसीने का खा रहा हूँ हराम का नही। (पृ० ४३) —रूढ़ा लक्षणा

१७ ठाकुर की भरी और जबर मूछें थी। उनका मुह कप आया, मूछो के बाल हिले, कनपटिया भी हिलने लगी।' मानो सहसा उनका गला भर आया हो और चेहरा टूट कर रो आना चाहता हो।' (प० ४६)
—(१) विशिष्ट पदरचना
(२) रूढ़ा लक्षणा

१८ ठाकुर बोले नही और दोनो को छोडकर वही मैं आया और फोन मे कहा—'नीला ! यह क्या, एकदम आसमान से ? 'हा । लेकिन टपकी नही हू बाकायदा आसमान से उतर के आई हूँ । यह भी हैं ।" (पृ० ४६) —लक्षणामूला शाब्दी व्यजना

१९ देहात ? देहात क्या बन जगल क्या नही जाते ? कि एकदम ऋषि महर्षि बन जाओ और हम लोग तुम्हारे चरनो म गिरें । (पृ० ५०) —भाव व्यजना

२० मन म रह रहकर चुभन होती थी । सब तरफ खयाल जाता था, पर चुभन का काटा दूर नही होता था । (पृ० ५१) —सारोपा गौणी लक्षणा

२१ मैं और भी जोर शोर से पढने लगा । पर जोर शोर अन्दर ही था किताब तक नही पहुचता था । किताब का पन्ना वही का वही रहा और मैं ससार की असारता के साथ स्त्री के हीन बुद्धि होने का विचार करता रहा—खास कर पत्नी वग की स्त्री । (पृ० ५२) —वस्तुव्यजना

२२ मैं ऐसे बठा रहा कि आधी रात मे कही सोया जाता है—या कि पढा जाता है ?" (पृ० ५३) —वस्तुव्यजना

२३ मेरी आखो से चिनगारिया निकल रही होगी । पर राजश्री मुस्करा रही थी । बाकी चितवन थी उस मुस्कान म ।' (पृ० ५३) —रूढा लक्षणा

२४ मैं भारी भरकम आदमी हू और उस समय मन बदन मे कम भारी न था । लेकिन उन हाथो मे खिचता उठता चला आया । (पृ० ५३) —वस्तु व्यजना

२५ 'उस समय राजश्री, जो वयस्क पुत्र-पुत्रियो की माता थी, जाने कसे षोडशी हो आई । वह ऐसे मुस्करा और छोटे-छोटे कदमो से ऐसी अजब चाल से बिस्तर पर गई और मुझे देखती हुई ऐसे रजाई म दुबकी कि सब मुझमे से काफूर हो गया । मैं पिघल कर हर तरफ से मोम हो आया ।' (पृ० ५३) —रसव्यजना

२६ "सोच रहा था कि देह मे भरती आई हुई नीला पहले से अच्छी लग रही है । जरा बाह को दबाकर देखू पूछू कि नीलिमा तुम पर स उम्र क्या कपूर की तरह उड जाती है ? सिफ सुगध छोड जाती है । (पृ० ५७) —भावव्यजना

२७ इस धूप म और गुन म और आजादी म तुम आत्मा की बात करना चाहोगे कि मन की बात करना चाहोगे ? (पृ० ५३)
—लक्षणामूला शाब्दी व्यजना

२८ लेकिन आदमी पर पहुचकर तुम यह मत मान लेना कि तुम जिन्दगी के औजार नहीं हो उसके मालिक हो। जिन्दगी अपने तरीके म चलती है। (पृ० ६४)
—वस्तुव्यजना

२९ बुद्धि का गुमान तुम्हारी तरह मुझे तो नहीं हो सकता है। शरीर का ही हो सकता है। (पृ० ६५)
—वस्तुव्यजना

३० नीला ने कहा अच्छा मैं चलू। नमस्ते ठाकुर साहब। नमस्ते राज भाभी मान सभाल रखिये अपना। (पृ० ६७)
—अभिधामूला शाब्दी व्यजना

३१ सही कहते हो ठाकुर लेकिन मुसिफ न बना करो किसी के। (पृ० ६८)
— भावव्यजना

३२ आदमी मरता है और पलता है तो आप ही झुक जाता है। उससे पहले मन म उठने-बढ़ने की चाह रहती ही है। और बीरेश्वर कोई औरो से अलग नहीं है। (पृ० ७३)
—प्रयोजनवती लक्षणा

३३ कुवर के लिए उसके मन म खार है।" (पृ० ७४) —भावव्यजना

३४ क्यों सरप्राइजेज आपको पसन्द नहीं है। मुझे बाकायदगी पसन्द नहीं है। चरित्र पतन से आपने अपने को बचा लिया। (पृ० ७५)
—अभिधामूला शाब्दी व्यजना

३५ मैं बधाई देती हू आपको कि आप सत बन रहे हैं। (पृ० ७६)
—अभिधामूला शाब्दी व्यजना

३६ देखो सहाय, तुम लोग इज्जतो म और पदो म रहकर जाने किन किन व्यसनाओं को अपने साथ लपेट लेते हो और उनम गौरव मानते हो। तुम्हारा सच कपडो म है लिबास म नहीं और सचाई से डरने म है। (पृ० ७६)
—लक्षणामूला शाब्दी व्यजना

३७ 'बस तुम्हारे अच्छे लगने के लिए ही तो औरत का होना है। गुडिया हो तो गुडिया कुछ और उसका रूप भा जाए तो वह। खूब रही।' (पृ० ७६ ७७)
—वस्तुव्यजना

३८ लेकिन तुम व्यवस्थापकों की बिरादरी से जरूर नाराज हू। तुम लोग आदि शक्ति म अविश्वास करते हो और अपने नियम कानूनो म विश्वास करने लग जाते हो। कभी तो अपने को उस शक्ति के हाथों [illegible] है और जिसके अलावा कोई

दूसरा सच नहीं है। क्यों तुम ढकाव पसन्द करते हो? क्यों प्रकृति के स्पर्श से बचते हो और संस्कृति का वेठन उस पर लपेटते हो?'
(पृ० ७७) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

३६ छोड़ो नीला! तुम भी अपने शरीर को कब तक कसौटी बनाए रखोगी कि परख के पुरुष को पास फेल किया करो।' (पृ० ७८)
—वस्तुव्यंजना

४० "पकड़ रखकर तुम्हें पा जाऊंगी यह तो कहीं तुम कहना नहीं चाहते? जितना तुमको स्वतन्त्र रख सकूंगी, उतने ही तुम मेरे होगे।"
(पृ० ८१) —प्रयोजनवती लक्षणा

४१ "राजश्री एक शब्द नहीं बोली, लेकिन उसकी निगाह में से शिकायत झांक रही थी।' (पृ० ८१-८२) —भावव्यंजना

४२ 'और मुझे बहुत खुशी है कि तुम अभी इस कदर हटे हो। इसी नाम पर लो यह जाम लो!—अरे ओ मैं भूली। तुम तो जाहिद हो।' और कहकर वह घुंघरुओं से निकलती-सी हँसी-हँसी।
(पृ० ८४) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

४३ मुस्कराने में उसकी आंखें तनिक छोटी हो आई, और उनमें मधु आ भरा। मधु में जैसे कुछ तिक्त भी हो।' (पृ० ८५) — भावव्यंजना

४४ " तुम स्पिरिट नहीं, अक्ल चाहते हो। ठीक है, रखो अक्ल अपने पास। लेकिन लुत्फ तुम्हारे बराबर से अगर निकलता चला जाए तो देखकर उसे कुढ़ना मत। जाहिद से यही डर रहता है नजर लगने का डर।" (पृ० ८५-८६) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

४५ बोली—सही कहा तुमने, बहुत सही कहा। जरूरत तुम्हें होनी चाहिए थी, जो अक्ल का ढकना ऊपर देकर अपने को रोक रहते हैं।'
(पृ० ८६) —वस्तुव्यंजना

४६ लेकिन अन्दर कांटा जरा भी रहेगा, तो समझ लेना रूह की रिहाई नहीं होगी।" (पृ० ८७) —वस्तुव्यंजना

४७ 'आखिर कोई क्या करता है जब वह देश समाज के लिए करता है? देश-समाज तो यहीं रह जाते हैं और वह चल देता है। यानी इन नामों पर जो किया जाता है आखिर होता वह अपने अन्दर से और अपने खातिर है। (पृ० ८८) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

४८ लम्बी उस हाथ की उंगलियां थीं और हथेली जरा जरा गुलाबी थी और वह हाथ निवेदित प्रतीक्षा में टिका था।' (पृ० ९१)
—भावव्यंजना

४६ अभागिन है वह जो स्त्री है, और राजनीति में आती है, या उसका विचार भी करती है। स्त्रीत्व के साथ ऐसा समझौता ही होना है पालन नहीं होता। (पृ० ६२) —वस्तुव्यंजना

५० तुमसे सपने थे और मैं तुम्हारी नजर में से उन सपनों को अपने तई देखने लगती थी। आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है। दर के साथ मैं रहती थी जीती तुम्हारे लिए थी। तुम्हारे लिए—यानी जो सपने में चलता था और सपने में करता था।' (पृ० ६२-६३) —भावव्यंजना

५१ राजनीति तुम देखती हो वहां आकर कम गई है। वह अनीति बन गई है। फिर उसमें रहने से कालिख ही तो लगेगी हाथ क्या आएगा?' (पृ० ६४) —रूढ़ा लक्षणा

५२ यह खुशी हूं कि तुम आजाद हो। जाओ और अपने आदर्श के और कर्तव्य के साथ रहो वैसे ही जैसे आदमी बीवी बच्चों के साथ रहता है। आराम की और पावन्दी की जिन्दगी होगी वह और मुबारक हो वह तुम्हें। मैं राजनीति नहीं समझती हूं तुम समझते हो। लेकिन कुछ है जो तुम नहीं समझते हो हम सब समझती हैं। राज भी समझती हैं। (पृ० ६४) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

५३ तुमारा न कहा, नमस्ते, नीलिमा देवी।
नमस्ते तो थी पर जाने उसमें कैसी एक धार थी। नीलिमा ने उत्तर नहीं दिया और हम लोग बाहर आ गए। मन में एक क्षोभ और ऊब थी जैसे कहीं अभिरुचि की दुर्गन्ध हो और स्रोत का पता न हो। (पृ० ६६) —भावव्यंजना

५४ वहन ही मालूम हुआ कि राम मुझसे दूर हो गया है संसार फिर आकर घिर गया है। (पृ० १०१) —प्रयोजनवती लक्षणा

५५ विचार का बोझ डालकर मुझे सन्देह है कि आपने वीरेश्वर के व्यक्तित्व को बौना कर दिया है। उसकी संभावनाएँ मैं समझता हूं अब भी खिलने में आ सकती हैं। (पृ० १०६)
—साध्यवसाना गौणी लक्षणा

५६ 'इसलिए कि पैसे की कमी नहीं है चुनांचे छोटी माटी फिक्रें मुझसे दूर रह जाती हैं और मेरी तन्दुरुस्ती को जरा भी कुतर नहीं पाती और मैं ख्याल की उन ऊंचाइयों पर पहुंच सकती और ठहर सकती हूं जो तुम्हें पसन्द हैं। (पृ० १२१) —गूढ़ा प्रयोजनवती लक्षणा

५७ लेकिन मुझे कभी आपने मुझ पर छोड़ा है ? पैसे की जब जरूरत पड़ी है तो साथ में आपने उपदेश भी पेश किया है। क्या इसी अविश्वास के बल पर आप सोचते थे कि मैं अपने बारे में फसला कर निकलूगा। लेकिन बहुत हो गया। मुझे अब इस तंग दायरे में नहीं रहना है। (पृ० १२५) —वस्तुव्यंजना

५८ 'जो कुछ करने को नहीं रह जाता था। और अब भी कुछ नहीं है जो मैं आपको करने को कहता हूँ। इतना है कि आप भूल जाइये कि मैं आपका लड़का हू। मैं अनाथ होता तो इससे अच्छा होता। यह तो न होता कि दूसरे बाप मानते मैं बाप मानता और वह सब मानना बेकार जाना। (पृ० १२८) —भाव व्यंजना

५९ "आप हमारे परिवार से हमदर्दी रखती हैं आण्टी लेकिन इनका यह ढाग है कि पद नहीं चाहिए। पद के लिए तो सारा त्याग-तपस्या का यह रूप है। ऊपरी जो है, नखरा है। इसलिए है कि आग्रह अनुरोध और हो और यह जाहिर कर सकें कि पद ने नहीं बल्कि इन्होंने पद पर कृपा की है।' (पृ० १२९) —वस्तुव्यंजना

६० 'मैंने इन्कार तो नहीं किया। और कभी मा की तकलीफ भी देखता हू। पर आपकी अच्छी अच्छी बातों के चिन्तन से मेरे हाथ तो नहीं भर जाते हैं। कुछ आप हाथ में काम लीजिए और सहायता में मैं उद्यत दिखाई न दू तो कहियेगा ? मुझे कुवर के पास क्या खुशी है। बहिन का बड़ा भाई होने से बल्कि वह मेरे लिये शर्म की बात है। पर आपने मुझसे कभी काम की बात की-ही नहीं। (पृ० १४१) —वस्तुव्यंजना

६१ "पर सचमुच मेरे पास न प्यार था, न ढाढ़स का एक शब्द था। मैंने गले में पड़ी अंजलि की बाँहों को अपने से अलग किया और कहा—अंजलि, तुम मेरी बेटी हो लेकिन कुवर को गलत रास्ते पर जाने से रोक नहीं सकती हो—बल्कि शायद बढ़ावा देती रही हो। पैसा आराम जो देता है क्यों ? और अब बाप के पास आती हो ! समझ लो बाप मर गया। वह कुछ नहीं कर सकता है।" (पृ० १४७) —भावव्यंजना

६२ 'कमरे में आने पर राजश्री बोली यह सच क्या हो गया है तुम्हें ? ऐसे तो तुम कभी न थे ! मैं मिनिस्टर हो गया हू ! अचरज में राज बोली, सच ? उसका मुंह खुला रह गया और उसने मुझे देखा। मेरे माथे पर तेवर थे और उसका चेहरा अविश्वास के बाद शनै-शनै विश्वास में खिलता आ रहा था। (पृ० १४८) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

उपन्यास अनन्तर

१ उस सग-महार सचमुच क्या वे कोपल-से नये दिन स्वर्गोपम ही नहीं बन आए थे पर स्वर्ग वह दान-दान फिर मटमैली धरती बनता चला गया।[1] मुग्धा वयस्का होती गई और रोमांचकों से उतरकर मैं स्वयं निज निमित्त के काम-काज में खपता गया। सच कम कसाले के दिन थे वे।"[2] (पृ० १४) —(१) सारोपा गौणी लक्षणा (२) रूढा लक्षणा

२ कहकर अपरा खिलखिला आई। उस हसी में कुछ मुझे विषम नहीं लगा। झरने की किलोल होती है वैसी वह हँसी की लहर थी। (पृ० २७) —सारोपा गौणी लक्षणा

३ पार्टी के साथ जितनी खिली और खुली दिखाई दी डेरे पर उतनी ही बन्द और नियुक्त।[1] दोनों जगह वेष और व्यवहार भी उसका तदनुकूल था। वहां अगर वह रानी थी तो यहां एकदम नौकरानी ही लगती थी।[2] (पृ० ५३) —(१) प्रयोजनवती लक्षणा (२) वस्तुव्यंजना

४ शिथिलाचार बढ़ रहा है, जीवन भोगाभिमुख होता जा रहा है। विज्ञान बढ़े तो क्या मानव चरित्र को घटना ही चाहिए? होता यही दीख रहा है। सभ्यता के इस विषफल पर क्या म उत्क्षोभ है। (पृ० ५६) —सारोपा गौणी लक्षणा

५ इतना आराम दूंगी कि जिसको खालिस निखालिस रहना कहते हैं वह आपको मिल जाएगा। देखते ही हैं मेरे आसपास कोई कर्तव्य नहीं है। इतनी बेकाम कि निष्काम हूँ। (पृ ६०) —वस्तुव्यंजना

६ दिल की समाई ही खतम हुई जा रही है नहीं तो आतिथ्य भारत का स्वभाव था। (पृ० ६४) —रूढा लक्षणा एवं वस्तुव्यंजना

७ उसमें कहीं व्यंग्य की रेख तक न होती थी। मुझसे बात अब कम ही करती पर उन थोड़े-से वाक्यों में भी मानो श्लेष की ध्वनि रहती। (पृ० ६६) —भावव्यंजना एवं अलंकारव्यंजना

८ उसको देखकर मुझे एकाएक लगा कि पैसे में यदि गर्व होता है तो हमारी अपेक्षा के कारण ही हो पाता है। वनिया का सम्भ्रम यदि कुछ ज्ञान हुआ दीखा तो कारण यही कि उसमें सस्था के निमित्त में पैसे की मांग हो आई थी।[1] हम चाहते हैं और चाह हमें नीचे लाती है। उस चाह से पैसा गरिष्ठ हो आता है।[2] (पृ० ७५) —(१) प्रयोजनवती लक्षणा (२) वस्तुव्यंजना

९ "पसे के खच से जो समय को भरा जाता है वह उसे और खाली बना जाता है।' कुछ लोक-सेवा का काम ले सकती हो या कुछ हॉबी ही बना डालो। तब इन चीजों के लिए मन खाली न रहेगा—बोलो कहती हो कि अब मन भारी न करोगी? और कुछ देखोगी भी तो शिकायत मन मे न लाओगी?' बोलो! बोलो!" (पृ० ८६)

—(१) वस्तुव्यजना (२) रूढा लक्षणा

१० "जी, मैं इण्डस्ट्रियलिस्ट इन्सान नही हूँ और अग्रेज भी नही हूँ।' (पृ० ८५) —वस्तुव्यजना

११ अब सोचो कि मजूर महाजन की सभ्यता से मजूर-हजूर की सभ्यता कसे बढ-चढकर हो जायगी? —ठीक है कुछ लोग चितक होंगे मनीषी होंगे। बडी खुशी से हों। पर काया रखेंगे तो बिना काम और मशक्कत के उस काया मे जग नहीं लग जाएगा?" (पृ०८१) —वस्तुव्यजना

१२ मैंने कहा 'एक अपरा हटी तो क्या दिल्ली म सौ अपराए और नही हैं? यह क्या मन हारने की बात करती हो!' (पृ० ६६)

—वस्तुव्यजना

१३ 'पसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त है। वह है, क्योंकि उस पर सरकारी मुहर है। मोहर की वजह से कोरा कागज भी कितनी कीमत का हो जाता है! और सरकार वह जो प्रशासन के बल पर समाज को अनुशासन मे रखती है। शासन की इस सस्था से समाज की स्थिति बनती है। (पृ० १०१) —वस्तुव्यजना

१४ देख न लिया जी, अब तुमने। तुम्हारी अपरा जो दिल्ली म नही है। सुना? देखे ये लच्छन?" (पृ० १०६) —वस्तुव्यजना

१५ *मैं पलग पर बठा-का-बठा उफनती हुई अपनी पत्नी को देखता रहा।* (पृ० १०६) —लक्षण लक्षणा

१६ यह क्या हो जाता है कभी? सगो के बीच ही ऐसा होता है एक क्षण मे कि सब कट गया हो और बीच म अलघ्य खाई पदा करके आपस म इधर और उधर पार बन आया हो।

(पृ० १०८) —प्रयोजनवती लक्षणा

१७ मैं सबके लिए खच हो सकती हूँ मेरा कोई घर नही है और मैं सबका घर बना सकती हूँ। (पृ० ११२) —प्रयोजनवती लक्षणा

१८ सुनकर मैंने अपने उस मान्य बन्धु को देखा। वह भी किसम सलाह मागने बठे थे? जो निरे नाद बनाता है और करते धरते जिसमे कुछ बनता नही है। (पृ० ११५) —वस्तुव्यजना

१६ "जब ठौर ठिकाना न था जेल का खतरा सिर पर मंडराता रहता था उस समय की मन की ताजगी और खुशी तो जैसे अपना सपना बन गई है। (पृ० ११६) —रूढा लक्षणा

२० अब मैं किसी की पत्नी नहीं हूँ होने की संभावना भी समाप्त हो गई है। आदमी को मैंने देख लिया वह बेचारा होता है। इस बेचारगी में घर पत्नी सचमुच उसे सहारा होती होगी।" (पृ० ११८) —वस्तु व्यंजना

२१ जी नहीं—शायद आप पिता बोल रहे हैं। मैं लेखक प्रसाद को साथ रखना चाहती हूँ—और कहिए?' (पृ० १२२) —लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

२२ बुद्धि की और आत्मा की बातों में जो हम ऊँचे उठ जाते हैं तो जमीन से टूट आते और हवाई बनने लगते हैं।' (पृ० १२४) —वस्तुव्यंजना

२३ पर पुस्तक जिसे कहते हैं उसमें भाव और विचार ही नहीं होता कागज पुट्ठा भी लगता है। भाव भाषा प्राप्त कर लें, इतना बस नहीं है। उसको फिर पण्य वस्तु बनाकर बाजार भेजना जरूरी होता है। लेखक भीतर अपने मन के साथ बाहर उस माल से भी जुड़ा है। यहीं से बात सीधी से टेढ़ी हो जाती है। (पृ० १२५) —वस्तुव्यंजना

२४ 'इस पर एकाएक असंगत भाव से वह बोला—आप अपने को बहुत बुद्धिमान समझते हैं?' (पृ० १३०) —विपरीत-लक्षणा एवं भाव व्यंजना

२५ 'अब वे लड़के कहते हैं विज्ञान से देख लिया गया है कि आत्मा कहीं नहीं है। जो है है। ढूढ बेकार है। हममें तृष्णा है वासना है तो है। अरुचि के विशेषण देकर उसे हटाया नहीं जा सकता। व्यवस्था के नाम पर जो नीतिवाद खड़ा किया गया है ढकोसला है। ढकोसला उनका है, जो खुद के लिए भोग और दूसरे के लिए संयम चाहते हैं।
(पृ० १३२) —वस्तुव्यंजना

२६ सँभालने में ज्यादा दरकार नहीं होता। दिमाग का उफान हाथ के काम से आप बैठने लगता है। पसीना डाले कुछ उगाए-बनाए वह तो सब ठीक हो जाएगा। लेकिन तुमने तो दिमाग उसका बहका दिया है। वह मेरे पास आएगा क्या?' एक बार उखड़ा तो शांति से कम कुछ करना वह क्या चाहेगा? (पृ० १३३) —रूढा लक्षणा

२७ चारु बोली ठीक तो कहता है अपनी बंसी को थाम रख लो और सारी दुनिया को मार डालो और क्या? (पृ० १५३)—भावव्यंजना

२८ "अपरा चारु और रामेश्वरी के चल जाने के बाद मैं अपनी अकिंचित् करता और स्त्री की प्रभुतापूर्णता पर सोचता रह गया। स्पष्ट हो गया कि जो मस्तिष्क के वश का नहीं है वह हृदय के सधान स अनायास हो आता है।' (पृ० १५४) —प्रयोजनवती लक्षणा

२९ 'तुमने तब हृदयहीन न माना होगा वही सहृदय हो पडता है।' विजनिस मे विचारे को अपनी सहृदयता के लिए मौका नही मिलता हम सबको कृतज्ञ होना चाहिए कि अपरा ने उसके हृदय के उस तल को छुआ है और बनानि, इसको तुम गलत न समझोगी। (पृ० १५८ ५६)

—भावव्यजना

३० अपरा तुरत बोली, तो आप सोच म क्या पडी हैं वनानिजी। आपका जो काम है आपका है। पसे का काम हम जैसा पर छोडिए जो भोग राग सोग म दीखन हैं—वह सब मैं करूगी। आखिर चरित्रहीनता का कुछ तो लाभ हो। कहकर फिर उघाडी-सी हस आई। (पृ०१६२)

—अभिधामूला शाब्दी व्यजना

(३) प्रतीक-योजना सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

प्रतीक की पृष्ठभूमि

चिरकाल से मनुष्य अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीको का आश्रय लेता रहा है। रहस्यवादी काव्य के सदभ मे प्रतीका को एक विशिष्ट अथ गौरव एव गरिमा प्राप्त हुई है। छायावादी काव्य सृजन की प्रक्रिया में प्रतीका का विशष रूप से प्रयाग किया गया और इ हे अभिव्यक्ति के लिए अपरिहाय समझा गया। छायावाद युग म कथा साहित्य पर भी इस प्रतीक पद्धति का प्रभाव स्पष्ट रूप मे देखा जा सकता है। सभवत जनेन्द्र ही पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने प्रतीको का पुष्कल मात्रा म उपयोग किया है इससे पूव इनकी आशिक अभि व्यक्ति प्रसादजी के कथा साहित्य म भी देखी जा सकती है।

प्रतीक की व्याख्या

हिन्दी शब्द कोशा म प्रतीक के कई अथ मिलत है। जसे—चिह्न लक्षण, आकृति किसी के स्थान पर या बदले म रखी हुई वस्तु।[१८] दूसरी ओर प्रतीक के अंग्रेजी पर्याय सिम्बल के भी निम्नांकित अथ प्रचलित हैं[१९] (१) प्रतीक

१८ प्रामाणिक हिन्दी शब्द-कोश सम्पादक रामचन्द्र वर्मा।

१९ चेम्बस इग्लिश डिक्शनरी।

वह चिह्न होता है जिससे कोई वस्तु जानी जाती है। (२) स्वेच्छा से प्रयुक्त या परम्परागत संकेत। (३) जो किसी अन्य का प्रतिनिधित्व करता हो। इन शब्दार्थों का समन्वय करते हुए डाक्टर गणपतिचन्द्र गुप्त ने यह निष्कर्ष निकाला है प्रतीक वह विशेष संकेत चिह्न होता है जिसका प्रयोग स्वेच्छा से या परम्परा से किसी अन्य अर्थ के प्रतिनिधित्व के लिए होता है।[२०]

विभिन्न विद्वानों ने प्रतीक की विविध परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं (१) प्रतीक मूल्य का प्रतिनिधि होता है।[२१] (२) एक विशेष प्रकार का संकेतात्मक शब्द प्रतीक है।[२२] (३) किसी मूल्य के एक स्तर की सत्यता का किसी अन्य मूल्य की समान सत्यता के द्वारा प्रतिनिधित्व देना ही प्रतीकवाद है।[२३] (४) सौन्दर्यशास्त्र में प्रतीक वह वस्तु है जो कि अपने तात्कालिक अभिप्राय से भिन्न किसी अन्य एवं अभिप्राय को सुझाता है जो कि विषय की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हो।[२४]

इन सभी परिभाषाओं के आधार पर डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने एक समन्वित परिभाषा देने की चेष्टा की है, जो कि निम्न प्रकार है प्रतीक विशेष संकेत चिह्न होता है जिसका प्रयोग किसी अन्य अर्थ के प्रतिनिधित्व के लिए होता है।[२५]

प्रतीक के सामान्य स्वीकृत लक्षणों के रूप में तीन विचार बिन्दुओं को प्रस्तुत किया गया है

(१) विशेष संकेत चिह्न

(२) अनेकार्थक, जिनमें से एक सामान्य और प्रत्यक्ष तथा दूसरा विशेष और अप्रत्यक्ष होता है।

(३) अप्रत्यक्ष एवं विशेष अर्थ की प्रत्यक्ष एवं सामान्य अर्थ से अधिक महत्ता।[२६]

यदि इस उपर्युक्त विवेचन को जनेन्द्र के उपन्यासों के प्रतीक विधान के संदर्भ में देखा जाए तो हम यही कह सकते हैं कि प्रतीक उपन्यासकार को ज्ञात

---

२० साहित्य विज्ञान डाक्टर गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ३२८

२१ लग्वेज एण्ड रियलिटी डब्ल्यू० एन० अरबान पृ० ४०३।

२२ डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटररी टर्म्स शिप्ले पृ० ४०५।

२३ वही।

२४ लग्वेज एण्ड रियलिटी डबल्यू० एन० अरबान पृ० ४६६।

२५ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ३२८ २६।

२६ वही, पृ० ३२६।

रिक अभिव्यक्ति के एव विशिष्ट सदर्भों के वे सकेत चिह्न हैं, जो कि घटना और चरित्र को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। उपन्यासकार का कथ्य द्वारा सचित्र हो जाता है और उसका ध्वन्यर्थ पाठक के मन मे नये बिम्बो का निर्माण करता है। जिस बात को प्रत्यक्ष रूप म नही कहा जा सकता, उसको हम किसी प्रतीक की आड लेकर बडी आसानी से कह सकते हैं। उदाहरण के लिए त्यागपत्र म मृणाल और प्रमोद के सबधो को, लहराते हुए जीवन-समुद्र म डूबती हुई मृणाल के रूप म, प्रस्तुत किया गया है, प्रमोद तट पर खडा है और वही स उसकी मानसिक प्रतिक्रियाए बुआ की गतिविधि को लक्ष्य करके प्रकट होती हैं।

प्रतीकों की अभिव्यक्ति मे भाषा शैली का स्वरूप

प्रतीक विधान म भाषा-शैली एक नये रूप को ग्रहण करती है। जो भावनाए रचनाकार के मन म वायवी रूप मे विद्यमान होती हैं, उनको वह कल्पना का रक्त-मास प्रदान कर अस्तित्व मे लाना चाहता है। ऐसी स्थिति मे अत्यन्त ही गुह्य प्रसगो को एव निषिद्ध अभिव्यजनाओ को वह प्रतीक के माध्यम से प्रकट कर सकता है। उदाहरण के लिए, सुनीता और हरिप्रसन्न के उस प्रकरण को लिया जा सकता है जिसम वे दोनो एक-दूसरे के प्रति समर्पित होने की सीमा तक पहुच गए थ, और फिर समपण धारा के तट से वापस लौट आए। ऐसी स्थिति म रचनाकार की भावनाए अत्यन्त उत्तेजित एव स्वत स्फूत होती हैं। उसका बिम्ब विधान प्रतीको का आश्रय लेकर अपनी कल्पना को साकार करता है। वस्तुत प्रतीको की अभिव्यक्ति म उपन्यास की भाषा शैली का स्वरूप भी बहुत-कुछ कविता के निकट पहुच जाता है। वसी ही भावना, वसी ही कल्पना की द्रावकता और अनुभूति की तल्लीनता हम गद्य मे भी पाने लगते है। स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति मे उपन्यासकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए अलकारो का आश्रय ल और उसकी भाव वीचिया रस की धारा से उद्भूत हो। जनेन्द्र के उपन्यासो मे जहा कही भी प्रतीक का प्रकरण आया है वहा कथा गद्यकाव्य का परिधान प्राप्त कर लेती है और तब उनकी और छायावादी कवियो की अभिव्यक्ति मे कोई पार्थक्य नही रह पाता।

प्रतीकों का महत्त्व

प्रतीक-योजना के अनेक प्रयोजन बताये गये हैं (१) विचार की व्याख्या करना, (२) उसे स्वीकार्य बनाना, (३) उसे आवृत करना, (४) उसे अनुभूति गम्य बनाना, (५) विषय को अलकृत करना आदि।[२७] इन प्रयोजनो स एक बात

---

२७ डिक्शनरी आफ वल्ड लिटरेरी टर्म्स शिप्ले, पृ० ४०८।

स्पष्ट है कि प्रतीक के माध्यम से कथ्य में चारुता एवं प्रभविष्णुता की वृद्धि होती है। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त का कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है विचार एवं अनुभूति के योग तथा कल्पना शक्ति की उद्दीप्ति के कारण प्रतिपाद्य विषय में उस शक्ति की उद्दीप्ति हो जाती है जिसे हम आकर्षण शक्ति कहते हैं। किन्तु यहा यह ध्यान रहे कि यदि प्रतीकों के दोनों अर्थ—प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत—ही बौद्धिक या विचारात्मक हुए तो वहा प्रतीक काव्यात्मक न रहकर विज्ञाना त्मक बन जायेंगे विज्ञान में प्रयुक्त प्रतीक केवल अर्थ की व्याख्या करते हैं, उनमें उस आकर्षता का उद्बोधन नहीं हो पाता जो कि साहित्यिक प्रतीकों में होता है।[२८]

उपन्यासों में प्रतीक विधान कल्पना एवं वास्तविकता के बीच सेतु निर्माण का कार्य सम्पन्न करता है। चूंकि उपन्यास का वास्तविकता से घनिष्ठ संबंध है अतः उसे बुद्धि-ग्राह्य बनाने के लिए उपन्यासकार को कुछ काल्पनिक प्रतिमाओं का निर्माण करना होता है जिससे कि वास्तविकता में रुचिरता का सन्निवेश हो। एकदम यथार्थ चित्र कथा सृष्टि को रूक्षता प्रदान कर सकते हैं अतः प्रतीकों की परिकल्पना से उन्हें मोहक रूप प्रदान किया जाता है। जब कोई मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार प्रतीक का आश्रय लेता है तो उसका आशय सचित्र हो जाता है और उसका पाठक से तादात्म्य सहज ही स्थापित हो जाता है। प्रतीक का यही महत्त्व एवं उपादेयता है।

प्रतीकों का वर्गीकरण

श्री अरबान महादेय ने रूपात्मक दृष्टि से प्रतीकों के तीन भेद किये हैं (१) संकेतात्मक (२) व्यंग्यात्मक और (२) आरोपमूलक।[२९] इनमें परस्पर सूक्ष्म अन्तर इस प्रकार दिखाया गया है (१) संकेतात्मक—इनमें प्रतीकात्मक शब्द का विशेष महत्त्व नहीं रहता, केवल संबंधित पदार्थ का ही महत्त्व रहता है। उदाहरण के लिए हम अपने कुत्ते का नाम कमल रख देते हैं। यहां कमल विशेष कुत्ते का पर्यायवाची है। (२) अभिव्यंजनात्मक— इनमें प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग विशेष प्रयोजन से होता है। मेरा नौकर बिल्कुल गधा है उसे कुछ भी समझ में नहीं आता। यहां गधा मूर्खता का प्रतीक है। (३) आरोपमूलक—इनमें जान-बूझकर एक अर्थ पर दूसरे अर्थ का आरोपण होता है। यथा—ठाढा सिंह चराव गाई (कबीर) मधुर-मधुर मेरे

---

२८ साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त पृ० ३३२।

२९ लग्वेज एण्ड रियलिटी, पृ० ४०७।

दीपक जल' (महादेवी)। साहित्यिक दृष्टि से दूसरे और तीसरे प्रकार के प्रतीकों का विशेष महत्व है।

प्रतीक और शब्दशक्तियां

यह संयोग की ही बात है कि प्रतीक और शब्द शक्तियों में बड़ा घनिष्ठ संबंध है। संकेतात्मक प्रतीकों या व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में वाच्यार्थ शून्य होता है जबकि तथाकथित अभिव्यंजनात्मक प्रतीक, विशेष प्रयोजन से प्रेरित होने के कारण लक्ष्यार्थ की अभिव्यंजना करते हैं। आरोपमूलक प्रतीकों में शब्दों पर नये अर्थ का आरोपण होता है तथा इनमें दो अर्थों—प्रस्तुत और अप्रस्तुत—की सह स्थिति रहती है अतः इनके मूल में व्यंजना-शक्ति की सत्ता स्वीकार की जा सकती है। वस्तुतः आरोपमूलक प्रतीक व्यंग्यार्थ की व्यंजना करते हैं। अस्तु प्रतीकों के तीनों प्रकार—संकेतात्मक अभिव्यंजनात्मक एवं आरोपमूलक—क्रमशः अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना शक्तियों पर आधारित हैं।[1]

जनेन्द्र का प्रतीक विधान

'परख' से लगाकर 'अनन्तर' तक जनेन्द्र ने प्रतीकों का पुष्कल मात्रा में उपयोग किया है। इस संदर्भ में उनकी तुलना सहज ही छायावादी कवियों के प्रतीक विधान से की जा सकती है। इन प्रतीकों के माध्यम से कहीं जीवन की ललक स्फूर्ति एवं व्यग्रता दर्शायी गई है तो कहीं यौवन का दुर्दान्त रूप इनका विषय बना है। नारी जीवन की यातना को जनेन्द्र ने विशेष रूप से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इस यातना की बहुविध छवियां प्रतीकों के माध्यम से ही दर्शायी जा सकती थीं। मनोवैज्ञानिकता के निर्वाह में भी इन प्रतीकों से बड़ी सहायता मिलती है। मानसिक जीवन के विविध क्रिया-कलाप, इनकी विषय-वस्तु बनते हैं। प्रतीक विधान की स्थिति में भाषा शैली भी एक नये सांचे में ढलती है, उसमें कल्पना का वैभव और अनुभूति की प्रखरता विशेष रूप में देखी जा सकती है।

जनेन्द्र के श्रेष्ठ उपन्यासों में सुनीता, त्यागपत्र जयवर्धन और मुक्तिबोध को लिया जा सकता है। इन उपन्यासों का प्रतीक विधान अत्यन्त रुचिर एवं सचित्र है। शब्दों के माध्यम से उपन्यासकार जब चित्र का निर्माण करता है, तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड़ आते हैं। छायावाद युग में प्रतीकमयी पद्धति को एक विशेष गौरव प्राप्त हुआ ही था किन्तु इसके बाद के युगों में भी इनका

१. साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० ३३१।

महत्त्व कम नहीं हुआ है। कविता के उपमान भले ही मल पढ गये हों, पर प्रतीकों में इतनी विविधता एवं नवीनता है कि उनके मल पढने की कल्पना सहज में नहीं की जा सकती।

अगले पृष्ठों में हमारा प्रयत्न यह होगा कि हम जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि में प्रतीक विधान की स्थिति का पर्यालोचन करें और उसके उपरान्त कुछ निष्कर्ष निकालें। प्रारम्भ में प्रतीक के उदाहरण, तत्पश्चात् उसी का प्रतीकार्थ देने की चेष्टा की गई है।

(४) प्रतीक के उदाहरण एवं प्रतीकार्थ
'परख' से 'अनन्तर' तक

उपन्यास परख

प्रतीक

पर यह क्या हो गया ? पल भर में यह कैसी गडबड मच गई। अब तक तो कुछ न था। अपने उस चबूतरे पर बैठकर जीवन को और ससार को पढने और सुलझाते रहने में कोई मुश्किल नहीं जान पडी पर जैसे अब सारा ससार और वह उनका चबूतरा—सब एक भूले में भूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्व को डुबाने-उतराने लगी। सब-कुछ मिट मिटाकर सावन के इन्द्रधनुष के रंगों में लय हो गया—और उन विरंग रंगों में भाक भाक कर दमकती हुई दीखने लगी वह कट्टो ! यह किसकी माया थी ?

जरा सी ककरी ने आकर सोए हुए विशाल जल-तल की स्थिरता भग कर दी। हल्की सी हवा का भोंका जैसे जब जल-तल को थपकता हुआ बहता है तो उस सारे तल में एक सिहरन-सी होती है उसमें कपकपी उठ जाती है बस ही किसी अज्ञात आवेग के मीठे भोंके ने उनके सोये जीवन के तल पर एक सिहरन सी फैला दी। कटोर को जैसे बाहर से छू लिया हो और उसके भीतर का पानी यहां से वहा तक काँप गया हो। जीवन की गहराई में से जो लहर उठी हो उसको मनुष्य के बनाए हुए धारणा-सकल्पों के रेत के किनारे कहा तक और कब तक रोक सके हैं !

प्रतीकार्थ

यह भूला प्रणय का सजीव प्रतीक है। लहर भावुकता की है उसी ने उनके मन को अभिभूत कर लिया है। इन्द्र धनुषी रंग प्रणय-कल्पनाओं के प्रतीक कहे जा सकते हैं—विविध रंगी और सजल। इन रंगों में से कट्टो का

भावता हुआ चेहरा प्रणय का साकार स्वरूप है। कुल मिलाकर यह एक न्विा स्वप्न है जिसम प्रणय प्रतीक बडे मोहक रगो म उद्भासित होते हैं।

विशाल जल-तल सत्यधन के जीवन का प्रतीक है और कबरी प्रणय के आवेग को। अनात आवेग के मीठे झोके भी प्रणय भावनाओ के हैं। कटोरे के पानी के कापने मे जल तरग का तरल प्रकपन है। कटोरा भी प्रणय भावना के छलकते हुए हृदय का प्रतीक कहा जा सकता है। धारणा सकल्पा के रस के किनारे रूढ़ियां और मर्यादाओ के प्रतीक हैं, जिन्हे जीवन की गहराई म से उठने वाली प्रणय की लहर अपदस्थ कर देती है।

सम्पूर्ण चित्र एक गद्यकाव्यात्मक गरिमा लिये है और इस रूपक का झिलमिल आवरण इतना पारदर्शी है कि अन्त सरोवर की सभी तरग उसम भासमान होती है।

२ प्रतीक

बारह एक बजे से इस बात की टोह मे है कि कोई पर्वी जाने वाला जागे और यह अपने जाने की विध ठीक कर ले।

क्या लाएगी ?—दो चूडिया लाल एव बिन्दी टिकिया की डिबिया एक केह। वह कसे बताए ? याद नही। लाज आती है। कल देखा जाएगा।

और बात देखो। कसी गगा की पर्वी आई है—ठीक जबकि उसके भी जीवन का पव अचानक ही आ पहुचा है। उसके मन म सन्देह नही यह इस पर्वी का ही प्रसाद है। (पृ० ४०)

प्रतीकाथ

बारह एक बजे से इस बात की टोह मे होना कि कोई पर्वी जान वाला जागे—यह कट्टो के अभूतपूव उत्साह का प्रतीक है। इसी उत्साह उल्लास की पृष्ठभूमि म सौभाग्य के प्रतीक रूप मे दो लाल चूडियो और एक बिन्दी टिकिया की डिबिया के रूप म वह न केवल अपने प्रसाधना का जुगाने की बात *सोचती है बल्कि भविष्यत् जीवन के आनन्दोल्लास की भी इससे अभिव्यक्ति* है। आगे की कल्पना मे लाज से ग्रसित हो जाना नववधू की मन स्थिति का परिचायक है। देहाती बालिकाए बडी आस्थावान् होती है। कट्टो सोचती है कि यह इस पर्वी का ही प्रसाद है कि वह अपनी मन की मुराद पूरी कर सकी। कुल मिलाकर ये पक्तिया नव वधू के स्वाभाविक उल्लास को प्रतीक रूप म प्रकट करती हैं।

३ प्रतीक

वह भाग गई। भागकर चौके में नहीं गई, अपने कमरे में आई। वहाँ एक ताक में चिरकाल से रखे आले में अभी अभी ताजी ताजी जिमाती से खरीदी एक सिंदूर की डिबिया, एक छोटा सा दर्पण, एक राधा किसन की तस्वीर—ऐसी ऊटपटाँग चीजें सजाकर रख दी हैं। वहाँ आकर उस छोटे से दर्पण को लेकर दोनों भौंहों के बीचों बीच जगह ऊपर को माथे से उस डिबिया में से बड़ी लाल सी एक सिंदूरी लगा ली। हँसती रही—कैसी यह लाल लाल बिंदी काली पड़ती जा रही है। (पृ० ४७)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्तियों में हम प्रतीक रूप में कट्टो के उस भविष्यत् जीवन का चित्र पाते हैं जो कि उसका मनोकाम्य है। सिंदूरी दर्पण जहाँ उसका शृंगार सज्जा के प्रसाधन हैं वहीं राधाकृष्ण की तस्वीर उसके अमर प्रणय जीवन का प्रतीक। लाल लाल बिंदी का काली पड़ना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु यहाँ उस सामग्री ने इसके द्वारा कट्टो के भविष्य की अभिशप्त नियति का दिग्दर्शन कराया है। इस प्रकार बिंदी का काला पड़ना भविष्य के विनाश का प्रतीक कहा जा सकता है।

४ प्रतीक

इसी बीच में सोचते सोचते तीव्रता आ गई। तभी वह कोने में से उठ आई। हाथ से एक झटके में खाट को हाथ पीछे जा पड़ा। सिर उघड़ गया। उघड़ा सा—सा रहा हुआ। दावात के संग कागज ले आई और खाट पर बैठकर लिखने लगी। फिर वहीं खाट पर बैठी बैठी ऊपर उघड़े सिर को देखकर और नीचे बस लिखी जाती हुई चिट्ठी को देखकर चुप चुप कैसी लाल लाल हँसी हँस रही है। (पृ० ६८)

प्रतीकार्थ

सिर का उघड़ जाना और फिर उस उघड़पन की चिंता न करना अल्हड़पन का ही प्रतीक है। खाट पर बैठकर लिखने की तन्मयता, आतुरता के एक साथ की याद दिलाती है, यह प्रणयाभिव्यक्ति का एक प्रकार है। चिट्ठी रागरंग का प्रतीक है और यहाँ चिट्ठी ऐसा मजाक है कि वह उघड़े सिर को भी ढकती नहीं, और नीचे इस लिखी जाती हुई चिट्ठी को देखकर लाल लाल हँसी हँस जाती है। लाल लाल हँसी अनुराग की प्रतीक कही जा सकती है। कुल मिलाकर यह जैनेन्द्र के प्रारंभिक उपन्यास का विशिष्ट व्यवहार है।

५ प्रतीक

बिहारी ने झट से सभाल लिया। सत्य पर उसे बडा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहा होता तो उसका सिर पकडकर, इस कट्टो के पैरो के पास धूल म इतना घिसता कि बाल सारे उड जाते। हाय, कमबख्त स्वग के इस अछूते पारिजात की गध को जूठा करके छोडे जा रहा है। (पृ० ६६)

प्रतीकाथ

कट्टो की सत्य के प्रति जो निष्ठा बिहारी ने देखी तो उसे अपने मित्र पर इतना क्रोध आया कि वह सत्य के सिर को कट्टो के परो मे डालकर इतना घिसना चाहता है कि उसके सारे बाल उड जाए। सारे बालो को उडाना बिहारी के क्रोध की चरम सीमा है। इस क्रोध के प्रतीक मे कट्टो के प्रति उसकी निष्ठा और सत्यधन के प्रति उसकी जुगुप्सा छिपी हुई है। स्वग का अछूता पारिजात कट्टो के व्यक्तित्व का सजीव प्रतीक है। इस पारिजात की गध को जूठा करने मे सत्यधन की स्वाथपरता झाक रही है। इस प्रतीक के द्वारा उसकी नीचता पर भी पूरा प्रकाश पडता है।

प्रतीक

इस हा को सुनकर कट्टो पत्थर की मूर्ति से खडे सत्य के परो म जाकर लोट गई। एक बार और लोटी थी। तब शाम थी अब दोपहर है। तब स्वग के द्वार खोले गए थे आमत्रणपूवक अब आमत्रित कट्टो के मुह पर ही ढाप दिए गए है। खुले थे तब भी वह उन परो म लोटी थी बन्द कर दिए गए हैं तब भी वह इनम ही पडी है। उसकी यह कैसी समझ है! (पृ० ८१)

प्रतीकाथ

पत्थर की मूर्ति निष्ठुरता की प्रतीक है। परो म लोटना अगाध श्रद्धा का प्रतीक है। स्वग के द्वार प्रणय-लोक के द्वार हैं। चाहे प्रेम करे या न करे किन्तु समर्पिता नारी तो प्रियतम के चरणो म अपना स्थान पाती है। अह का विलय ही सच्चा प्रेम है।

उपन्यास सुनीता

१ प्रतीक

श्रीकान्त और सुनीता के परस्पर सयुक्त जीवन म इधर कुछ प्रमाद जडता और बधन का बोध आ चला था। उस शान्त असल तल पर हरिप्रसन्न आ

आविर्भूत हुआ। वहाँ लहरें उठ लहरीं। नींद जागी। प्रशान्तता अशान्त हुई। किन्तु इसमें उस संयुक्त जीवन को कुछ हर्ष और रसास्वाद की अनुभूति प्राप्त हुई। कुछ पूर्णता ही प्राप्त हुई। तब सुनीता के प्रति श्रीकान्त की आँखें जैसे अधिक खुलीं। सुनीता भी जैसे भीतर से अधिक खिली और दोनों परस्पर में मानो कुछ अतर्क्य समभ्रम अधिक प्रस्तुत और अधिक प्राप्त होना चाहने लगे। (पृ० ४०)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्तियों में सरोवर के रूपक द्वारा श्रीकान्त और सुनीता के दाम्पत्य जीवन में हरिप्रसन्न के आने से जो परिवर्तन आया है, उसकी प्रतीक-पूर्ण व्यंजना है। नींद जागी। प्रशान्तता अशान्त हुई—इन दो लघु वाक्यों में साहित्यिक विरोधाभास का मार्मिक चित्र है। हरिप्रसन्न के आविर्भूत होने के संदर्भ में श्रीकान्त को सुनीता में अधिक सौन्दर्य दीखने लगा। परिणामस्वरूप अपनी स्वीकृति से सुनीता भी फूल के मानिंद खिल उठी। फूल के खिलने में यौवन और सौन्दर्य के प्रस्फुटन का प्रतीक है। दोनों के बीच की एकरसता समाप्त हुई और परस्पर आकर्षण में वृद्धि हो चली। इस प्रकार प्रस्तुत अनुच्छेद में रूपक और प्रतीक-योजना एक-दूसरे के समानान्तर चलते हैं।

२ प्रतीक

उस रात उसने दो तीन रंगीन बेल बूटों की ड्राइंग बनाई। बीच-बीच में उनमें नागरी के अक्षर लिखे जो ठीक चीन्हे न पड़ते थे न जिनका क्रम और अर्थ कुछ समझ में आता था। एक मोटो बनाया—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। और उस वाक्य के चरण-तल में ऊपर की ओर देखता हुआ एक नन्हा-सा प्रश्नवाचक लाल रंग में टाँक दिया। वह नन्हा चिह्न लहू की बूँद सा नन्हा और लाल रमणी के भाल पर कुंकुम के छींटे जैसा स्थिर और दीप्त उस गरिमामय वाक्य के मूल में स्थान बनाकर बैठा रहा। मानो वही मुख्य है मानो समस्त का मध्य बिंदु वही है उस तमाम पंक्ति का सुहाग उसकी गरिमा मानो उसी फंदे की सी बिन्दी में बन्द है। मानो आत्मा उस प्रश्न में ही है शेष तो शरीर है—मर भी सकता है। उसको लेकर ही मानो सब सजीव है नहीं तो सब व्यर्थ है भ्रम है। (पृ० ८७)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत चित्र में हरिप्रसन्न अपने मन के अचेतन एवं अवचेतन को रूपाकार

दे रहा है। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' से उसकी स्वदेश भावना प्रकट होती है। अक्षरो का रेखाकन जस एक चुनौती को प्रकट करता है कि इस जन्मभूमि के लिए क्रान्ति करनी है। नन्हा-सा प्रश्नवाचक, जो कि लाल रग म टाका गया है और जिससे लहू की बूद या रमणी के भाल बिंदु की कल्पना की गई है वह वास्तव मे क्रान्ति का प्रतीक है। इस प्रकार इस चित्र म क्रान्ति और स्वदेश भक्ति के परस्पर सबध को स्पष्ट किया गया है। इसके बाद के दूसरे चित्र म उसन नारी सौदय के प्रति अपनी सजीव प्रतिक्रिया का आका है। इस चित्र म जो बलिदान की मुद्रा है, वह भी जसे इस बात की प्रतीक है कि वह नारी सौदय म नही अटक सकता, और कि उसे क्रान्ति की ओर भी उन्मुख होना है। सारी रात जाग कर जो चित्र उसने बनाये हैं उनमे उसके प्राणो की व्यथा की अभिव्यक्ति है। कुल मिलाकर यह हरिप्रसन्न के अतद्वन्द्व को ही प्रकट करते है।

३ प्रतीक

किन्तु भीतर से क्या कुछ काला-काला फेन सा घुमडता उठ रहा है ? उसी को खीचकर बाहर निकाल देना होगा। उसी को चीरकर अपने से अलग करके इस तस्वीर म कील देना होगा। यह हो जाएगा तब कहेगा—ओ तू !—वही रह। और ओ रे हठी प्रार्थी मनुष्य। उस अधेरे स्तूप को छोड। वहा अधेरा है, वहा उत्तर नहीं है। मुड आ कठोर पृथ्वी की ओर, उसे उवरा कर उस हरियाली कर शस्यदा कर। उस अंधेरे गह्वर मे थाह नही है तल नही है। अरे अभाग, मुड आ। यहा कम के बीच तेरी प्रतीक्षा है। वहा क्यो भक्ष्य बनने को खडा है ? यहा आ और जयी बन, यशस्वी बन ! (पृ० ११६)

प्रतीकाथ

काला फेन हरिप्रसन्न की अत स्थ वासना का प्रतीक है। इसे खीचकर अलग कर देने के विचार म नतिकता का स्फुरण है। पृथ्वी की ओर मुडना उसे उवरा करना—इन सबम कतव्य की गूज है। अधेरा गह्वर मन की अथाह गहराई का प्रतीक है। जो कतव्य के आवाहन को नही सुनता, वह उसी अथाह गहराई का ग्रास बन जाता है। जयी और यशस्वी बनने के आत्म सकेत म कतव्य का ही विस्फोट है। इस प्रकार प्रस्तुत चित्र म हरिप्रसन्न अपने ही आत्म सकेतो द्वारा अपने अतद्वन्द्व को काटकर श्रेय की ओर बढना चाहता है किन्तु क्या वह बढ सका ?

४ प्रतीक

स्वामी के वक्ष से लगकर सुनीता ने कहा कुछ नहीं है मेरे प्रिय। राहु आया है सो दूर होगा। श्रद्धा की पूर्णिमा तो प्रकाशित ही रहेगी। श्रद्धा मेरी कमी न जाएगी। मेरे प्रिय ! मुझे प्रेम करना न छोड़ो। मुझे बे-सुध रहने दो। सुध पाकर मैं फिर क्या रहूँगी। मेरा तो सब आधार लुट जाएगा। मुझे तो खोया रहने दो। (पृ० १२२)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्तियों में सुनीता जैसे अपने पति से आत्म-विश्वास की ही याचना कर रही है। राहु सुनीता के मन का वह अविश्वास है जो कि हरिप्रसन्न के सान्निध्य में आने पर उभरा है। श्रद्धा की पूर्णिमा दाम्पत्य जीवन के प्रति आस्था की प्रतीक है। सुनीता श्रीकान्त के प्रेम में ही अपने को खोया रखना चाहती है क्योंकि जहाँ उसने इससे विस्तार पाया वहीं वह राहु में ग्रसी गई।

५ प्रतीक

बैठी-बैठी सुनीता तस्वीर को देखने लगी। ज्यों ज्यों वह तस्वीर को देखती है, त्यों त्यों उसमें खोई सी हो जाती है। मानो एक गुफा है जिसका प्रवेश द्वार निमंत्रणपूर्वक खुला है पर जिसमें प्रवेश करके वापस आना नहीं होता जिसका आर पार नहीं है। मानो उस गुफा की देहलीज पर खड़ी वह देख रही है और पूछना चाह रही है कि क्या है ? बढ़ने का साहस नहीं है पर आगे से कोई चुनौती आ रही है जो कह रही है—मत आओ। देखो मत आओ। और वह चाह रही है जानना कि वह पुकार क्या है ? (पृ० १३२ ३३)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत चित्र में हरिप्रसन्न के अन्तश्चेतन की आड़ी तिरछी रेखाएं हैं। गुफा नारी के सौंदर्य लोक का प्रतीक है। जो इसमें आबद्ध हो जाता है उसका कोई त्राण नहीं। यह सौन्दर्य लोक अत्यंत आमंत्रणकारी है। इस लोक में एक चुनौती की आवाज आती है जिसमें निषेध भी है और आमंत्रण भी। नारी के प्रति नर का भी कुछ ऐसा ही भाव रहता है। हरिप्रसन्न का कलान्तर ऐसे ही चित्रों में आत्माभिव्यक्ति पाता है।

६ प्रतीक

एकाएक उसे जान पड़ा कि भाग्य ने जो उसे सुनीता के तट पर ला छोड़ा

है, सो इसलिए कि वह उसे पहचाने और उपयुक्त उपयोगिता म उसको प्रतिष्ठित करे। दल का एक न्त्री (नेत्री) चाहिए जो युवकों की स्फूर्ति का स्रोत हो। आज सुनीता को देखकर हरिप्रसन्न को लग रहा है—वह यही है यही है।

कमरे म आकर इसी विचार को वह अपने भीतर पा [illegible] लगा। वह विचार देखते देखते रंग विरंग के पत्र पुष्पों से लसित उसके भीतर लहलहा उठा। म ना सुनीता इस घर की है ही नहा। वह हरिप्रसन्न के स्वप्न की है। कीच मिट्टी पत्थर के नीचे दबा हुआ हीरा क्या मुकुट म अपने स्थान पर नहा पहुचेगा? धरती म दबा वह तभी तक के लिए तो है जब तक पारखी की आख उसे नही पाती। पारखी वह क्या है जो ज्ञान के प्रति अपनी जिम्मेदारी नहीं पहचानता नहा, वह अपने धर्म म नहीं हारेगा। (पृ० १३२)

प्रतीकार्थ

प्रारम्भिक अनुच्छेद म एक विचार स्फुरणा है जैसे उस सुनीता की माधकता का अचानक ही अहसास हुआ हो। वह यही है यही है—इस वाक्यांश म जैसे उसके विचारों की सम्पुष्टि ही साकार हो गई है। इस सम्पुष्टि के मूल म उसके मन की दुबलता है जो कि सुनीता पर एक नया आवरण डाल कर उसका उपयोग किया चाहती है। उपयुक्त उपयोगिता एक विचित्र प्रयोग है उपयोगिता के पूर्व उपयुक्त शब्द लाकर दोहरे बलाघात (डबल एम्फेसिस) का प्रयोग किया गया है जो कि विशेष अर्थ नहीं रखता। पत्र पुष्पों से लसित विचार का लहलहा उठना भी रोमांचक उत्सव है। यहां छायावादी गद्य की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। सुनीता घर की है ही नहीं हरिप्रसन्न के स्वप्न की ही है इस वाक्य म स्वाधिकार की भावना है जो कि क्रांति के आवरण म नियोजित की गई है। कीच मिट्टी पत्थर गृहस्थी के प्रतीक है और हीरा सौन्दर्यमयी सुनीता का प्रतीक है। मुकुट वह शीर्ष क्रान्ति है जिसम हरि सुनीता का उपयोग करना चाहता है। पारखी स्वय हरिप्रसन्न है जिसे कि आत्मा उद्बोधन के द्वारा पहले सप्रश्न किया गया है और बाद म उसी प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप म दिया गया है। इस प्रकार उपयुक्त अनुच्छेद म भूखे हरि की निम्न कामनाओं को रंग विरंगे पत्र-पुष्पों म लसित करके दिखाया गया है।

७ प्रतीक

तभी हठात् दीखा कि तस्वीर अभी बोर्ड पर ही चढ़ी एक अलमारी के सहारे टिकी है। इस तस्वीर म अधियारे स्तूप के आगे दोनों बाहें फैलाकर

चिरंतन रूप में कुछ पुकारता हुआ जो निरीह, नग्न पुरुष खड़ा है जिसके पट्ठे उभरे हैं और देह बलिष्ठ है किन्तु जो अतिशय कातर होकर प्रार्थी बना है—काम कीलित वह पुरुष मानो सुनीता की दृष्टि को बाँध लेता है। सुनीता जब उसे देखती है देखती रह जाती है। कुछ उसमें स्पष्ट नहीं है। फिर भी एक प्रकार की भयंकर प्रतीक्षा उस चित्र में से फूट फूट कर सुनीता के कलेजे में लगती है। उस स्तूप के अँधेरे में क्या है? क्या है? वहाँ क्या कोई आकृति भी है? शायद है तो पर ठीक तरह से कुछ समझ में नहीं आता। पर जिस अनय अतक्र्य अयाह के सम्मुख होकर यह चिरप्रश्न जड़ित प्राणी एक ही मुद्रा में इस भाव में खड़ा है कि अनन्त काल तक भी उसका प्रश्न और उसकी प्रतीक्षा टूटने वाली नहीं है—वह रहस्यशील दुरधिगम्य सुनीता को मानो एक ही साथ ग्रस लेता है। उसे देखते-देखते सुनीता मानो बेबस हो पड़ी और उसने एक साथ उस चित्र को घुमाकर रख दिया कि वह दीखे नहीं। तब जोर से झपटती हुई गई और जीने का दरवाजा बन्द कर दिया। उसके बाद सीधी कमरे में आ गई और बिना देर लगाए पलंग पर लेट गई।

प्रतीकार्थ

बलिष्ठ देह का यह कातर प्रार्थी पुरुष और कोई नहीं स्वयं हरिप्रसन्न है जैसे युग-युग से यह व्यक्ति सुनीता के लिए प्रतीक्षारत है। यह चिरप्रश्न जड़ित प्राणी एक ही मुद्रा में खड़ा हुआ अपनी साधना और व्यथा को एक साथ ही प्रकट करता है। सुनीता का उसके द्वारा आक्रान्त होना जहाँ हरिप्रसन्न की प्रतीक्षा की सफलता है वहाँ इसमें स्वयं सुनीता के मन की दुर्बलता भी है जो कि इस पुरुष के प्रति समर्पित होने के लिए विवश है जैसे यही उसकी नियति हो। चित्र को घुमाकर रख देना वास्तविकता को न सह पाने का एक प्रयत्न है किन्तु इस प्रकार घुमाकर रख देने से तो वह चित्र अपनी अनेक सतरंगी आभाओं में सुनीता के मन के आकाश में कौंधने लग गया। झपट कर जीने का दरवाजा बन्द करना और फिर पलंग पर लेट जाना एक ओर सुनीता के आवेग को प्रकट करता है और दूसरी ओर इसमें उसके मन की पराजय भी निहित है। इस प्रकार कुल मिलाकर यह चित्र हरि के अवचेतन मानस को अभिव्यक्ति प्रदान करता है और सुनीता को प्राप्त करने की उसमें जो कामना जगी है उसी को प्राप्त करने की एक परिवर्तित परिष्कृत प्रक्रिया मात्र है। कला में नैतिकता के बन्धन वास्तविकता पर आवरण डाल देते हैं और तब अवचेतन मानस की भाषा प्रतीक रूप में ही अपने आपको व्यंजित करती है।

८ प्रतीक

हरिण के पेट मे जो गाठ होती है उसे कस्तूरी कहते हैं। उसको लिये लिये वह भ्रमता रहता है, बचन रहता है उसके लिए वह शाप है। कस्तूरी हमारे लिए है उसके लिए वह गाठ है। वह गाठ उसे तो मौत लाती है किन्तु उस हरिण के पास वह ही एक ईश्वर की देन है। उस ही वह दुनिया को द सकता है। दुनिया उसी का कस्तूरी कह सकती है उसी पर रीझती है उसी के लिए उसे मारती है। यह चित्र सुनीता हरिप्रसन्न के चित्त की गाठ है। यह वह है जिसे हम प्राट कहने और बहुमूल्य बनाएगे इसीलिए तो कि इसमे बधा है प्रतिक्षण उसके प्रत्येक क्षण मे स्पदित होता रहनेवाला वह प्रश्न, वह जिज्ञासा, वह आकाक्षा जो हरिप्रसन्न के जीवन का जीवन थी जिसने उसे सदा या भटकाए रखा। आज क्या मै नही जानता कि यह गाठ उसके भीतर स खीच निकालने म उपलक्ष्य तुम बनी ? हा, तुम ! मैं इसके लिए तुम्हारा चिर-कृतज्ञ हू, सुनीता। दुनिया जब यह जानेगी वह भी तुम्हारी कृतज्ञ बनेगी। मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे सबध मे मेरा पतित्व इस कलाकृति म भरी व्यथा के समक्ष मात्र थोथा ही तो कही नही है। (पृ० १८६ १८७)

प्रतीकार्थ

हिरन के पट की गाठ उसके जीवन तत्व की प्रतीक है वही उसके जीवन का सार है किन्तु यह सार उसे तो भटकाता है, और दुनिया उसी गाठ स कस्तूरी के रूप मे फायदा उठाती है। यही कस्तूरी उस हरिण के लिए मृत्यु का कारण भी बनती है। श्रीकान्त की दृष्टि म यह चित्र हरिप्रसन्न के चित्त की गाठ को प्रकट करता है। इस चित्र का मम उसकी जीवन पहेली पर प्रकाश डालता है कि कौन सी थी वह ग्रथि जो उसके जीवन को परिचालित किए थी ? इस गाठ को निकालने और उसे कला रूप देने म सौन्दर्यमयी सुनीता का बहुत बडा हाथ रहा है। उसी के उपलक्ष्य स यह कलाकृति विश्व को प्राप्त हुई है। ससार जब इस रहस्य से अवगत होगा तो वह सुनीता और श्रीकान्त क लिए न जाने कितना आभार जतलाएगा—श्रीकान्त इसी कल्पना म खोया हुआ है। एक प्रकार के अतीन्द्रिय जीवन की अनुभूति उसे घेरे हुए है यही कारण है कि वह अपने पतित्व को भी निरथक समझने लगता है और सोचता है कि यदि सुनीता-हरिप्रसन्न क बीच म उसका पतित्व बाधा रूप न बनता तो ससार को यह कलाकृति कभी न मिल पाती। इस चित्र म हरि ने अपना सब-कुछ खोल कर रख दिया है। एक प्रकार से यह चित्र उसके जीवन की कुजी है इसके माध्यम म हम उसके जीवन रहस्य को, अन्तद्वन्द्व का भलीभाति समझ सकते हैं।

उपन्यास त्यागपत्र

१ प्रतीक

मैंने उस समय यह भी अनुभव किया कि उन्हें अब एकान्त उतना बुरा नहीं लगता। वह शाम के वक्त छत पर खटोला डाले ऊपर उड़ती हुई चीलों को ही चुपचाप देख रही है। तभी पतंग के पेच दिखती है और कटी हुई पतंग पर जब तक आँख न हट जाए आँख गाड़े रहती है। और नहीं तो खटोल पर पट के बल लम्बकर कायल से धरती पर कीरम-काटे ही खींचती है। (पृ० १०)

प्रतीकार्थ

यह किशोरिका के मनपरिवर्तन का अच्छा चित्र है। वय सन्धि-काल में युवक एवं युवतियों की कुछ ऐसी ही मनःस्थिति हो जाती है। इसे हम दिवा स्वप्न देखना भी कह सकते हैं। ऊपर उड़ती हुई चीलें मन की भावनाओं एवं कल्पनाओं की प्रतीक हैं जो कि निस्सीम आकाश में पर्गे मारती रहती हैं। कटी हुई पतंग मृणाल के अपने जीवन की प्रतीक है जो कि निस्सहाय निरुद्देश्य उन्मुक्त गगन में विचरण करती है। कटी हुई पतंग की नियति ही मृणाल की नियति है। वय सन्धि-काल में एक किशोरिका अपने आपको कटी हुई पतंग के समान ही समझती है जिसका न कहीं ओर है न कहीं छोर। आँखें गाड़े रहना इस क्रिया के प्रति उसकी दिलचस्पी जाहिर करता है जैसे इस पतंग से ही उसने तादात्म्य कर लिया हो। धरती पर कीरम-काटे खींचना मन की उधेड़ बुन, कल्पनाशीलता एवं विभ्रम का परिचायक है। कीरम-काटों में मृणाल के अवचेतन मन की अभिव्यक्ति है। इन कीरम-काटों में भविष्यत् जीवन की झलक भी देखी जा सकती है।

२ प्रतीक

मैं नहीं बुआ होना चाहती बुआ ! छि ! देख चिड़िया कितनी ऊँची उड़ जाती है मैं चिड़िया होना चाहती हूँ।

मैंने कहा चिड़िया ?

बोली हाँ, चिड़िया। उसके छोटे छोटे पंख होते हैं। पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड़ जाती है। क्या रे कैसी मौज है। नन्हा-सी चिड़िया नन्ही सी पूछ—मैं चिड़िया बनना चाहती हूँ।

उस रोज रात को वे मुझे देर तक चिपटाए रहीं। पूछने लगीं, प्रमोद तू मुझे प्यार करता है ? सुनकर बिना कुछ बोले मैंने अपना मुँह उनकी छाती के घोंसले में और दुबका लिया। इस पर वे बोलीं, प्रमोद, मैं तुझे बहुत प्यार करती हूँ। (पृ० १२)

प्रतीकार्थ

मृणाल के बुआ न होने की कामना से यही प्रतीत होता है कि वह बुजुर्गियत से नफरत करती है। इसकी तुलना में चिड़िया के प्रति उसके मन में जो ललक है उससे यही प्रकट होता है कि उसे चिड़िया का स्वच्छन्द जीवन बेहद प्रिय है। उसके जीवन की उन्मुक्तता कल्पना के गगन में उसका ऊंचा उड़ना सब मृणाल को बेहद भाते है। नन्ही सी चिड़िया के समान ही वह भी अपने जीवन को नन्हेपन तक परिसीमित रखना चाहती है क्योंकि उसे बुजुर्गियत से नफरत है। आसमान उन्मुक्त स्वच्छन्द एवं वृहद् जीवन का प्रतीक है जिसकी परिधि में चिड़िया चक्कर काटती है। ऐसा ही जीवन मृणाल को भी चाहिए। वह अपने कठोर नियन्त्रण के जीवन से संतप्त है इसीलिए वह चिड़िया हुआ चाहती है। यह चिड़ियापन का भाव इतना प्रबल हुआ कि प्रमोद भी अपने आपको चिड़िया समझने लगा और अपने को उनकी छाती के घोंसले में दुबकाए रहा। प्रमोद के प्रति यह अतिशय अनुरक्ति मृणाल की भावना का प्रक्षेपण मात्र है। यहा शीला के भाई के प्रति जो उनकी अनुरक्ति थी वही प्रमोद में स्थानान्तरित हो गई है। प्रमोद को प्यार करने के मिस ही वह शीला के भाई के प्रति अपनी भावना जतलाती है।

१ प्रतीक

एक अहेतुक त्रास मुझे दाब हुए था। वह न रोने देता था न कुछ करने देता था। नतीजा यह हुआ कि मैं बुआ का विदा के समय एकाएक इतना भल्ला गया कि भागकर बुआ वाली कोठरी में अपने को बन्द करके खड़ा हो गया। किवाड़ बन्द कर लेने से अंधेरा हो गया था तिस पर भी दोनों हाथों से आंखें ढाप ली थी, और गुमसुम कोठरी के बीचों-बीच आकर खड़ा रह गया था। मानो आशा थी कि कोई करिश्मा होगा भूचाल आएगा, कुछ-न कुछ होगा और आखिर में सब ठीक हो जाएगा। यहां खड़े खड़े चाहता था कि सास रोक लू, बेजान हो जाऊ एकदम रहूँ ही नही (पृ० ४३)

प्रतीकार्थ

अहेतुक त्रास बुआ के संभावित विछोह से उत्पन्न हुआ है अत इसे विछोह का प्रतीक कहा जा सकता है। बुआ की कोठरी में प्रमोद का खड़ा होना एक प्रकार का पलायन है इसके पीछे शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति लक्षित होती है। आखो को ढाँप लेना इस प्रवृत्ति को पुष्ट करता है जैसे आखें ढाँप लेने से वह इस विछोह के दृश्य से अपने आपको बचा सकेगा। करिश्मा और भूचाल कामना-पूर्ति (विशफुल थिंकिंग)

के प्रतीक है। सांस रोक लेना और बेजान होने की कल्पना करना शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति की चरम सीमा है। छायावादी युग में इस प्रकार के पलायन प्रतीक सर्वमान्य था।

४ प्रतीक

समन्दर है। अपनी नन्ही कागज की डोंगी लिए हम भी उसके किनारे किनारे मन के लिए आ उतरे हैं। पर किनारे ही कुशल है आगे थाह नहीं है। हिम्मत वाले आगे भी बढ़ते हैं। बहुत डूबते हैं कुछ तरते भी दीखते हैं पर अधिकतर तो किनारे पर सांस लेने भर जगह के लिए छीन झपट और हाय हाय मचाने में लगे हैं। नहीं तो वे और करें भी क्या! लड़ते झगड़ते अपने छोटे-से वृत्त की परिधि में घूम लेते हैं और इस भांति जी लेते हैं। सागर तानों और कम उल्लास से लहरा रहा है। पर वह लहराता रहे—हम अपने घर्चे हैं उधर करने को हमारी आंख खाली नहीं है।

और क्या करें उधर आंख? उस सागर की लहरों का अंत कहां है? कूल कहां है? पार कहां है? कहीं पार नहीं है कहीं किनारा नहीं है। आंखों का ठहरने को कोई सहारा नहीं है। क्षितिज का छोर है यहां आसमान समन्दर में आ मिला है। वहां नीला अंधियारा दीखता है पर छोर वहां भी नहीं है। वहां छोर तो हमारी अपनी ही दृष्टि का है अन्यथा वहां भी वैसी ही अकूल विस्तीर्णता है। (पृ० ९२ ९३)

प्रतीकार्थ

त्यागपत्र के अंतिम अध्याय में मृणाल के जीवन को लेकर जिस विराट रूपक की सृष्टि की है उसमें अनेक प्रतीक भी हैं। यहां उस रूपक का एक ही अंग उद्धृत किया गया है। समन्दर जीवन की विराटता का प्रतीक है। नन्ही कागज की डोंगी मानव-जीवन की प्रतीक है। अधिकतर व्यक्ति जीवन-सागर के किनारे ही रह जाते हैं क्योंकि आगे अथाह जल है। कुछ साहसिक व्यक्ति ही आगे बढ़ पाते हैं। इनमें से अधिकांश डूब जाते हैं कुछ ही जल की सतह पर तरते दिखाई देते हैं। उन व्यक्तियों की संख्या बहुत है जो कि किनारे पर खड़े हुए हैं किन्तु क्या किनारे पर खड़ा रहना भी आसान है? उसके लिए भी छीना झपटी और हाय तोबा मची हुई है। छोटे-से वृत्त से सीमित जीवन की ओर संकेत किया गया है। उल्लास से लहराते हुए समुद्र को देखने और उसकी विराटता को आत्मसात् करने के लिए न हमारे पास समय है और न वैसी

जिधर भी हमारी दृष्टि जाती है जल ही जल दिखाई देता है। यहा तक कि दृष्टि के विराम के लिए भी वहा कोई स्थान नही है। जिस स्थान पर आकाश समुद्र मे मिलता है, वहा नील वर्ण अधकार छाया हुआ है। उसका भी कोई ओर छोर नही। तत्व की बात तो यह है कि हमारी अपनी दृष्टि की भी एक सीमा है इसी कारण हम उस अकूल विस्तीर्णता के रहस्य को समझ नही पाते। यह अनन्तता जीवन के विराट् प्रसार की ही द्योतक है और आदमी इस विराटता के सम्मुख केवल एक नन्ही-सी बूद है। इसी विराटता म मणाल परती हुई प्रमाद को दिखाई देती है।

५ प्रतीक

भीतर पशु हो, इस जलवायु म आकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नही ठहरेगी। मनुष्य हो तो भीतर तक मनुष्य होना होगा। कलई वाला सदाचार यहा खुलकर उघडा रहता है। यहा खरा कचन ही टिक सकता है क्योकि उसे जरूरत ही नही कि वह कहे कि मैं पीतल नही हू। यहा कचन की माग नही है पीतल से परहेज नही है। इसस भीतर पीतल रखकर ऊपर कचन दीखने वाला लोभ यहा छन भर नही टिकता है बल्कि यहा पीतल का मूल्य है। इससे साने के धय की यहा परीक्षा है। सच्चे कचन की पक्की परख यही हागी। यह यहा की कसौटी है। मैं मानती हूँ कि जा इस कसौटी पर खरा हो सकता है वह खरा है। और वही प्रभु का प्यारा हो सकता है। (पृ० ६७ ६८)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत उद्धरण म वास्तविक सदाचार और मुलम्मे वाले सदाचार की तुलना की गई है। जिस परिवेश म मणाल रह रही है वहा बीच की स्थिति नही हा सकती या तो सच्चा इन्सान ही वहा टिक सकता है या फिर हैवानियत को खुलकर खेलन की वहा पूरी आजादी है। खरा कचन सच्चरित्र का प्रतीक है, पीतल दुश्चरित्र का प्रतीक है। इस परिवेश मे सच्चरित्रता की अपेक्षा नही की जाती और दुश्चरित्रता को बुरा नही समझा जाता। समाज मे सफेद-पोशी की तरह ही तथाकथित सज्जनता का प्रचलन है पर इस परिवेश म दुश्चरित्रता ही महत्वपूर्ण बन गई है। ऐसे ही वातावरण मे सज्जनता की वास्तविकता जानी परखी जा सकती है। एक वाक्य म कहें तो कह सकते हैं कि इस परिवेश म दिखावे के लिए कोई गुजाइश नही है। जो जसा है, उसे उसी रूप म प्रकट हाना होगा। ऐसा ही व्यक्ति ईश्वर के प्यार को पा सकता है।

६ प्रतीक

कल्मष ही तब सब ओर से घरकर मुझे छा लगा। तब इस जिन्दगी के बीच किस एक अवलम्ब के सहारे मैं टिकूंगा? अब तो मन को ऊंचा उठाकर साफ हवा फेफड़ों में भर लेती हूं और इस विषाक्त वातावरण में सहज भाव से जिए चलना है। वह न रहा तब मैं कब टिकूंगी? मर जाऊंगी दूसरा सोच नहीं है। पर जीवन की टेक हाथ से छूट जाएगी यह तो बहुत बड़ा भय है। श्रद्धा के साथ मरना भी सार्थक है। पर श्रद्धा गई तो पास क्या रह गया। (पृ० ६८ ६६)

प्रतीकार्थ

एक पापी व्यक्ति जीवन में गहन अंधकार से घिरा रहता है। प्रकाश की एक किरण ही उसके जीवन का अवलम्ब होता है। इसी प्रकार मृणाल का जीवन कल्मष में डूबा हुआ है प्रमोद का प्यार ही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब है। उसी के सहारे वह घनघोर अंधकार में भी जी पा रही है। प्रमोद के प्रति उसका स्नेह भाव ही उसके जीवन की टेक है। यह टेक यदि उसके हाथ से किसी प्रकार छूट गई तो वह कहीं की न रहेगी। अपनी आस्था को लेकर यदि किसी को जीवन का बलिदान भी करना पड़े तो कोई चिन्ता की बात नहीं। अनास्था की स्थिति में जीवन निरवलंब हो जाता है।

७ प्रतीक

इस क्या का उत्तर अब मैं देता हूं। उत्तर है कि—मैं क्षुद्र हूं। क्या वकालत में आँख गाड़कर मुझे पूजन में लगा रहा? क्या मन में मानता रहा कि मैं ठीक हूं? क्या कर्तव्य को दबाता रहा और क्या अकर्तव्य करता रहा? उत्तर है—कि मैं बुद्धिमान् था मूर्ख नहीं था। तौल तौलकर चला और तराजू अपने हाथ रखी।

इसीलिए आज जो असली तराजू है उसमें हल्का तुल रहा हूं। आज इस सारी वकालत के पद और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठकर सोचता हूं कि क्या मुझसे तनिक मूर्ख नहीं बना गया? इस भवका में क्या कहूं जबकि समय रहते प्रेम के प्रतिदान से मैं चूक गया। यह सब मल है जो मैंने बटोरा है। मल है कि मेरी आत्मा की ज्योति को ढक रहा है। मैं सच यह नहीं चाहता हूं। (पृ० १०३)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्तियों में प्रमोद की स्वीकारोक्ति है। खुद पूजन में लगा रहना

स्वाथ का प्रतीक है। तोल-मोलकर चलना और तराजू अपने हाथ म रखना वणिकता का प्रतीक है। बुद्धिमान् होना और मूख न होना सासारिकता का प्रतीक है। इसे मुहावरे म कहे तो कह सकते हैं— पाई का लेखा और रुपए की भूल (पैनी वाईज पौण्ड फुलिश)।

असली तराजू मानवता की प्रतीक है जिसमे कि प्रमोद हल्का साबित हुआ है। प्रेम के प्रतिदान से चूकना सासारिकता के हावी होने का परिचायक है। मल सासारिक सम्पत्ति और प्रतिष्ठा का प्रतीक है। आत्मा की ज्योति विशुद्ध मानवता की प्रतीक है जिसे प्रमोद बुआ के जीवन सदभ मे गवा चुका है।

८ प्रतीक

वे बुआ जिन्होने बिना लिये दिया। जिन्होने कुछ किया मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद अब मेरे भीतर अगार सी जलती है। जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाति जलता रहा। धुआ उठा तो उठा पर लौ प्रकाशित रही। उन्ही बुआ को एक तरफ डालकर मैं किस भाति अपनी प्रतारणा करता रह गया। (प० १०४)

प्रतीकाथ

बिना लिये देना आत्म बलिदान का प्रतीक है। अगार-सी जलने म दहकन का भाव निहित है इससे याद की प्रखरता और दाहकता—दोनो ही सिद्ध होती हैं। ऊपर उठती लौ म ज्योति की विमलता और उत्कष व्यजित होता है। धुआ कालुष्य या बुराई का प्रतीक है। लौ के साथ धुए की अनिवायता जुडी हुई है इसस यही ध्वनित होता है कि इन दोनो मे अर्तविरोध नही बल्कि सह अस्तित्व है। लौ के प्रकाशित रहने मे यही भाव प्रकट होता है कि कीचड म स ही कमल की उत्पत्ति होती है। ऊपर उठती लौ मे बलिदान की भी व्यजना है जिसम स शहादत भी झाकती है। इसकी अपनी गरिमा है।

उपन्यास कल्याणी

१ प्रतीक

बटोही वह जाने कब से चला आ रहा है। राह उसकी दीघ है सकेत कोई उसे प्राप्त नही है। बस, एक पुकार अपने भीतर सुनी है। उसकी टोह म वह चलता चला आ रहा है चलता चला आ रहा है और चलता चला जाएगा। क्या चिह्न पीछे छोडता आ रहा है, पता नही। उसका गतव्य पथ

भी है या नही है पता नही। क्या अर्थ है या परमार्थ है या सब व्यर्थ है कुछ उसको पता नही है। बटोही ज्ञानी नहीं है ध्यानी नहीं है। वह किसी माग को नहीं जानता। बाहर उसे कोई संकेत प्राप्त नहीं है। एक पुकार उसने भीतर सुनी है। वही है वही है अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता है, उसी में बधा वह बटोही अकिंचन चलाचल रहा है, चलता चला आ रहा है चलता चला जाएगा। कहा से आई है वह टेर ? कौन देता है उसे गुहार ? कहा है उसके प्राणो का सूत्रधार ? कहा, रे कहा ? बटोही यहा किधर बिछुड आया है ? क्या यह बिछोह अनंत है ? क्या उसका कही अन्त है ? आह बिछुन्न बटोही नही जानता। वह चल रहा है चल रहा है। आस नही निराश नही। बिछोह की बिथा बस भीतर है। वही धुन और वही टेक। वही उसकी सास। बटोही उसके सहारे चलता चला आ रहा है और चलता चला जा रहा है। संकेत कोई उसे प्राप्त नही है पर टेर उसे बुला रही है और बिछोह उसे खीच रहा है। बटोही राह बेराह चल रहा है क्योकि वियोग में कहा चैन है ? यहा सराय में कुछ उसका नही है। वह बटोही है राह चलते की उसकी सबको राम राम है चलना उसका काम है। रह-जाएगा सब रह जाएगा। वह तो चलता ही आ रहा है चलता ही चला जाएगा। वह बटोही। (पृ० १४ १५)

प्रतीकार्थ

यह एक रहस्यवादी कविता है जिसे कल्याणी ने रचा है। बटोही यहा प्राण पथिक का प्रतीक है। प्राण अनन्त पथ पर अग्रसर हैं एक अज्ञात प्रेरणा से स्वत स्फूर्त होकर। प्राणो का यह पथिक अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य से अपरिचित है। वह स्वार्थ परमार्थ में भी भेद नही कर पाता। पथिक को मान माग से भी परिचय नहीं है प्राणो में उसने एक टेर सुनी है उसी से बधा वह चला जा रहा है। वह नही जानता कि उसे आवाहन करने वाला कौन है। ऐसा लगता है कि प्राण-पथिक अपने सूत्रधार से बिछुड गया है। इस बिछोह का कब अंत होगा यह भी वह नही जानता। वह आशा निराशा से तटस्थ हो केवल विरह व्यथा से ही परिचलित है। जिधर से उसके लिए आवाज आई है उसी पथ पर वह बढ़ा चला जा रहा है। प्राण पथिक को अपने माग की भी सुध नहीं है। उसे एक पल को भी शान्ति नहीं मिलती। इस जीवन रूपी सराय में वह किसी से आत्मीयता का संबध भी स्थापित नहीं कर पाता किन्तु प्राणि मात्र के प्रति उसके मन में कोई अवज्ञा नही है। वह सबका नतमस्तक हो अभिवादन करता है। उसकी यात्रा अनन्त है गति ही उसका जीवन सम्बल है। इस प्रकार आत्मा की अनन्त यात्रा उसकी अविराम गति और उसके

क्षणिक पडाव को सूचित कर कविता समाप्त हो जाती है। इस कविता मे कल्याणी के प्राणो की पीर ही निहित है।

२ प्रतीक

वाली—सुनिए मैं कहती हूँ कि मैं अपना अविश्वास कब तक कर सकती हू ? किताब की बात नही है पढी सुनी बात नही है देखी भाली कहती हूँ। चार राज स बराबर नही देख रही हू ठहरिए हुलिया बताती हू।

*　　*　　*

सुनिए रग गेहुआ चश्मा लगाते हैं, कद बडा सुन्दर दीखते है।

*　　*　　*

क्या आप मानते हैं कि मैं अपने होश हवास मे नही हू ? मैं उस आदमी को हजारो म पहचान सकती हू। मूछें छोटी बालो म लहर, विलायती लिबास म रहते हैं उम्र कोई चालीस।

मैं सच कहती हू सुनिए लेकिन आप कहिएगा नही किसी से न कहिएगा। मैं किसी का अनिष्ट नही चाहती हमारे घर के गुसलखाने म एक युवती की हत्या की गई है।

*　　*　　*

ना दिन ठीक नही बता सकती। नही दीवानी अभी नही हू। वह युवती घर म मुझे कई बार मिल चुकी है क्या वह जीती है या मर गई है ? उसकी हत्या हुई थी। वह मुझे कुछ बताती नही है। उसके ओठो से आवाज नही निकलती। लेकिन मैंने खुद दखा कि उसे गला घोट कर मारा गया था। गला घोटे जाते हुए तो खुद नही देखा लेकिन मैं कह कहती हूँ कि उसकी हत्या हुई है।

*　　*　　*

देखिए इस बारे म आप मुह न खोलिएगा। जो अभी मालूम नही है वह आग भी मालूम न हो लेकिन अगर मन की बात निकल सके तो पता भी हो सकता है कि मैं सच कहती हू या क्या ? इधर रोज जा आखो स दखती हूँ वह झूठ है तो फिर सच नाम का पदाथ इस दुनिया म कहा मिलेगा ? ओह मुझे उस आदमी पर बडी दया आती है। और वह नई उम्र की युवती—वह तो मेरी हर घडी की साथिन हो गई। मैंने सुना और सुनकर उस विशृ खल उद्गार का जो भाव मैं बना सका वह यह है—

कोई एक महीने स गुसलखाने से सिसकी की आवाज उन्हें सुन पडती थी, जस कोई मुह दबाकर रोता हो। साझ का अधेरा गाढा होता कि आवाज शुरु हो जाती। पहले तो वह सुनती रही और टोह टालती गई, सोचा कि होगा कुछ,

कहीं मन का भ्रम ही न हो पर चीज वह टाल टर न सकी जैसे वह आवाज उठती हो तो अन्दर कलेजे को पकड़ लेती हो। कई बार भपटकर वह वहा गई पर देखें तो कहीं कुछ नहीं पहुचने पर सब सुनसान दीखता था। वह लौट आती और अपनी घबराहट पर हँसना चाहती। ऐसे कई दिन निकल गए। हठात् उधर से ध्यान मोड़ना चाहा पर रह रहकर सिसकी भरती किसी स्त्री की वह आवाज कानों पर आती ही थी। सुनकर जी में हौल चढ़ती थी। कुछ सूझता नहीं था। एक रोज आधी रात बीते वह सपने से चौंककर जागा सन्नाटा था। बत्ती मद्धम जल रही थी। सपने सिर में घूम रहे थे। तभी सुनती क्या है कि गुसलखाने में कुछ फुस फुस आवाजें हो रही हैं। कमरे में वह अकेली थी मारे डर के वहीं की वहा वह गड-सी रही। पर कान चौकन्ने थे और चेतना उद्दीप्त थी। कुछ देर में आवाजें जरा प्रबल हुई जैसे किसी स्त्री और पुरुष में बहस छिड़ी हो। वहम जरा में बखेड़ा बन आई अब कुछ साफ सुनाई देने लगा।

एक पुरुष कंठ ने कहा—चुप नहीं रहेगी क्या ? स्त्री कंठ ने उत्तर दिया—मैं नहीं रहूँगी चुप। कभी नहीं रहूँगी मुझे मार क्यों नहीं डालते ? लेकिन चुप मैं नहीं रहूँगी। मैं

नहीं रहेगी ? मुझे गुस्सा मत दिला।

जो मन में है पूरा क्यों नहीं कर डालते हो ?

लो मुझको मार डालो। पर समझ रखना चुप मैं मरने के बाद भी नहीं रहूँगी।

नहीं रहेगी ?

नहीं नहीं नहीं रहूँगी !

देख मैं फिर कहता हूँ—

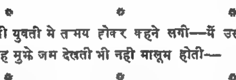
नहीं नहीं, नहीं हो घोटा गला ।

नहीं ? तो ले मत रह चुप—

उसमें बाद आवाज कुछ भर्राई-सी निकली छटपटापट सुनाई दी और धीमे धीमे सब शान्त।

कल्याणी तो जैसे इस पर पत्थर बन आई थी। मति-गति उसकी खो गई थी। इतने में पथराई आँखों से देखती है कि एक आदमी उसी तरफ से आकर उसके कमरे में आर-पार चला जा रहा है। उसकी घिग्घी बंध गई। डर के मारे चीख भी न सकी। क्षण में वह आदमी जाने कहा बिला गया। उसे पसीना छूट चला था। कुछ देर बाद होश हुआ तब जोर से वह चीखी लोग जग आए पर तब तक सब लुप्त हो चुका था। कल्याणी आँखें फाड़े जमा हुए उन सब नौकर चाकरों को देखती रह गई। कुछ भी मन में न बनता सकी।

उसके बाद उनका कहना था कि कई बार वह स्त्री उसे दीखी है। इधर तीन रोज से वह पीछा ही नहीं छोडती। जब उसका गला घोटा जा रहा था और आखें निकली पड रही थीं वह उसकी मूर्ति बार-बार सामने आ खडी होती है। मन से वह दूर नहीं होती। छरहरे बदन की अतिशय सुन्दरी अभी जैसे सयानी उमर भी नहीं है गर्भवती है। अब भी वह इस घर में रहती है और रोज मिलती है। कल्याणी बचती है पर कहा बचें ? उसकी फटी आखें, कातर मुद्रा—



*   *   *

वह उसी युवती में तन्मय होकर कहने लगी—मैं उससे बात करना चाहती हूँ पर वह मुझे जब देखती भी नहीं मालूम होती—



*   *   *

बता सकेंगे क्या कुछ वर्ष पहले यहां कोई महाराष्ट्र परिवार रहता था ? वह स्त्री महाराष्ट्रीय थी। पर वह कौन थी ? क्या पुरुष की पत्नी थी ? नहीं तो फिर कौन थी ? देखती हूं आप इसे सच नहीं मानते। (पृ० ६२ से ६५)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत प्रकरण में कल्याणी के असामान्य मानस की स्पष्ट प्रतिच्छाया है। उसने एक ऐसी युवती की परिकल्पना की है जो कि मृग नयनी है और अत्यन्त ही सुन्दर है। इस सुन्दरी युवती को उसका पति गुसलखाने में मार देता है।

वस्तुतः वह युवती और कोई नहीं कल्याणी है। उसी का आत्म प्रक्षेपण इस युवती के रूप में हुआ है। हत्यारा और कोई नहीं स्वयं डा० असरानी है जो कि कल्याणी के सौन्दर्य कौशल एवं सामर्थ्य का शोषण करना चाहता है। ऐसी स्थिति में आत्म प्रक्षेपण की मनोवृत्ति किसी वास्तविक व्यक्ति में, अपने कल्पित व्यक्ति को आरोपित करती है। यों देवलालीकर पाठक के सामने आते हैं। प्रकट में तो कल्याणी देवलालीकर के प्रति आकृष्ट है और उन्हें उनके विधुर जीवन की यातना से मुक्त किया चाहती है किन्तु प्रच्छन्न रूप में वह पुरुष मात्र के प्रति प्रतिशोध की ज्वाला में धधक रही है और उसी से प्रेरित होकर वह उसे अपने सौन्दर्य की मरु मरीचिका में फसाना चाहती है।

देवलालीकर की सौम्यता और उनके नाक नक्श का जो वर्णन आया है उसमें स्वयं कल्याणी की भी दुर्बलता झांकती है। दर असल कल्याणी देवलालीकर को ही नहीं छल रही बल्कि अपने आपको भी छल रही है और प्रकारान्तर से देवलालीकर के प्रति आकृष्ट होकर वह डा० असरानी से भी बदला ले रही है। मन की इस द्वैत या मत स्थिति में कल्याणी के व्यक्तित्व का

सहसा भंग हो जाता है और उसके आकस्मिक व्यक्त उद्गार एक उन्मादग्रस्ता नारी के समान प्रतीत होने लगते हैं। इन पंक्तियों में इसी तथ्य की प्रतीकपूर्ण व्यंजना है।

आधी रात को जो घटना घटी है वह कल्याणी के मन का भ्रम ही था दृष्टि विभ्रम है। पुरुष कंठ और स्त्री-कंठ के बीच जिस संवाद की परिकल्पना की गई है, उसमें असरानी दम्पती का ही जीवन ध्वनित होता है। इस आत्म प्रक्षेपण की छाया में जो भी मति-गति किसी नारी की हो सकती है वही कल्याणी की हुई। उसकी आँखें पथरा गईं उसका शरीर जड़ हो गया और कुछ मिलाकर सिरपी-सी बंध गई।

जो नारी-छाया कल्याणी का पीछा करती है वह उसी के व्यक्तित्व की परछाईं है। उसका गला घोटा जाना और आँखें निकलना स्वयं कल्याणी की आत्म-यातना का प्रतीक है। सौन्दर्य का एक आधार इस सूत्र में भी निहित है कि कल्याणी समझती है और वह सुन्दरी युवती भी समझती है।

कल्याणी उस युवती में तन्मय हुआ चाहती है पर वह युवती है कि उसे निरन्तर उपेक्षा ही देती है। उसका इस प्रकार का आत्मस्थापन और उपेक्षा कल्याणी के ही बाह्य और अन्तर्मानस की प्रतिच्छाया है।

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में एक निष्कर्ष यह भी निकल सकता है कि विवाह जाति और प्रांत की संकुचित सीमा में सफल नहीं हो सकते। स्वयं कल्याणी का जीवन इसका प्रमाण है। इसी आत्म जीवन का प्रक्षेपण हम देवलालीकर दम्पती में भी पाते हैं। इस समस्याग्रस्त नियति का समाधान-संकेत इस रूप में मिलता है कि यदि भिन्न प्रान्तों और संस्कृतियों के बीच आवागमन की सुविधा मिले तभी इस संकीर्णता से पार पाया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने तो यह सिद्ध कर ही दिया है कि जितना संबंध दूर का होगा उतना ही फलप्रद होगा। कल्याणी के जीवन की यही विडम्बना थी कि वह सिन्धी समुदाय में ब्याही गई और यही उसकी घुटन का कारण बना। कल्याणी जब बहकी-बहकी बातें करती है तो वकील उसकी पूरी बातों को न समझ ही पाते हैं और न तदनुकूल आचरण ही कर पाते हैं। इन सारी बातों का पति की अनुपस्थिति में विस्फोट होना भी एक गहरा अर्थ रखता है। पति इसलिए बाहर हैं कि वे प्रमाणित कर सकें कि वे भी पृथक् व्यक्तित्व के अधिकारी हैं और स्वतंत्र रूप से कमा-खा सकते हैं यद्यपि यह चिंतना डाक्टर के ही अपराधी मानस का प्रतिबिंब है।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण मृग मरीचिका दिवा स्वप्न पर आधारित है और इसमें हम कल्याणी के रोगी मानस का सही-सही रूप में रोग-वृत्त प्रस्तुत कर सकते हैं।

३ प्रतीक

वानी—पत्थर राजधानी है ! आज की राजधानी नई दिल्ली, क्या ऊपर और क्या भीतर पत्थर नही है ? खूबसूरती उसकी पत्थर की और दप की है पानी और घास की ठटक नही बिछी है तो भी उसके ऊपर तनकर मगरूर पत्थर गुर्राता है दीखता नही ?

* * *

बोली—जी नही आप भूल न कीजिएगा। हम रुपए क जीव हैं दिल्ली हम खान है। सब कही स रुपया यहा खिचकर आता है। चतुर के लिए कौन जगह यहा से अच्छी होगी ? पर आप कहिए कि आपको दिल्ली नरक नही मालूम होती है ?

* * *

पर तपोवन मेरा सपना है भारतीय तपोवन। सपना क्या मुझे सपना रहेगा ? पर आप हैं तब मैं निराश क्यो हो जाऊ ? क्या देखते हैं ? नही आज मैं पागल नही हू। ठीक है कि मुझे दिल्ली मे ही मरना और गढना है पर आप क्यो यहा जमकर नही बठ सकत ? भारतीय तपोवन आप हो सकते हैं कोई विधान नही कोई पद अधिकारी नही विभाजन नही। सब आप—सुनते हैं ? सब आप ! मैं दस हजार तो कर लूगी जेवर हैं बच दूगी। दो बीमे हैं भुना लूगी। दस पूरे करके चक आपको दे दूगी। सुनते हैं ? या आप सुनते भी नही हैं ? चर से आग सब आप जानें क्या है आपको ? क्या आप मेरी तरह हैं ? आप स्त्री हैं ? आप डाक्टर हैं ? आप पर किस्मत का शाप है ? क्या रोग है आपको ? मैं ता मशीन हूँ खट-खट-खट-खट रुपया बनाती हूँ हर काम रुपया मागता है है न ? यह दुनिया का सच है तब मैं रुपया बनाऊगी लाऊगी मागूगी बटोरूगी और लाकर आप पर पटक दूगी। आप होंगे तो भारतीय तपोवन हो जाएगा। मैं आपको पा गई और भारतीय तपोवन को जनमा गई तो मरकर भी न मरूगी ।

* * *

वाली—सच कहिए मैं भी सच कहती हूँ कि अगर मुझपर शाप न होता तो मैं धन छोडकर तन और मन स आपके तपोवन की हो हो जाती फिर भी जब होगा, दिल्ली से भागकर आपके इस वन म आ रहा करूगी यह मेरा वचन समझिए नही-नहीं डाक्टर नही आश्रमवासिनी बिल्कुल आश्रमवासिनी (पृ० १४१ से १४४)

प्रतीकार्थ

पत्थर के प्रतीक स राजधानी की जडता एव नीरसता को ही व्यक्त किया

गया है। पानी और घास की ठण्ड म भी राजधानी का यह पत्थर मगरूर सा गुर्राता है। महानगरों का जीवन कितना यान्त्रिक एव निष्प्राण होता है इसी का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत पंक्तियों म निहित है।

दिल्ली का आर्थिक जीवन चुम्बकीय आकर्षण रखता है कि सारा रुपया और सारे रुपए वाले उसी की ओर खिंचे चले आते हैं। इसमे दिल्ली की नारकीयता और बढ़ी ही है।

भारतीय तपोवन के रूप म कल्याणी के असन्तुष्ट एव अभिशप्त जीवन की एक आकांक्षा मात्र ही परिलक्षित होती है। यह तपोवन उसका स्वप्न भी है और महत्त्वाकांक्षा भी। भारतीय तपोवन की जो रूपरेखा यहा प्रस्तुत की गई है उसम तथाकथित संस्थाओं के नियम और उपनियमों का ही नकार गूज रहा है। इस स्वप्न को साकार करने के लिए ही कल्याणी उन्मादग्रस्ता सी नजर आती है। खट-खट-खट-खट रुपया बनानेवाली मशीन के रूप म दिल्ली के औद्योगिक जीवन का ही एक प्रतीक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कल्याणी का उन्माद और सनक इतनी बढ़ती है कि वह सन्निपात ग्रस्त व्यक्ति के समान एक ऐसा उद्गार प्रकट करती है जिसमे उसकी अन्तरात्मा की अनुगूज है मैं आपको पा गई और भारतीय तपोवन को जनमा गई तो मरकर भी न मरूगी। इस महत्त्वाकांक्षा म कल्याणी के अचेतन मन की ही अभिव्यक्ति है जैसे भारतीय तपोवन एक ऐसा मरहम हो, जो उसकी आत्मा के घावों को पलक मारते ही भर दे।

नाप के रूप म अपने ही अभिशप्त जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। उसके पति ने उसे धन कमाने की मशीन ही बना दिया और इस धन की माया म वह ऐसी गिरफ्त हुई है कि छोड़ना चाहने पर भी उसे छोड़ नही पाती। धन इतना प्रबल हो उठता है कि फिर तन और मन भी पराये हो जाते हैं। आश्रम वासिनी के प्रतीक म कल्याणी के पवित्र और निष्पाप जीवन की ही कामना निहित है। जब भी वह असंगतों के सत्रास से छूटेगी तो इसी तपोवन म आकर वह चैन की बांसुरी बजाएगी। यह तपोवन कल्याणी के प्यासे जीवन के लिए एक लहरें मारता हुआ शीतल जल का सरोवर है जिसम वह अपनी युग युग की प्यास बुझा सकेगी।

उपन्यास सुखदा

१ प्रतीक

बरामदे म खाट बिछ जाती है उस पर से देखती हू कि सामने सिर्फ फैलावट है, सिर्फ फैलावट न घर है न दुकान है न मनुष्य है न समाज है। बस केवल रिक्त सामने है जो दीखता है इससे दृश्य बन उठा है। वही चित्र बना

फला है। बीच में बाधा नहीं व्यवधान नहीं। कुछ ही दूर पर धरती ढल गई है और ढलती हुई जाने वहां प्रथाह में पहुंच गई। पार मदान बिछा है मानो प्रतीक्षा में हो, वहां कहीं भूरी-सी मकानों की बिंदियां भी दीखती हैं कहीं हरियाली इकट्ठी हुई है कहीं रंग मटमैला है दूर दो एक पतली सफेद लकीरें भी दीखती हैं जो नदियों के निशान हैं पर दूर होते होते यह सब मानो एक धुंधली रेखा में सिमिट कर समाप्त हो जाता है वही हमारा क्षितिज ! (पृ० ४)

प्रतीकार्थ

प्रतीत की ओर से सरकता हुआ जीवन जब वर्तमान पर टिक जाता है तो लगता है जैसे यही जीवन का क्षितिज है। और जब मनुष्य उस ओर दृष्टि उठाकर देखता है, तो सामने के अवस्थित वातावरण के विविध उपादान व्यक्ति के निजी जीवन की सफलताओं असफलताओं के प्रतीक बन जाते हैं। प्रस्तुत प्रतीक की सिफ बनावट सुखदा के निजी जीवन की बनावट है, जिसमें अब कुछ रह नहीं गया है और उस सब को पूरी तरह अनुभव करने में कोई बाधा नहीं है। मकानों की बिंदियां सुखदा के निजी घर की वर्तमान स्थिति का द्योतन कराती हैं और पतली सफेद लकीरें बताती हैं कि कभी इसके जीवन में भी सरसता थी पर अब वहां कुछ भी नहीं है। सब-कुछ उसके जीवन की व्यर्थता और रिक्तता में सिमिट गया है और यही सुखदा के जीवन का क्षितिज है।

२ प्रतीक

सोचती हूं कि मेरा भी कोई स्थान होगा, काली बूंद की भी कोई जगह होगी ! वह बूंद अपने आप में तो काली ही है फिर भी इस निरंतर अनंत बिगड़ते फिर भी बनते वर्तमान चित्र पर बूंद के कालेपन से क्या मतलब साधा है ? वह मतलब मेरी समझ में कुछ नहीं आता। होगा वह कुछ तो होगा पर आज तो मैं उस कालेपन से बहुत त्रस्त हूं। (पृ० ५)

प्रतीकार्थ

सुखदा की दृष्टि में उसका अपना जीवन इस सृष्टि में एक काली बूंद-सा है। काली बूंद का कालापन विशेष है। इसमें सुखदा के जीवन का कृष्ण-पक्ष है उसकी अपनी दृष्टि में जिसके कारण अब वह एकाकी जीवन बिताने को बाध्य है वह मानती है कि उसका जीवन भले ही अभावात्मक रहा हो उसका अस्तित्व तो फिर भी है ही। अपने अस्तित्व का यह मान ही उसे जीवित रखे हुए है—सब अपराधों और अभियोगों को साथ लेकर भी यही जीने के लिए

काफी है और सुखदा शायद इसी कारण जिये जा रही है।

३ प्रतीक

जान गई हू कि मैं धीरे धीरे किनारे लग रही हू। किनारे के आगे क्या है पार क्या है? (पृ० ५)

प्रतीकार्थ

किनारे लगने का सामान्य आशय पार लगना गतव्य अथवा मजिल तक पहुचने से है पर अपने अभिप्राय को बनाए हुए भी यहा किनारा मृत्यु का प्रतीक के रूप म आया है जिसकी ओर क्षयग्रस्ता सुखदा बढ रही है। यो किनारे लगना मुहावरा भी अपनी सार्थकता लिये हुए है।

४ प्रतीक

पति का मुझ पर अडिग विश्वास कवच की भाति मुझे सुरक्षित रख रहा है किनारों के बीच म बधी जिन्दगी का प्रवाह किनारो के साथ थोडा थोडा रगड लेता हुआ और कभी मानो क्रीडावश उन किनारों के बाहर भी भाग लेता हुआ चला जा रहा था कि इतने म बाहर का एक झोका मुझे छू गया और वह ऐसा आया कि मुझे अवकाश भी नही मिला और मैं उसकी हो गई। (पृ० १३)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत प्रसग म सुखदा ने किनारो के बीच म बधी जिन्दगी के प्रवाह की बात कही है सो किनारे यहा गृहस्थ जीवन के दायित्व और मर्यादाओ के प्रतीक है जिनके अन्तर्गत गृहस्थ स्त्री अथवा पुरुष अपना जीवन बिताते हैं। क्रीडावश किनारा के बाहर भी भाग लेता हुआ सुखदा का जीवन इस बात का प्रतीक है कि अपनी सहज वृत्ति के कारण गृहस्थ और पारिवारिक जीवन की मर्यादाओ की अवहेलना भी वह करती रही है। बाहर का एक झोका सुखदा के बधे बधाये जीवन म सार्वजनिक जीवन और बाहर के आकर्षण के प्रति सुखदा के मन को लुभा लेने वाले अवसर या अवसरो का प्रतीक है, जिनके कारण सुखदा का मन गार्हस्थ जीवन की ओर से हटकर बाहर ही बाहर विचरता रहा और फिर बिखरता गया।

५ प्रतीक

हाय आज कैसा अचरज है कि मैं उन हरियाली घडियो को टालती गई और किस मरीचिका के पीछे भागती हुई आज इस किनारे पर आ लगी हू!

प्रतीकार्थ

हरियाली भड़िया सुखदा के अतीत जीवन के उन क्षणों की प्रतीक हैं जब सुखदा युवती थी। यदि उसने तनिक भी सोच विचारकर वे क्षण बिताये होते, तो उन क्षणों के सहारे उसके अपने जीवन में भी हरियाली आ जाती। वह जो निरन्तर रूखा और सूखा होता गया वह न हुआ होता। मरीचिका सुखदा की उद्दाम लालसा की प्रतीक है जिसके कारण वह पति और घर से दूर ही दूर हटती चली गई और जब उसे होश आया तो पाया कि वह दूसरे किनारे पर है जहा से लौटना असभव तो नही है पर एक या अनेक कारणों से वह साधक भी तो नही है।

६ प्रतीक

सोई न थी पर जगी हुई भी न थी। उस हालत में मैंने अनुभव किया कि कोई हाथ मेरा तकिया टटोल रहा है। मेरे मन म अनिश्चय न था। मैं और भी सोई बन गई यानी मैंने अपने को भी न जानने दिया कि मैं सोई नही हू। उस हाथ ने तकिए के नीचे कुछ रखा सोई हुई मुझको जाने किसने बता दिया कि वह पत्र है। फिर हाथ हट गया और कोई वहा से चला गया। वह कदम कदम चला। दरवाजे पर पहुचा दरवाजे को आहिस्ता से छूकर उसे हटाया। मैं नीद मे से एकाएक जोर से चीख उठी। चीख सपने में से आई थी और मैं सुध म न थी—नीद की बेसुधी ने ही बताया कि आदमी ठहर गया है ठिठका है, आ नही रहा है। (पृ० ४३)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत उदाहरण म सुखदा के अवचेतन की स्थिति का सटीक चित्रण है। प्रस्तुत स्वप्न और उसमे की घटना इस बात के प्रतीक हैं कि सुखदा के अवचेतन म यह धारणा घर कर चुकी है कि सुखदा को जैसा जीवन जीने की लालसा है उसम पति नाम का कोई स्थान नही है इसलिए इस पति नामक जीव को अब सुखदा के जीवन से हट जाना चाहिए पलायन कर जाना चाहिए ताकि सुखदा अपने प्रेमी लाल के साथ रगीनियो म जी सके।

यह स्वप्न सुखदा के काम्य चिंतन (विशुफुल थिंकिंग) का ही प्रतिफल है।

७ प्रतीक

लेकिन जो नही होना था नही हुआ होना था नही हुआ, आर किनारे से शून्य तक फले इस समुन्दर म बिछुड़कर मैं हटती ही चली गई। यहा तक कि अब कहने को यह कहानी ही बनकर रह गई है। (पृ० १११)

प्रतीकार्थ

किनारे में शून्य तक फैला समुन्दर जीवन का प्रतीक है जिसके पारिवारिक और गाहस्थ जीवन रूपी एक किनारे पर सुखदा थी जो एक समय वहां से बिछुड़ गई और फिर सार्वजनिक जीवन के शून्य के रूप में विस्तृत जीवन भर भटकती हुई वह कहीं की कहीं पहुँच गई। अब सुखदा के पास पहले का या किनारे के सान्निध्य का कुछ है तो वह अतीत की एक कथा मात्र है और कुछ भी नहीं।

उपन्यास विवृत

१ प्रतीक

सच यह था कि इस नये परिच्छेद को मोहिनी अपनी पुस्तक के अंग रूप में नहीं देखती थी। वह प्रक्षिप्त है आकस्मिक संयोग से हो गया है। (पृ० ५५)

प्रतीकार्थ

मोहिनी की जीवन पुस्तक का यह नया प्रक्षिप्त परिच्छेद गृहस्थ भुवन मोहिनी के जीवन में जितेन के आकस्मिक रूप से पुनः आ जाने का प्रतीक है। जो एक बार छूट गया था या कि हटा दिया गया था वह अंग रूप हो ही नहीं सकता अन्यथा वह छूटता नहीं हटाया नहीं जाता। इसे प्रक्षिप्त कहना इसलिए और भी सार्थक है कि उसका आगमन अप्रत्याशित और अनजाने हो गया था जिसकी मोहिनी ने कल्पना भी न की थी।

२ प्रतीक

जितेन ऊपर देख रहा था, वहां छत न थी कुछ और था छत मिट गई थी जैसे सुन गई हो और जहां अनन्त आ घिरा हो। उस अनन्त अगाध शून्य के पट पर ही मानो कुछ उसे दीख आया था। उसे देखते देखते अनबूझ भाव से मुस्कराया जैसे वह जहां था वहाँ था ही नहीं। (पृ० ५८)

प्रतीकार्थ

छत की अवस्थिति का भान रह जाना इस बात का प्रतीक है कि जितेन की कल्पना निर्बाध रूप से सक्रिय थी और मुक्त गगन में विचरण कर रही थी। अपनी ही एकाकी चिंतना में लीन एकदम आत्मकेन्द्रित जितेन जैसे अपने कल्पना-लोक में एक नये संसार का निर्माण कर रहा है सृष्टि के असीमित विस्तार में वह जैसे अपने स्वप्न को साकार कर रहा हो। किन्तु जब ध्यान टूटा

लो उसने अपने आपको ऐसा बनाने की चेष्टा की, कि वह विचारों के क्षितिज मे नही यहीं कहीं आसपास ही था, ताकि उसके कल्पना-लोक की सीमा म कोई और प्रविष्ट होने की धृष्टता न कर सके। यह अतीन्द्रिय लोक म विचरण का काल्पनिक चित्र है।

३ प्रतीक

नागफास मैंने ही तो बोये है तो मैं ही उन्हें काट और भाग लूगा तुम्हारा दामन उनसे पाक रहेगा। (पृ० ९७)

प्रतीकार्थ

नागफास यहा जितेन के उन कार्यों के प्रतीक है, जिनके परिणाम से बचने के लिए वह मोहिनी के यहा आश्रय लिये है पर जिनके कारण मोहिनी और उसके घर की प्रतिष्ठा को भी आच आ सकती है। जितेन सभवत बौखला सा गया है तभी त अपनी आश्रयदात्री के प्रति इतनी उद्धतता और अविनय प्रकट कर रहा है।

४ प्रतीक

पलग के किनारे तक कालीन पर कितने और खुली जगह पर कितने डग आते थे, यह वह गिन गया। उसने डग बार बार गिने। उसे विस्मय था कि हर बार वे उतने ही रहते हैं। काफी देर तक वह इस तरह टहलता रहा। इस बीच उसके लिए मानो कमरा न था न उसमे चीजें थी, वह उतना नपा नपाया रास्ता था जो वह डगो से नापे जा रहा था और नापे जा रहा था। (पृ० १०१)

प्रतीकार्थ

जितेन का यह व्यवहार एव आचरण उसकी उस मन स्थिति का प्रतीक है, जिसमे परिचित और अपरिचित, बाह्य और आतरिक जगत् के प्रति एक सहज कौतूहल एव जिज्ञासा है और जो कुछ नया अनुभव करना चाहता है किन्तु निरतर के अनुभव से वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जो जहा है सो है। मोहिनी के सदर्भ म वह जिस आश्वासन को प्राप्त करने का आकाक्षी है वह उसे नही ही मिल पाता।

५ प्रतीक

कोई पूछे कि बिजली एकाएक कहा से चमक जाती है। चारो ओर अधेरा

है ऐसा कि मानो एक नक्षत्र के नीचे सब हुआ मिट गया हो। तभी वहां से कौंध आता है एक बिजली की रेख जो सब-कुछ को चीरता हुई एक साथ चमक उठती है और चमका उठता है। ऐसा ही कुछ विपिन के साथ हुआ। वो गहन ताल ना अंधकार मानो टकराकर एक तीव्र प्रकाश को जन्म दे आए। (पृ० १२५)

प्रतीकार्थ

यहां जिस बिजली के कौंधने की बात कही गई है वह विचारों की बिजली है। मन का नाना-नाना आशंका के अंधकार में परिव्याप्त है तभी उस अंधकार को चीरती हुई विचारों की बिजली कौंधती है और तब विपिन (जितेन) अनिर्णय की स्थिति में ठोस निर्णय को प्रकाश-सा अनुभव करता है। एक ओर मन के भीतर की आशंका है तो दूसरी ओर माहिनी के जवरास्ति न्हा जान का उसका दुःख है। साथ ही दलगत उत्तरदायित्व के सहज निर्वाह का बोध भी कम नहीं है तब इन अंधकार के पारस्परिक संघर्ष में जिस तीव्र प्रकाश का जन्म होता है वह निर्णय की स्थिति तक पहुंच पाने का प्रकाश ही है।

६ प्रतीक

साझ धीरे धीरे गहरी हो रही थी दिन का कोलाहल थमा लगता था। दूर पड़े दीखते थे और मकान कहीं व्यक्त न था। सब प्रकृति ही थी। जैसे वह उसके निकट नई हो। व्यक्तियों में—अपने में अपनों में और पराये में—वह इतना रहती आई थी कि वह सारी ओर सुनी पनी निर्वैयक्तिकता उसे नई और अनोखी लग आई। यह है वह जिसमें अपने को निःशेष किया जा सकता है। कहीं दूर इक्की-दुक्की चीलें उड़ दीखी जा उड़ उतनी नहीं जितना तिर रही थी। छोटी चिड़िया बीच में फुर से हवा में फुदकती और छिप जाती। इस वातावरण में घरों में उठकर ऊपर सिमटता हुआ धुआं भी मानो आसमान की गोद में समास्या लगता। उसकी कालिमा चित्त में रस सी लगती और दुखती रही। वह इस एकांत सूनेपन के बीच वहीं खड़ी रह गई। उसे भला मालूम हुआ जैसे अपनेपन की जकड़ में खुल रही हो। (पृ० १४८-४६)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत उद्धरण के पूर्वार्द्ध में वातावरण की गम्भीरता दर्शायी गई है। वातावरण की निस्तब्धता माहिनी के अंतर की निस्तब्धता है। प्रकृति के साध्यकालीन रूप में वह अपने मन की निस्तब्धता और एकाकीपन को भूलने लगती है।

इक्की दुक्की चीलो का तिरता हुआ दीखना, उसके हृदय मे उठे भावो के धीरे धीरे उत्पन्न होने और अस्तित्व मे आने का प्रतीक है। चिड़ियाएँ भी मन को अच्छे लगने वाले छोटे छोटे भाव ही है। घरो से उठकर ऊपर सिमटता हुआ धुआ मोहिनी के मन की कुठाओ और घुटन का धुआ है जो पति की विशालता के आकाशीय विस्तार म सिमट और छुपकर अपनी नकारात्मकता को भी एक विशेषता के रूप म देखने लगता है। इसका श्रेय धुए को नही, आसमान को है जो धुए की कालिमा का उसकी नकारात्मकता को भी सुदर बना देता है एसी सुदर कि चित्र मे रग सी लगती दीखती नही। उस विशालता का अनुभव करती मोहिनी आकाश के प्रति कृतज्ञता के भाव से भर उठती है और स्वय को अधिक खुली अधिक उन्मुक्त अनुभव करती है।

७ प्रतीक

बादल गहरे हो रह हैं बिजली कडककर कभी भी टूट सकती है। (पृ० १५७)

प्रतीकार्थ

बादल पुलिस की सरगर्मी सक्रियता और तथाकथित क्रातिकारियो को अपनी गिरफ्त म लेने के प्रयास के प्रतीक हैं और बिजली का कडककर कभी टूट सकना क्रातिकारियो पर इसके कारण शीघ्र पर आकस्मिक रूप म आने वाल सकट का प्रतीक है। परिस्थिति जितनी गम्भीर है उसकी अभिव्यक्ति के लिए बादल और बिजली का टूटना ही सटीक प्रतीक हो सकते हैं, जिनका कि यहा प्रयोग किया गया है।

८ प्रतीक

प्रखरता उसका मानो भीग आई थी बारूद सूखी ही हा सकती है। चित्त भीगा हा ता कुछ चल नही सकता, बारूद भीग म बकार होती है। (पृ० १७१)

प्रतीकार्थ

यहा प्रखरता का आशय क्रातिकारी जितेन की उस तेजस्विता से है जिसम अपने लक्ष्य के अतिरिक्त, शेष के प्रति कोई सरसता नहा हो सकती थी, पर अपने प्रति तिन्नी के समर्पित रूप और प्रणयानुभूति न उसम जिस सरसता का सचार किया, उससे उसके क्रातिकारी जीवन का शुष्क पक्ष सूखा ही बना न रह सका। तब उसकी क्रातिकारी अरसिकता की बारूद का गीला होना

स्वाभाविक ही है और ऐसी स्थिति में उसके जीवन का क्रांतिकारी पक्ष नक्कारा रमत-सा बन जाता है ठीक गीनी बाम्द की ही तरह।

९ प्रतीक

खिड़की बन्द थी और रानजान बन्द न हो सकता था। हनकी सर्नी क न्नि थे। काला पाक गुरु ही हुआ था। चान्द शायद निकला न होगा या ऊंचा न चढ़ा होगा। चान्दनी मन्दर आ रही थी। चांदनी बाहर हो तो भी मन्दर न आई था। खिड़की नीचा थी और उसम मे निश्चय न हो सका कि चाद आसमान म उतरा कि नहा मानो उस चाद की बहुत आवश्यकता थी। वह है मिट नहा गया है इस खबर की बहुत आवश्यकता था मानो वह अंधेरा है और अधेरा गहरा है इसम चान्द चाहिए फौरन फौरन चाद चाहिए नहीं तो अंधेरा लील जाएगा।

चान्द हवेलियों के किनारों से धीरे धीरे उठकर मुह दिखाने लगा था। अधियारी अभी उससे कम न थी। उजियारा वहां से वस शुरू हो रहा था। उसने मनोष की साम ली और आसमान का भरपूर देखा। (पृ० १७८ ७६)

प्रतीकार्थ

अपनी स्थिति को लेकर जितेन कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसे अपने चारों ओर निराशा ही प्रतीत होती थी। वह चाद चाहता था उसकी शीतलता और प्रकाश चाहता था पर निराशा का कृष्ण पक्ष अस्तित्व में था।

वह अनिश्चय की स्थिति में था कि किसी निष्कर्ष पर पहुंच भी पाएगा अथवा नहीं। वह निष्कर्ष पर पहुंचने को उत्सुक था पर निरंतर विचारशील रहकर वह केवल अपने अस्तित्व का ही अनुभव कर पा रहा था। इस अनुभव का होना भी उसे आवश्यक था पर साथ ही उस रोशनी और शीतलता की भी आवश्यकता थी अन्यथा वह आशंकित था कि वहां निश्चय और अनिश्चय के बीच ही वह भटका न रह जाए। और अंततः उसे चाद की ऊपर उठती स्थिति का भी ज्ञान होता है यद्यपि शून्य विचारों के घेरे में वह अब भी भटका हुआ था। फिर भी उसे संतोष था कि वह कुछ प्राप्त करने की स्थिति में तो है। यहां चाद चान्दनी अंधियारे आदि सटीक प्रतीकार्थ लेकर उपस्थित हुए हैं।

१० प्रतीक

जमना के तीर पर से देखा उधर रेत है और जंगल है। उसके परे से नीचे होकर धारा बही जा रही है। (पृ० २०२)

प्रतीकार्थ

यहा जितेन निर्णय की स्थिति पर पहुच चुका है कि उसे ग्रब भ्रान्ति का रेतीला ग्रौर जगली माग छोडकर समपण कर देना चाहिए ग्रौर ग्रात्मताप के रूप मे पाव के नीचे की सरस धारा का ग्रनुभव करना चाहिए ग्रर्थात् जीवन को उसके सहज रूप म जीने की चष्टा करनी चाहिए ।

११ प्रतीक

सब सुनसान था, रात हसती थी । तारे बहुत थ ग्रौर बहुत घन थे ग्रौर बहुत उजले थे । चाद था नहा, पड सोय थ पानी भी सोया लगता था, ग्रगचे बह रहा था । बस डाड की छप छप की ग्रावाज एक ग्रावाज थी, या फिर किनारो स ग्राती भिल्ली की टेर जो मौन ही को तीखा करती थी ।

रेत ठडी थी शायद जरूरत से ज्यादा ठडी थी । रात ठडी थी ग्रौर सरदी मामूली से ग्रधिक थी, लकिन तब उसे सुहावना लगा ग्रौर शीत का स्पश उसे सुखकर मालूम हुग्रा । वह ग्रपने पूरे फलाव म लेटा रहा । (पृ० १११ १२)

प्रतीकार्थ

एक निश्चय लेकर जितेन ग्रपने ग्राप म प्रसन्नता का ग्रनुभव करता है— ग्रात्मिक प्रसन्नता का ग्रनुभव । वह भी प्रकृति के ग्रनेक उपादानो की तरह एकाकी सुख का ग्रनुभव कर रहा था । प्रकृति के उपादान यहा जितेन की एकाकी साधना के सुख क प्रतीक है ।

हलकी सर्दी न मौसम को ग्रौर भी सुहावना बना दिया था सुखमय बना दिया था । इस सुखद ग्रौर सुहावने वातावरण म उसके ग्रपने मन की प्रसन्नता व्यक्त होती सी लगती है इसलिए जितेन सब ग्रोर स निश्चित है जस नय माग को ग्रपनाकर वह ग्रौर भी गौरवशाली एव विस्तृत हो गया हो ।

उपन्यास व्यतीत

१ प्रतीक

हाथ जोड मैं होटल से बाहर ग्रा गया । मेरी कापुरुषता ही थी । समय पर मैं ग्रच्छा रह जाता हू । शायद भीतर की कविता जल्दी मुझे ग्रादमी नही बनने देती । डेरे पर ग्राकर ग्रपने से कम क्रोध मैंने नही किया । ग्रौर एक ग्राहत ग्रभिमान भी दश दे रहा था । नही जानता प्रेम क्या वस्तु है । पर मालूम हाता है ग्रपने साथ वह एक युद्ध है । ग्रपने ही किलो को एक एक कर उसम

ताडना होता है। जिन्हें स्वयं बड़े प्रयत्न से बांधा था, निमम होकर उन्हीं को गिराते जाना पड़ता है। इस तरह यहां एक निरन्तर आहुति है जिसमें पल-पल जलना पड़ता है। (पृ० ८५ ८६)

प्रतीकार्थ

परिस्थितियां जयन्त से जिस व्यवहार की माग कर रही थी वह उन्हें नहीं दे पा रहा था। पाठक रह जान मे यह भाव निहित है कि वह समयानुसार आचरण नहीं कर पाता। भीतर की कविता से तात्पर्य अतिरिक्त सहृदयता और भावुकता से है इसी का अतिरेक उसे मानवीय धरातल पर नहीं रहने देता। अपने से कम आयु करने मे यही व्यजित होता है कि उसके मन मे एक प्रकार की दुविधा है और द्वन्द्व भी है। मस्तिष्क कुछ कहता है और हृदय किसी दूसरी ओर ही टलता है। दंश मे वृश्चिक-दंश का प्रतीक अन्तर्निहित है। अभिमान पर वृश्चिक का आरोप है। किले बन्धन के प्रतीक हैं जिन्हें तोडकर व्यक्ति खुला हवा मे सास ले पाता है। इन बन्धनो को व्यक्ति ने स्वयं ही अपने मन पर आरोपित किया था अब वही बडे निर्मोहीपन के साथ उन्हें तोडने के लिए बाध्य है। निरन्तर आहुति मे आत्म-बलिदान के यज्ञ की प्रक्रिया आभासित होती है। इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रेम मे व्यक्ति को अपनी ही भावनाओ का होम देना पड़ता है।

२ प्रतीक

कहते हैं विवाह करते हम हैं होता भगवान के यहां है। यह भी सुनता हूँ कि जन्म-जन्मान्तर तक विवाह की व्याप्ति है। दो एक-दूसरे मे एक रस भुवन मे ही नहीं होने पहले से चल आते हैं। इससे यह काम कर्तव्यता से नहीं होता भवितव्यता से होता है। सचमुच ऐसा ही लगता है। कहने योग्य परिचय हमारे बीच मे न था परिचय से आगे सामाजिक परिचय और विवाह सामाजिक है। हम दोनों ने अच्छी तरह देखा कि वह सामाजिक है। हम दो व्यक्ति रूप मे ही मिले निपट और एकाकी व्यक्ति। किन्तु कोई निपट नहीं है और कोई एकाकी नहीं है। फिर भी परस्पर दो लेकर हम दोनों एक ही हो आये। और इसी रूप मे मिलकर साथ विवाह करेंगे, सामाजिक होंगे।

पर सोचते हम हैं रचता विधाता ही है तो उसकी रचनाओ का तक न जाने क्या होता है। पर हमारी भावनाओं के उनसे होने के कारण हमारे लिए उसमे एक ऐसी विवशता होती है कि रचना को हम अपनी भी कह पाते हैं। (पृ० ८८)

प्रतिकार्य

भारतीय संस्कृति मे विवाह को जन्म-जन्मान्तर का संबंध बतलाया गया है।

इस प्रकार भौतिक सम्बधो पर आध्यात्मिकता का आरोप किया गया है और इसे अज्ञात नियति से जोड दिया गया है। व्यक्ति रूप म मिलने म यही भाव निहित है कि जयन्त और चन्द्री अपने सबधो म समाज को कोई स्थान नही देना चाहते, किन्तु किसी के एसा सोचने स क्या विवाह सस्था पर पडे हुए आध्यात्मिकता के आवरण को दूर किया जा सकता है और उसकी सामाजिक महत्ता को कम किया जा सकता है?

दूसरे अनुच्छेद की प्रथम पक्ति मे 'मैन प्रपोजेज एण्ड गाड डिस्पोजेज' की झलक मिलती है। विधाता की रचनाओ के तत्व को बुद्धि द्वारा नही ग्रहण किया जा सकता। इस प्रक्रिया मे आश्चर्य की बात यही है कि व्यक्ति यही सोच पाता है कि उसके किये ही सब कुछ हो रहा है जबकि वास्तविकता यह है कि कोई अज्ञात शक्ति सपूर्ण कार्यों का सूत्र-सचालन करती है। इतना होने पर भी व्यक्ति को अपना काय अपने द्वारा ही सम्पन्न किया हुआ प्रतीत होता है। प्रस्तुत पक्तियो म वैयक्तिक मोह और अज्ञात सत्ता के सूत्र सचालन के द्वन्द्व को स्पष्ट किया गया है।

३ प्रतीक

कमरा अकेला था। हम दो ही थ। मैं भी भीगा हो आया। चेष्टा करके बोला वह तो सदा के लिए गया। नही अब लौटकर इस मरु-जीवन म वह वस्तु तो कभी आनेवाली नही ।

क्या कह रह रह हो, जयन्त। चुप हो जाओ। मुझे मारो मत।

तभी कहता हूँ, अनिता, मुझसे ब्याह ब्याह की बात मत करो।

करूगी। नही तो मुझे पहले जहर क्यो नही दे दते?

मैं विषाद म हँसा। कहा, तो मुझे जो जहर चाहिए उसका नाम विवाह है? अच्छा दो। (पृ० ६४)

प्रतीकाथ

जयन्त प्रेयसी के सान्निध्य मे है। अतीत जीवन की स्मरण कर उसके हृदय में एक प्रकार की आर्द्रता उत्पन्न हो आई है। प्रेयसी के अभाव म वह अपने जीवन को मरु-जीवन समझता है। मरु-जीवन यहा नीरसता एव एकरागता का प्रतीक है। स्वाभाविक ही है कि जयन्त की इस बात से अनिता का हृदय टूक-टूक हो जाए। वह एसी स्थिति म अपने आप को मृत्यु के आलिगन मे पाती है। जहर देने की बात मे गहरी आत्मव्यथा का पुट है और प्रणय की स्थिति मे यह जहर का प्रतीक बहु प्रचलित है। जयन्त का विषाद मे हँसना वतमान

परिस्थिति पर क्रूर व्यंग है। इसीलिए जहर और विवाह को एक कर दिया गया है जो ऊपर से तो विरोधाभास-जैसा प्रतीत होता है परन्तु उसमें प्रभाव की दृष्टि से साम्य है। जहर और विवाह दोनों का प्रभाव अनन्य होता है।

४ प्रतीक

शरीर तो जड़ ही है इसी से सड़ जाता है गल जाता है। प्राण प्रवाही है उसी के बल पर शरीर अजेय बनता है। लेकिन मैं यह क्या कह चला ये पैंतालीस वर्ष बिना चुकने पर हो तो मैं कहता हूं जब व्यर्थता का बोध चारों ओर से सिरा सिरा को बेध कर मुझे जर्जर किए जा रहा है। अपने को अपने में लिए चला गया कहीं पूरी तरह देकर खतम नहीं कर सका इसी से तो आज पाता हूँ कि मैं हूं और अभी भी मृत्यु से कुछ अन्तर पर हूँ। लेकिन जान पड़ता है कि भीतर-बाहर सब ओर से निरी व्यर्थता को ही चिह्नित करने के लिए मैं अवशिष्ट रह गया हूं। कहीं अब शेष नहीं है। सिर्फ यह है कि इस मुझ नितान्त रीते अर्थहीन को लोग देखें और पावें। खेतों में हुलावे खड़े किए जाते हैं वैसे ही शायद मैं हूँ। एक ठूंठ जिससे लोग आगाह हों कि राह यह नहीं है। (पृ० ६५)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्तियों में शरीर को जड़ता का प्रतीक बताया गया है। इसी से उसमें सड़न और गलन है। प्राण चेतना का प्रतीक है उसी के माध्यम से शरीर अजेयता का गौरव प्राप्त करता है। व्यर्थता का बोध जीवन के अभाव और निरर्थकता का प्रतीक है। आत्मदान कर पाने की विफलता ही व्यर्थता को और घनीभूत कर रही है। अब जीवन में जैसे कोई सार्थकता नहीं रही है। यदि कोई सार्थकता कही जा सकती है तो वह यही है कि लोग जयन्त की निरर्थकता से कुछ नसीहत लें। खेत के हुलावे की तरह ही जयन्त अपने आपको निष्प्राण एवं अर्थहीन समझता है। 'हुलावा' मनुष्य की जड़ता का प्रतीक है।

५ प्रतीक

यह नहीं कि मैं नहीं समझ सका। लेकिन बरफ में से आ रहा था। मानो भीतर भी सारी बरफ हो और उस सारी सिल पर कोई अमानव बैठा हो। वह अमानव कहाँ से आ गया था? कौन तो या नहीं जिसमें से यह फल आया था? याद कर सकता हूँ कि कुछ मुझे हँसी आ गई थी। कहा-सुना था विवाह से मुक्ति मिलती है। (पृ० ११०)

प्रतीकार्थ

जयन्त ने चन्द्री से विवाह तो कर लिया पर वह उसकी कामनाओ की पूर्ति न कर सका। जयन्त अभी अभी बरफ म से लौटा है उसे लगता है कि उसके मन के भीतर भी इसी तरह की बर्फ इस हद तक जमी हुई है कि काम नाए सिर नही उठा सकती। चन्द्री के प्रति जयन्त का व्यवहार मानवोचित नहीं है। यहा पर अमानव निषेध एव क्रूरता का प्रतीक है। स्वय जयन्त का आश्चय है कि उसम ऐसी प्रवृत्ति नही थी, फिर यह परिणाम कहा से आ गया? उस समय की चन्द्री की स्थिति को देखकर जयन्त के ओठो पर व्यगपूर्ण मुस्कराहट थिरक गई थी। सुना था, विवाह से मुक्ति मिलती है—इस वाक्य के दो अथ हो सकते हैं एक तो यह कि सामान्यत मोक्ष प्राप्ति के लिए विवाह को अनिवार्य माना गया है, दूसरे अथ मे मुक्ति से छुटकारे का भी अथ लिया जा सकता है जो कि यहा व्यग्याथ ही होगा। जयन्त ने अज्ञात रूप से व्यग्य किया और वह चन्द्री की चेतना मे गहरा धँसता गया।

उपन्यास जयवधन

१ प्रतीक

कुछ यहा, अधेरा है और आदिम, जो चुनौती-सी देता है वह अतक्य है। उसमे चमक नहीं, धार नही, मिट्टी के मानिंद वह मद और मला है। (पृ० ६)

प्रतीकार्थ

भारत आदिम सृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। यहा का जीवन और सस्कृति रहस्य के आवरण मे लिपटे हुए हैं। भारत की यही भिन्न प्रकृति एक विदेशी को ललकारती है। तक के माध्यम से भारत को नही समझा जा सकता। भारत म ऊपरी चमक-दमक नही है यहा के व्यक्तियो मे प्रखरता भी नही है। मिट्टी के समान ही उसे कान्तिहीन और मलिन कहा जा सकता है। अधेरा और आदिम भारत की पुरातनता एव रहस्यमयता के प्रतीक हैं। चमक और धार क्रमश वैभव एव प्रखरता के प्रतीक हैं। मिट्टी स्वाभाविकता की प्रतीक कही जा सकती है, जिसमे प्राकृतिकता तो है पर कान्ति और दप नहा है।

२ प्रतीक

सब शात है, सागर की सिसकी भी कुछ शात मालूम होती है नहीं तो पछाड़ें उसकी कब रुकती हैं? (पृ० ११)

प्रतीकार्थ

सवत्र शान्ति का साम्राज्य फला हुआ है। इस शान्ति से हूस्टन अपना

तादात्म्य स्थापित कर लेता है। सागर की सिसकी उसकी उद्विग्नता की प्रतीक है और सागर की शान्ति इस बात की प्रतीक है कि उद्विग्नता समाप्त हो गई है और उसका स्थान धीरता और स्थिरता ने ले लिया है।

३ प्रतीक

जयवर्धन जो दया मिला वह हुई। व्यक्ति नही, वह घटना है। वह दो, व्यक्तित्व स्पष्ट नही, कही भीड मे वह खो भी सकता है साधारण-स्वस्थ पर हुआ कही तो बिजली का जीता तार जैसे छू गया धक्के और अचम्भे से आदमी झनझना आता है। धक्का और भी प्रबल शायद इसलिए होता हो कि तुम उसकी तनिक भी आशा नहा रखते। बढते हो कि करुणा करोगे पर कुछ आता है कि तुम स्तब्ध बधे से रह जाते हो। तुच्छता समझ कर जहा हाथ डाला वहा ज्वाला दमक आए तो कैसा लगे ? (पृ० १७)

प्रतीकार्थ

यहा घटना औत्सुक्य की प्रतीक है जिसके प्रति सभी का ध्यान आकृष्ट होता है क्योकि वह कुछ अनोखी और विलक्षण होती है। जयवर्धन चाल-ढाल से तो मामूली आदमी लगता है किन्तु जब कोई उसके सम्पर्क मे आता है तो वह उसमे विद्युत् जैसी त्वरा और झनझनाहट पाता है। जयवर्धन पर जब कोई दया से द्रवित हो उसे उपकृत करने के लिए आगे बढता है तो उसके आश्चर्य चकित रह जाने के सिवा और कुछ नही हो पाता। जिस राख को मामूली समझा था उसमे से तो चिनगारिया फूटने लगी। बिजली का जीता तार त्वरा और स्पन्दनशीलता का प्रतीक है। स्तब्ध बधे से रह जाना विस्मय विमुग्धता का प्रतीक है। ज्वाला दमक आना तीव्रता एव प्रकाश का प्रतीक है, जो कि जयवर्धन के व्यक्तित्व मे समाये हुए हैं।

४ प्रतीक

अभी तो इन दीवारो को मोटापा देने वाला राज्य का नियम रोकता है और मैं इसलिए रुक जाता हूँ कि मेरी लडाई दीवार से नही है हृदय से है। दीवार टालकर पीछे हटता है। उस हृदय तक बात जब भी पहुचे। मुझे धीरज है, काल अनन्त है यहा जल्दी क्या है! (पृ० ४३)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत अनुच्छेद मे दीवारो का मोटापा बन्धन का प्रतीक है। आचार्य

हृदय-परिवतन करना, चाहते हैं इसलिए दीवार को वे बाधा के रूप मे नही पाते। उनका धय अखण्ड है और वे किसी भी परिवतन के लिए प्रतीक्षा कर सकते हैं।

५ प्रतीक

हो सकता है काल को शिक्षा देने की मेरी महत्त्वाकाक्षा नही, फिर शक है कि लहरो म सागर की यथायता है। उसका गाम्भीय शायद थाह म है, चलते काल मे क्या हमे अचल नही रहना है? (पृ० ४५)

प्रतीकाथ

, आचाय काल प्रवाह को मोड देने की महत्त्वाकाक्षा नही होना चाहते। उनकी दृष्टि मे सागर की वास्तविकता लहरो की गतिशीलता मे नही है अपितु उसका गाभीय जल मे है। काल को दिशा देने म युग परिवतन का प्रतीक निहित है। सागर की गहराई मे ही उसका मूल तत्त्व रेखाकित है। उसकी गतिशीलता तो एक ऊपरी चीज है। काल प्रवाह म जो सस्कृति अपने को जितना स्थिर रख सकेगी वह उतनी ही महान् है।

६ प्रतीक

मैं विस्मित भाव से आचाय को सुनता और देखता रहा। मालूम हुआ कि वह पराङमुखी नही बल्कि पराक्रमी व्यक्ति है। किसी क्षितिज पर उसकी मनीषा रुकना नही जानती। प्रयत्न उसम थकता नहीं सदा पार की टोह म रहता है। सच एक है इससे अनत है। इधर आर नही है इसलिए उधर वहा कोई पार भी नही है। यह जानता है और यही ज्ञान उसम श्रद्धा लाता है शायद भक्ति भी लाता है पर रुकाव नही लाता। प्रश्न को उसमें मद नही करता प्रश्न अपनी ओर मुडकर केवल स्वस्थ होता है कम तीव्र नही होता। (पृ० ४८)

प्रतीकाथ ।—

आचाय जीवन के प्रति पलायनशील नहीं बल्कि प्रगतिशील है। उनकी बुद्धि एव प्रतिभा कोई सीमा नही जानती। वे सदा मूल तत्त्व पाने के प्रयत्न मे रहते हैं। उनका सत्य आर-पार की सीमा म बधा हुआ नही है। उनकी यह स्थिति किसी भी रूप म गतिहीन नही है। वे जिन प्रश्नो को सुलझाना चाहते हैं उन्ह सुलझाकर ही दम लेंगे। वस्तुत उनकी बौद्धिक चेतना किस

और काल की सीमा में आबद्ध नहीं है। क्षितिज आर-पार—सब सीमा के प्रतीक हैं।

७ प्रतीक

अब लिख रहा हूँ और रात गहरा रही है वायु में भी अभिसंधि की सुनक मालूम होती है। बाहर शान्ति शंकित हो तो बाहर शंका की ही आशंका। (पृ० ९१-९२)

प्रतीकार्थ

हृस्टन स्वामी के यहाँ से लौटे तो विचित्र संभ्रम में थे। रात काफी बीत चुकी थी पर वे अपनी अनुभूतियों और वास्तविकताओं को लिपिबद्ध करना चाहते थे। उन्हें अपने चारों ओर के परिवेश में एक षड्यन्त्र की गंध प्रतीत हो रही थी। रात के गहराने में विचारों के गहराने की भी संगति है। अभिसन्धि की सुनक में षडयन्त्र के रहस्योद्घाटन का प्रतीक निहित है। यों आदमी अपने मन की बात को ही प्रकृति पर आरोपित करता चलता है, क्योंकि यह जगत् अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है। जैसे हम हैं उसी रूप में हम दुनिया को देखते हैं।

८ प्रतीक

बाहर विस्फोट नहीं है पर गड़गड़ाहट रह रहकर सुन जाती है। अखबार सुलग रहे हैं। ऐसी अवस्था में इला का मन समझ सकता है, लेकिन लगा कि तल की तह अभी दूर है। (पृ० १०१)

प्रतीकार्थ :

विस्फोट विद्रोह एवं अव्यवस्था का प्रतीक है। गड़गड़ाहट आगामी खतरे की सूचना है। अखबारों के सुलगने में जनता के सुलगने का भाव निहित है। एक उत्तेजना एवं गर्मी का भाव जनता में दहक रहा है। कुल मिलाकर ये सब बातें भावी अशांति की प्रतीक कही जा सकती हैं।

९ प्रतीक

हाँ सिर्फ लकीर से विलवर, क्या लकीर ही नहीं है जिससे स्वदेश और विदेश बनते हैं और जिन पर युद्ध होते हैं? लकीर भी नक्शे पर असल में कहाँ नहीं, फिर भी आदमी अपना और दूसरों का लहू उत्सव उल्लास के साथ

बहाते हैं—उसी की ग्रान रखने के लिए। लकीर बडी चीज है, बिलवर मिटाते हो, पर वह बीच म से मिटती नही है। कुछ देर के लिए ग्रोझल होती है तो ग्रास-पास यहा-वहा फिर बनी खडी दिखाई देती है। (पृ० १११)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पक्तिया म राष्ट्रो के भौगोलिक विभाजन पर व्यग्य है—लकीर के माध्यम से। लकीरो से ही स्वदेश ग्रौर विदेश के बीच विभाजक रेखाए खिचती हैं ग्रौर इसी ग्राधार पर बडी-बडी लडाइया लडी जाती हैं। इसी के निमित्त युद्धोत्सव के रूप मे रक्तपात भी होता है। ग्राश्चय की बात है कि एक स्थान पर लकीर को मिटाने का प्रयास होता है, तो वह दूसरे स्थान पर उभर ग्राती है। यहा लकीर स्वाथ ग्रौर पराथ के बीच प्रतीक रूप म उपस्थित की गई है। इसका ग्राधार कुछ भौगोलिक, कुछ राजनीतिक ग्रौर कुछ ऐतिहासिक होता है, पर यह कोई बुनियादी ग्राधार नहीं है। मनुष्य की सुविधा का सरजाम ही यहा सर्वोपरि है। जय ग्रौर इरा के वैवाहिक सदभ म भी यह लकीर निर्णायक भूमिका ग्रदा करती है।

१० प्रतीक

बादल घिरे हैं। कुछ ग्रदरूनी तनाव है कुछ बाहरी। जय को नाजुक समय म से गुजरना पड रहा है। ग्रादमी कहा स प्रकाश पाता है तब जबकि राह हो नही ग्रौर चारो ग्रोर ग्रधेरा हो? शायद प्रकाश तब उस स्रोत से मिलता है, जिसे श्रद्धा कहते हैं। बुद्धि तो जरा मे छिन्न हो जाती है। तब कुछ निपट भीतर से जहा ग्रधकार है ग्रौर नितान्त रिक्त, बिजली-सा कौंधता लहककर कूल जल ग्राए, तभी उजाला मिल पाता है ग्रन्यथा ग्रादमी क टूट रहने की ग्राशका है। बुद्धिमानी ऐसे समय जवाब दे जाती है। ग्रत स्फूर्ति म ही कुछ भीतर से दमक ग्राए तो ठीक तब सकट ही सीढी बन जाता है, नहीं तो—(पृ० ११८)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत ग्रनुच्छेद म बादल समस्याग्रो से ग्राक्रान्त जय के मन के प्रतीक हैं। बादलो के प्रतीक मे एक सभावना भी निहित है। बादलो म स जसे बिजली दमक उठती है वसे ही सकटो के साक्षात्कार म ग्रत स्फूर्ति प्रदीप्त हो उठती है ग्रौर माग उजागर हो उठता है। यह ग्रत स्फूर्ति का ग्रालोक ग्रास्था म से फूटता है। बुद्धि के माध्यम स हम कुठा को दूर नहीं कर सकते। ग्रतश्चेतना

वे कुहासे का चीरता हुआ स्वत स्फूर्त भाव आस्था के ही सहारे अपना माग बना पाता है। यदि ऐसा न हो तो आदमी का बौद्धिक एव शारीरिक सतुलन भग होने की पूरी सभावना रहती है। सकट ही सीढी बन जाता है में 'मुश्किलें इतनी आइ कि आसा हो गइ' की अनुगूज है। कुल मिलाकर इन पक्तियो म परामानसिक स्थिति का ध्वनि-सकेत है।

११ प्रतीक

बहुत दिनो पहले की बात है बीस शायद बाईस बरस पहले की। सागर का तट था। सध्या डूब चली थी। तट सूना था। लहरो पर लहरें लेकर सागर आता और पछाड खाकर पीछे लौट जाता। मैं बराबर मे साथ न थी। दो डग पीछे खडी जय को देख रही थी। वह पास थे और पूरे दीख नही सकते थे। आख स जैसे परस ही पा रही थी—जैसे युग बीत गए सामने अपारता थी और आखें उनकी वहा थिर हो गई थी—उस सामने खडे यक्ति को अक म लेकर समूचा भीतर डुबका लू एसा जी चाहा समय की अनतता मुझ पर स बीत गई (पृ० १२८)

प्रतीकाथ

लहरो के रूप म सागर का उद्वेलन जय और इला की ही मानसिक स्थिति का प्रतीक है। जसे मानस म अनत कामनाए लहरायें और अपनी विफलता म पछाड खाकर पीछे लौट जाय। आख स जसे परस हो पा रही थी मे ऐद्रियताजय सुखानुभूति है। अपारता म सागर की अनन्तता एव विस्तीर्णता का भाव निहित है ठीक उसी प्रकार जय अनुभव कर रहे थे कि जीवन भी कितना विराट है और इस विराटता मे ही उनकी चेतना अटक गई थी। समूचा भीतर डुबका लू में अभेद की स्थिति का यौन प्रतीक स्पष्ट ही है। इस प्रकार की मानसिक जडता म न जाने कितना समय बीत गया। कुछ क्षण एसे होते हैं जबकि आदमी देश और काल की सीमा स परे जा लगता है। यहा भी परामानसिक स्थिति का सकेत है।

१२ प्रतीक

आप नहीं है ता उनके पास फिर कुछ बारूद ही नही है (मानना होगा कि वह चतुर और चालाक है) कहा तब खेल बच्चो का रह जाता है। बाल हठ पर स्वय हठ ठानकर उसे हम महत्त्व ही देते हैं। (पृ० १६५)

प्रतीकाथ

शब्द विस्फोटक तत्व का प्रतीक है। इस विस्फोटक स्थिति का व्यक्त रूप ही नाथ है। यदि नाथ को विरोधी पक्ष से हटा दिया जाए तो उनका विरोध बाल क्रीडा के समान अगम्भीर एवं अप्रभावी रह जाएगा।

बालहठ विरोधी पक्ष की चंचल एवं तर्कहीन प्रवृत्ति का परिचायक है। यदि इसकी प्रतिक्रिया में कोई सत्ताधारी वर्ग स्वयं हठ से चिपक जाए तो यह अप्रत्यक्ष रूप से बालक्रीडा-सदृश विरोधी पक्ष को स्वीकारने के समान ही होगा।

१३ प्रतीक

रात गहरा रही है। जय का ध्यान आता है, वह सोये होंगे या जगे भी हो सकते हैं। कितनों की कितनी भावनाओं के वह केन्द्र हैं। मुक्ष-तुक्ष के समान सामान्य हो सकता तो क्या दुर्भाग्य से बच न आता? पर हो सकता है कि राज्य को ही उसने अपने लिए सूली माना और इसीलिए स्वीकारा हो। सचमुच क्या जीवन त्रास ही नहीं है? प्रभु ईसा को कीलों से सलीब पर ठोका गया। इस आसन की कीलें सोने की है तो क्या वह इसीलिए सलीब से ज्यादा या उससे कम है? (पृ० १६६)

प्रतीकाथ

बढ़ती हुई रात की गंभीरता के साथ बिलवर की अन्तश्चेतना भी वाचाल हो जाती है। वह कल्पना करते हैं कि इस समय जय निद्रावस्था में होंगे या जाग्रतावस्था में। जो कुछ भी हो, राष्ट्र के विशाल जन-समुदाय की भावनाओं के वे प्रतीक हैं। उन्हीं के खून पर राष्ट्र गिरता है और ऊपर चलता है। जय के लिए सत्ता का सिंहासन फूलों की सेज नहीं है बल्कि वह तो उनके लिए त्रासदायी सूली सिद्ध हो रहा है। सूली यहाँ भयंकर त्रास की प्रतीक है, जिसके संदर्भ में ईसा मसूर आदि की पीड़ा हमारे सामने उभर आती है। या इसमें एक असंगतत्व (एब्सर्डिटीज) भी है। सत्ता का सिंहासन स्वर्ण निर्मित होने के कारण मोहक तो है पर जो व्यक्ति उस पर बैठता है उसे तो वह काँटों की शय्या ही प्रतीत होता है। निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि सत्ता के सिंहासन पर जो भी बैठेगा, उसकी पीड़ा कम त्रासदायी न होगी (अन ईज़ी लाइज दी हैड दट वीयर्स दी क्राउन)।

१४ प्रतीक

सच ही आदमी पत्ते के मानिंद है। हवा की हर हिलोर उसे कँपा देती है और फिर प्रकाश की एक किरण उसे हुलसा भी जाती है। (पृ० १७३)

प्रतीकार्थ

आदमी का मन पत्ते के समान चपल है। जिस प्रकार हवा की एक लहर उसे कंपित करती है और प्रकाश की एक किरण उसे चमका जाती है उसी प्रकार लिज़ा भी पद-लाभ के प्रलोभन में और जय की कृपा-कोर को पाने के उल्लास में कुछ-की कुछ हो गई। निष्कर्ष यह निकला कि महत्वाकांक्षा की परिपूर्ति के प्रलोभन में आदमी कुछ-का-कुछ हो जाता है, तब उसके सिद्धान्त पिघल जाते हैं।

१५ प्रतीक

अब मैं वहां अकेला था। रात चान्दनी थी और आसमान तारों से ढका हुआ न था। कई मिनट हो गए जब जयवर्धन आए।

आते ही हाथों में लेकर मुझे तख्त पर बिठाया। आप पास खींचकर कुर्सी पर बैठे। बोले, इन तारों को जानते हो?

राजनीतिक आप से उस होते हैं। वे जताने को हैं, जानने को नहीं कितने अनन्त जगत् हैं जो मैं उनमें खो सकता। (पृ० १७७)

प्रतीकार्थ

जयवर्धन और बिलवर की मुलाकात तारों की छाया में हुई। दूधिया चांदनी सर्वत्र फैली थी। इस समय आकाश में कुछ ही तारे दृष्टिगोचर हो रहे थे। वस्तुतः यहां आसमान मन के आकाश का प्रतिनिधित्व करता है तारों से ढका न होना यह सूचित करता है कि मन समस्याओं से आक्रांत नहीं है बल्कि खुला है। स्वच्छ चांदनी मन की उज्ज्वलता की प्रतीक है। हाथों में लेकर तख्त पर बिठाना बिलवर और जयवर्धन की आत्मीयता को प्रकट करता है। जय का प्रश्न 'इन तारों को जानते हो?' इस बात का सूचक है कि वह प्रकृति के सौन्दर्य से अनभिज्ञ नहीं है बल्कि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करके उसके मन को प्रसन्नता होती है। उसका विचार है कि राजनीतिज्ञ वास्तविकताओं से इस कदर घिरे होते हैं कि वे प्रकृति की ओर ध्यान ही नहीं दे पाते जैसे वे सब समय कुछ जतलाने के लिए ही हों सृष्टि और प्रकृति को उन्हें जानना तो है ही नहीं। जय की कल्पना में अनन्त जगत् आते हैं और वह उनमें बड़ी साध के साथ खो रहना चाहता है किन्तु क्या खो सका?

१६ प्रतीक

आग उसके पास है सो अपनी अपनी हांडियां लेकर पहुंचेंगे कि दाल अपनी गला सकें। (पृ० १९८)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्ति में आचार्य की गरिमा को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनका इतना नैतिक महत्त्व है कि हर कोई उनका उपयोग करने के लिए ललचाता है। हाड़ियाँ स्वार्थ की प्रतीक हैं। आग आचार्य के नैतिक महत्त्व की ऊष्मा है। दाल का गला सकना अपने अपने स्वार्थ की परिपूर्ति है।

१७ प्रतीक

रात चांदनी थी और गरमी उसमें से जा चुकी थी। छत खुली थी और इस समय हवा हलकी चल निकली थी, मानो प्रश्न डालकर मैंने प्रवाह को छेड़ दिया। (पृ० १९८)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत प्रसंग में चांदनी के कारण गरमी का छूट जाना यह प्रकट करता है कि दिमाग की उष्णता जम चुक गई है और चांदनी का प्रभाव उसे उस पर क्रमशः बढ़ता जा रहा है। छत का खुला होना मन के खुले होने को प्रकट करता है। हल्की हवा मन की स्वाभाविक स्फूर्ति की प्रतीक कही जा सकती है। इस समय जय का मन प्रशान्त प्रवाह के समान स्वाभाविक गति से आगे बढ़ रहा है पर इला के साथ हो जाने के प्रश्न ने उस प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया।

१८ प्रतीक

यह क्या है? भवर भवर, भवर! क्या यही है जो सच है? पर शायद यह सतह है सच गहरे में है और वह और है थिरता वहां से है यह तो छाया है। याद करूं प्रणाम करूं उसको, जो कूटस्थ है, अचल है ध्रुव है। (पृ० २१८)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत पंक्तियों में भवर संसार की उलझन और मिथ्या तथ्य का प्रतीक है। गहरे में ही सत्य का निवास है, उसी की छाया भवर के रूप में पानी की सतह पर फूट रही है। अन्तिम पंक्ति में जय के प्रति बिलवर का श्रद्धा भाव ही प्रकट होता है क्योंकि जय उसे दृढ़ता और निश्चय के प्रतीक रूप में दिखाई देता है और समस्त स्रोतों का आदि स्रोत वही है।

१९ प्रतीक

प्रौढ़ वय पर जबकि जीवन का एक तरह ढलान आएगा, तब आम पकेगा

माकांक्षा के हाथ पतवार देने से नाव या चलती तो रही है पर वही हो है, बढ़ी नहीं है और अब भी मझधार में है जहां से किनारा नजर नहीं आता है निजा, प्रिय यहां सब-कुछ तो मिल नहीं सकता। इसमें चाह में अपने को छोड़ने से अन्त में टूटना ही पड़ता है—सुन लो, नाथ को तोड़ने में जल्दी न करना। (पृ० २५८)

प्रतीकार्थ

युवावस्था में व्यक्ति आकांक्षाओं के बल पर चलता है। आकांक्षा से महत्त्वाकांक्षा बन जाती है और वह जीवन के शिखर पर पहुंच जाता है किन्तु जब प्रौढ़ावस्था का आरंभ होता है तो जीवन की शक्तियां ढलने लगती हैं तब ही वास्तविकता का बोध होता है। तभी यह ज्ञात होता है कि जीवन-नौका कामनाओं की पतवार से गतिशील तो रही है किन्तु एक लघु दायरे में सीमित होने के कारण वह आगे नहीं बढ़ पाई है। यह भी बोध होता है कि जीवन-नौका मझधार में है जहां से किनारा नहीं सूझता। किनारा लक्ष्य का प्रतीक है। जीवन नौका का आगे न बढ़ पाना इस बात का सूचक है कि कामनाओं की उपलब्धि संकीर्ण है। इस जीवन में आदमी जो कुछ चाहता है वह सब मिल नहीं पाता परिणाम होता है एक प्रकार का टूटन। इसी आधार पर विलबर लिजा को सलाह देता है कि वह नाथ से संबंध तोड़ने में आवेग से काम न ले अपितु विवेक का परिचय दे। इस व्यथता और अनुपलब्धि की प्रतीक है। नाथ से तोड़ना वैवाहिक विच्छेद का प्रतीक है।

२० प्रतीक

सच ही मैं हार रहा था। नक्षत्र के लोक से तत्काल उतार जाकर स्पष्ट था कि अब वह यहाँ मेरे साथ बहुत परिचित अनुभव नहीं कर रहे हैं। (पृ० ३०१)

प्रतीकार्थ

जय के मन में जो बात अटकी है उस निवेदन में विलबर कृतकार्य न हो सका। प्रकृति के नक्षत्र-लोक में जितना तादात्म्य हम एक-दूसरे से रख पा रहे थे उतना अब संभव प्रतीत नहीं होता। नक्षत्र-लोक प्रकृति-सौंदर्य का एक प्रतीक है। इससे सोचने और विचारने की एक सहज स्फूर्ति प्राप्त होती है।

२१ प्रतीक

अब वह किंचित मुस्कराये जैसे हिमालय गला। (पृ० ३०६)

प्रतीकार्थ

जय और विलवर के बीच कभी-कभी औपचारिक मुलाकातें भी होती हैं। ऐसे समय जय समय का बहुत ध्यान रखते हैं और उनकी मुख मुद्रा हिमालय जैसी जमी हुई हो जाती है। विल्वर जब चलने लगे तो वे कुछ मुस्कराये, मानो *हिमालय रूपी मानस की कुछ बर्फ गली हो।* हिमालय का गलना जड़ता के द्रवित होने का प्रतीक है और इस प्रकार चेतना के उल्लास को भी ध्वनित करता है।

२२ प्रतीक

लेकिन घटनाओं में से उस रेखा को पाने का मेरा व्यसन है, जो विधि रेखा समझी जाए। शतरंज की बाजी की भाँति राजनीति के पट को मैं अपने समक्ष रखता हूँ। आपकी उपस्थिति उस बाज़ी के नक्शे को मेरे सामने गड़बड़ में डाल देती है (पृ० ३५७)

प्रतीकार्थ

इन्द्रमोहन का कूटनीतिक हेरफेर में भी बड़ा हाथ है। उस विलवर की भारत में उपस्थिति सह्य नहीं है। वह उसे यहाँ से प्रस्थान करने का संकेत देता है। इन्द्र एक विलक्षण एवं उद्भट व्यक्ति है जो कि घटनाओं के अन्तराल में से उनके मर्म बिंदु को पकड़ सकता है। विधि रेखा में भविष्यत् घटनाओं की निर्णायकता निहित है। जो दिलचस्पी किसी व्यक्ति की शतरंज की बाज़ी में हो सकती है, वही आकर्षण इन्द्र को राजनीति में खींचता है और वह समझता है कि विलवर की उपस्थिति बाज़ी के नक्शे को गड़बड़ा देती है। राजनीति का पट भी शतरंज की बाज़ी की ही तरह जटिल एवं रहस्यमय है।

२३ प्रतीक

कहने के स्वर पर मैं व्यग्र हुआ, बोला, कृपया अपनी ओर से प्रश्न को न देखिए आपके हटने से क्या स्थिति में एक शून्य न हो जाएगा? और फिर सब हल्के तत्त्वों के आ घुमड़ने से जो एक आवर्त की सृष्टि होगी उसकी कल्पना आपको है? उसी अनिष्ट को आप निमन्त्रण देने चले हैं। (पृ० ३७२)

प्रतीकार्थ

स्थिति राजनीतिक स्थिति का बोध कराती है। 'हल्के तत्त्व' अगंभीर एवं अनुत्तरदायी दलों तथा व्यक्तियों के लिए आया है। 'आ घुमड़ने' से तात्पर्य हावी होने में है। आवर्त अस्थायी एवं जटिल स्थिति का परिचायक है।

विलवर का मत है कि जय के राजनीतिक मच से हटने का मतलब है अराजकता एव अव्यवस्था। इसीलिए वह उसे सावधान किया चाहता है।

२४ प्रतीक :

जय ने कहा, लेकिन यह सहज नहीं होने वाला है इला पर बहुत दबाव है और मैं नही जानता कि क्या होगा। नई शत्रुताएँ और नई मित्रताएँ उदय मे आएँगी और कुछ देर इस नई शून्यता को भरने के लिए एक तुमुल झझावात सा घहरे, तो विस्मय नहीं है (पृ० ३८०)

प्रतीकार्थ

जय सत्ता का परित्याग करना चाहता है, किंतु यह क्या चाहने मात्र से हो सकेगा। स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति म कुछ व्यक्ति विरोध करेंगे और कुछ समर्थन। जय के सत्ता-परित्याग से एक राजनीतिक शून्यता आएगी और सत्ता को अधिकृत करने के लिए विभिन्न दलो एव व्यक्तियो के बीच एक अच्छी-खासी छीना झपटी चलेगी। इस प्रकार एक तुमुल झझावात के ठहरने मे जय के सत्ता-त्याग करने पर जो विकट परिस्थिति उत्पन्न होगी, उसका आभास दिया गया है।

२५ प्रतीक

अर्जुन ने पीछे मुडना चाहा था कृष्ण न उसे सामने बढाया यह काम आप पर है और जय निश्चय ही आपके लिए अर्जुन के समान है। देखता हू युद्ध समक्ष है, और शान्ति श्मशान की भी हो सकती है लेकिन वह युद्ध से बेहतर चीज होगी। एक जगह पर कृष्ण ने समझौते की सभावना छोड दी और युद्ध मागा गया तो युद्ध का दान देने म योगी कृष्ण ने अपनी ओर स कृपणता नहीं दिखायी। (पृ० ३९६)

प्रतीकार्थ

अर्जुन पलायनशीलता का प्रतीक है। कृष्ण गीता के उपदेशक के रूप मे उसे कर्त्तव्य का भान कराते हैं। स्वामी चिदानन्द का विचार है कि जय की स्थिति अर्जुन के समान है। ऐसी स्थिति म आचार्य ही उसे कर्त्तव्य पथ पर खींच सकते हैं। कृष्ण ने भरसक युद्ध को टालने का प्रयत्न किया किंतु जब वह सिर पर ही आ पडा तो उन्होंने बडी तत्परता से प्रत्युत्तर भी दिया। उन्होंने अर्जुन को उपदेश दिया था कि यह अवसर दीनता और पलायन का नहीं है।

ऐसी ही सीख यदि आचार्य जय के प्रति उन्मुख करें, तो समय के तकाज़े को पूरा किया जा सकेगा। स्वामी श्मशान को शान्ति को किसी भी रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, वे आसन्न युद्ध का सामना पूरी तत्परता के साथ करना चाहते हैं।

२६ प्रतीक

सुनो, राज पर होकर जय विहग-से मुक्त न रहेंगे, प्राण उनमें उसी मुक्ति को छटपटाता है (पृ० ४१७)

प्रतीकार्थ

इला के विचार में जय के लिए राज्य से स्वाधीन होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि तभी उनका विचार विहग कल्पना के गगन में उन्मुक्त रूप से विचरण कर सकेगा। उनकी अंतश्चेतना इसी सत्ता-मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है। परिन्दे के लिए आजादी बहुत प्यारी है, उसे सोने का पिंजरा भारी पड़ता है।

२७ प्रतीक

जो हो, इस समय सब शान्त है। घोर निस्तब्धता है इस स्तब्ध-अथाह के बीच घटनाएँ क्या हैं विचित्र लगता है किंतु उन्हीं में हम व्यस्त हैं। क्या उपलब्धि अपने भीतर इस अथाह और निस्तब्ध की अनुभूति ही है? महाशून्य में अपनी परम शून्यता की उपलब्धि? (पृ० ४१६)

प्रतीकार्थ

बिलवर को आश्चर्य हुआ कि इन्द्र के आने पर उसके कमरे में प्रकाश होते हुए भी उससे भेंट क्यों न हो पाई। सर्वत्र निस्तब्धता का राज्य है और बिलवर का मन उसी अथाह निस्तब्धता में डूबा हुआ कुछ विचार सूत्र पकड़ना चाहता है। बिलवर के मन में प्रश्न उठता है कि इस अथाह निस्तब्धता की अनुभूति ही क्या हमारे जीवन की चरम उपलब्धि है? स्वयं ही वह इस प्रश्न का उत्तर दे लेता है कि जगत् के इस विराट महाशून्य में व्यक्ति एक नगण्य बिंदु है और शून्यता की उपलब्धि के अतिरिक्त उसे कुछ प्राप्त हो भी नहीं सकता।

२८ प्रतीक

इन्द्र, साफ अभी कुछ भी नहीं है लगता है बीच में पड़ना और इस दल-दल को साफ करना होगा। (पृ० ४३१)

प्रतीकार्थ

जयवर्धन के सत्ता त्याग से राजनीतिक मंच पर घटनाएं बड़ी तीव्रता से घटने लगीं। लिवर उनके सार तत्त्व को इन्द्र से ग्रहण करना चाहता है किन्तु इन्द्र स्वयं अपने निर्माण में अधिक स्पष्ट नहीं है। वह चाहता था कि इस स्थिति में वह हस्तक्षेप करे और जो कचरा मंच पर आ गया है उसे साफ कर दे। दलदल के रूप में सर्वदलीय सरकार की कल्पना है जिसे इन्द्र 'चूं-चूं का मुरब्बा' समझता है।

उपन्यास मुक्तिबोध

१ प्रतीक

कहकर वह साइड रूम में ही चली गई। मुस्कराती गई थी और मैं उसका अर्थ नहीं पा रहा था। नीला कुछ अलग ही है। मानो उसके लिए कहीं टोक नहीं है। वह दमन में विश्वास नहीं करती दमन में भी नहीं करती। जीवन जैसे उसके लिए लहराता तत्त्व है। साथ वह भी लहराए रहना चाहती है। कुलीनता की उसमें कमी नहीं है न शिष्टाचार की। किन्तु उसके साथ यह सब कृत्रिम नहीं रहता अनायास हो जाता है। उसकी अकृत्रिमता का सामाजिक सद्व्यवहार ढक नहीं पाता। जीवन में तरती-सी चलती है और कहीं उसे निषेध ज्ञान नहीं होता। मानो कर्तव्य उसके लिए वह है जो उससे होता है। किसी चाहिए का दबाव वह साथ नहीं लेती। मानो जो है वही उसे चाहिए। (पृ० ५८)

प्रतीकार्थ

नीलिमा स्वतन्त्र व्यक्तित्व की नारी है उसे सभी प्रकार के बंधन अप्रिय हैं। उसके कार्य और व्यवहार में गत्यात्मकता है। लहराता तत्त्व गतिशीलता का प्रतीक है। जीवन और उसके व्यवहार में एक लय है। कुलीनता और शिष्टाचार भी स्वाभाविक रूप में ही उसमें उभरता है। अकृत्रिमता उसके स्वभाव का सर्वोपरि गुण है। नीलिमा के तरती-सी चलने में प्रवाहशीलता का प्रतीक निहित है। जो कुछ उससे हो जाय, वही उसका श्रेय और प्रेय है। अन्य की आरोपित स्थिति उसको कतई स्वीकार नहीं। चाहिए आदर्श के आरोपण का प्रतीक है।

२ प्रतीक

देखो, तीन वर्ष बाद हम मिल रहे हैं। उस पर तुम चाहते हो बात फिरो

धीरे हो। मुझसे वह नहीं होगा। आप कीजिय विश्वास नियम म और सयम म मुझे आकाश पसद है जो खुला ह दिशाए पसद हैं जो बुलाती हैं, चारों तरफ से किसी तरफ से टोकती नहीं। मैं नहीं रहना चाहती कमरा म, दडवा मे आदर्शों मे। मैं अनन्त म रहना चाहती हू। पर छाडिय शब्द और भाषा बडी ओछी पडती है—चल रह हैं न ? (पृ० ५४ ६०)

प्रतीकाथ

मुक्त आकाश के नीचे ही मुक्त व्यवहार सभव है। आकाश स्वाधीनता एव स्वच्छन्दता का प्रतीक है जिसम नियम और सयम क लिए विशेष अवकाश नहीं है। दिशाओं मे एक आवाहन है जो अप्रतिरोध्य है। कमरे मर्यादाओं म बाधते हैं। कमरे और दडवे आदश के बधना के प्रतीक हैं। जिसे अनन्त म विहार करना हो उसके लिए ये नितान्त निरथक हैं। अनन्त आकाश की निस्सीमता और स्वच्छदता का प्रतीक है। शब्द और भाषा का एक सीमा है, इनके द्वारा मन क सभी भावा की अभिव्यक्ति सभव नहीं। ऐसी स्थिति म भाषा की व्यवस्था बडी सकुचित प्रतीत होने लगती है और मन शून्य म भटकने लगता है।

३ प्रतीक

मैं किस तरह धीरे धीरे परिवार क क्षेत्र के लिए प्रभावहीन बनता जा रहा हू यह अनुभव मेरे भीतर बिंधता जा रहा था। इस पर मानो मैंने घर से खुलकर बाहर ही रहना चाहा अनुभव हुआ कि घर और बाहर सच ही दो हैं और पुरुष का क्षेत्र बाहर है। वही उसके लिए आवाहन है वही आश्वासन। जो घर म अपने को बधन म पाता हो, बाहर वही खुल जाता है। तब जब मुझे याद हुआ कि पारिवारिक भी कैसे सामाजिक म बाधा रूप हो सकता है। जिसे सावजनीन बनना हो उसे घर-बाहर के सदभ से सचमुच मुक्त ही होना होगा।

मैं कहा हू ? मालूम होता है कहा भी नहीं हूँ। अनिश्चय म हू और अधर म हू। पक्षी उडते हैं वृक्ष जडें डालकर अपनी एक जगह खडे रहते हैं। आदमी घर बनाता है इधर-उधर भी चलता फिरता है। घोंसले की तरह उसका घर एक नहीं हो सकता। मालूम होता है कि उत्कट जीवन उतना ही गतिमय होगा। स्थितिनिष्ठ शायद उस जकड म जड पडता जाएगा। लगता है स्थिति को राजश्री के निर्णय पर छोड देना चाहिए और अपने लिए मुझे गति का ही ध्यान रखना चाहिए। विचार की इस सगति म मुझे फिर नीला

का ध्यान आया है और उसके स्वभाव के प्रति जैसे एक स्पृहा-सी मन में उत्पन्न हुई। मानो वह है जो अपनी नहीं है। सदा जीवन्त है और लहराती है। (पृ० ८०)

प्रतीकार्थ

पारिवारिक व्यस्ततायें में सहाय अपना प्रभाव खोते जा रहे हैं। इससे उनके मन को पीड़ा होती है। तब वे बाहर के जीवन में अधिक रस लेने लगे। वे अनुभव करते हैं कि कुछ व्यक्ति घर के लिए बने होते हैं और कुछ का क्षेत्र सामाजिक राष्ट्रीय जीवन होता है। ऐसे ही जीवन के प्रति वे एक चुनौती अनुभव करते हैं। एक व्यक्ति के लिए घर बन्दीखाना होता है तो दूसरे के लिए बाह्य जीवन उन्मुक्त आकाश की निस्सीमता लिए हुए होता है। ऐसी मनःस्थिति में सहाय अनुभव करते हैं कि परिवार सामाजिक रूप विकास में बाधा रूप है। बंधन बन्दीखाने का प्रतीक है, आकाश चुनौती का प्रतीक है और आह्वान मनस्तुष्टि का। जिस व्यक्ति को सार्वजनिक जीवन का अंग बनना है, उसे घर बाहर की सीमा में अपने आपको मुक्त करना होगा। सार्वजनीन सामाजिकता का प्रतीक है और घर-बाहर तंग दायरे का।

सहाय कल्पना के गगन में उड़ रहे हैं पक्षियों की भांति। उन्हें विचार होता है कि पक्षी कितने उन्मुक्त हैं, इनकी तुलना में वृक्ष कितने स्थिर और जड़ हैं। पक्षी उन्मुक्त जीवन के प्रतीक हैं, वृक्ष जड़ जीवन के। आत्मा की स्थिति इन दोनों में भिन्न है। वह घर में भी रहता है और इधर उधर गतिशील भी। घोंसला जीवन के तंग दायरे का प्रतीक है। मानवीय व्यक्तित्व के विकास के लिए यह तंग दायरा अपर्याप्त है। इसलिए वह कई घर बनाने के लिए आजाद है। जो जितना गतिशील होगा उतने ही उसके घर और पड़ाव होंगे। जिस व्यक्ति का जीवन एक ही स्थान पर टिका हुआ है, वह प्रगति नहीं कर सकता। स्थितिनिष्ठता जड़ता की प्रतीक है। पारिवारिक जीवन के दायित्व को सहाय राजश्री के लिए छोड़ देते हैं और स्वयं निरंतर गतिशील रहना चाहते हैं। नीलिमा का जीवन गतिशीलता का पर्याय है, यही कारण है कि गतिशीलता का ध्यान आने पर सहाय के मन में नीलिमा का चित्र उभर आया। उसके स्वभाव में जो अनिरुद्ध गति है उसके लिए उनका मन भी ललक उठा। नीलिमा कहीं रुक नहीं सकती। जीवन की ऊष्मा और ताजगी से वह इतनी भरपूर है कि उसके लिए लहरीलापन ही एक विशेषण बन सकता है। लहरीलापन जीवन की गतिशीलता का प्रतीक है और इसी में नीलिमा ओतप्रोत है।

४ प्रतीक

मैंने गहरी सास ली । जस काला बादल सिर स कुछ हटा । नीलिमा पास आयी, बिना बाले उसने मेरे हाथ पर हाथ रखा और धीरे धार उस सहलाती रही । दोनो के पास एक-दूसरे मे पूछने को बहुत कुछ था लेकिन जसे कुछ पूछने की आवश्यकता न थी । तमारा न क्या उस याद रखन का कहा था ? कहा होगा कुछ । मुझे कुवर ने एकान्त म क्या कहा था ? वा भी कहा होगा कुछ । बाहर होना हुआ सब कुछ अन्दर एक दबाव या उभार छोड जाता है । बस वही फल रहता है, शप ता आता और बीत जाता है । वह बाहरी घट नाओ से प्राप्त हुई आतरिक निष्पत्ति सहानुभूति क तारा स अपने आप ही गहरी सवदना म उपलब्ध हा जाता है । शायद पूछने-बताने की आवश्यकता नही रहती ।

ऐसे हम दर तक बठ रह । नीलिमा की हथली मेरे हाथ का हौल हौल सहलाती रही और मैं साचता रहा कि नीलिमा मेरी काई नहा है मैं उसका काई नही हू । लकिन यह हाथ का स्पश जाने एक दूसर का कितनी सा त्वना, कितना आश्वासन पहुचा रहा है । बाहर का हाता जाता हुआ तथ्यात्मक या घटनात्मक सब-कुछ अन्त म जस अलग ही छूट जाता है सार रूप म छाड जाता है कुछ वह जा मनो वेदना का धुलाता और स्वय उसम घुलता रहता है । (पृ० १४३)

प्रतीकार्थ

सहाय अनुभव करत ह कि उनके जीवन पर स अमगल की छाया हट रही है । काला बादल अमगल का ही प्रतीक है । हाथ का सहलाना परस्पर प्रणय का विनिमय ह । इसम एक प्रकार की ऐन्द्रिकता है । प्रणय मूकता म से ही रस ग्रहण करता है । घटनाए आई गई हा जाती ह और उनक माध्यम स दो व्यक्ति एक-दूसरे के निकट आते हैं और सवदना के सूत्र म बध जाते है ।

हाथ के हौल हौल सहलाने से सहाय तुरीयावस्था म पहुँच जाते है एक प्रकार की आत्म विस्मृति उन्ह घेर लेती है । फिर भी इसस उन्ह गहरी आत्म तुष्टि अनुभव हाती है । घटनाएँ और तथ्य ऊपर ऊपर रह जाते हैं पर उनस सार रूप म जो कुछ मिलता है वह मनोवेदना का काटता है । हाथ का स्पश, सहानुभूति एव प्रणय का प्रतीक है । बहुत सी बातें एसी हाती है जा बिना कहे ही समझ ली जाती हैं । घुलाना एक प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया ह जो मानस प्रदेश मे घटित होती है ।

उपन्यास अनन्तर

१ मैं घबरा गया। यह मकान उसकी रचना रंग है और मेरे मन में रहा है कि सम्पत्ति खड़ी करना अपनी कब्र चिनना है। चतुर्थ बंधता नहीं मकान बांधना मानो उसे बांध लेना है। पत्नी की मंशा को वहीं टेर सुनकर मैंने मकल्पपूर्वक मौन साध लिया। पत्नी ने भी शायद मन-ही-मन शपथ खायी कि पैसे में आग लगे जो आग कभी मुंह खोले। लुटाओ चाहे मवाओ

नाम नहीं आई। शायद उम्र भी नहीं आई, और बाद मुस्कराता चला गया। जरूर जीवन का वह ढंग है जहां पैसे की हस्ती नहीं रहती, वह सच्चा है। पर पत्नी और परिवार ज्ञान हो पता सब कुछ हो जाता है। इस बासठ के पार की उम्र तक मुझसे यह पैसे का ममता कम नहीं है। कम कट सकता है सभ्यता और सफलता के ममार का सारा दारोमदार जो तक उस पर है। इसमें मारो का सार शास्त्र बन उठा है अर्थशास्त्र इसी तरह की उधड़बुन में जान कब मैं समीक्षा से सहानुभूति पर आ लगा। बयालीस बरस हुए एक मुग्धा किशोरी पत्नी के रूप में मुझसे आ मिली थी। उस संग-सहारे सचमुच क्या वे कापनमय नव दिन स्वर्गोपम ही नहीं बन आये थे पर स्वर्ग वह शनैः-शनैः फिर मटमैली धरती बनता चला गया। मुग्धा वयस्का होती गई और गमामा में उतरकर मैं स्वयं नित निमित्त के काम काज में खपता गया। सच कम बनाने के दिन थे वे। (पृ० १२-१४)

प्रतीकार्थ

प्रमाद और रामेश्वरी का मनभेद मकान का लेकर है। दुखती रग असह्य व्यथा का प्रतीक है। कब्र चिनना समाप्ति या मृत्यु का प्रतीक है। चतुर्थ आश्रम तत्व का द्योतक है। शायद का मौन और अन्त में एकमत होना दाम्पत्य का निवाह है।

बाद के मुस्कराते रहने में पति-पत्नी के मतभेद पर व्यंग्य है और एक आवाहन भी है। पत्नी परिवार की मेरुदण्ड है और पैसा मूलाधार। अर्थशास्त्र का प्रामुख्य आज के युग की सबसे बड़ी घटना है। समीक्षा से सहानुभूति पर आ लगना चिन्तन में हार्दिकता पर आ सकना है। कापल में नव दिन में स्निग्धता भी है और नावीन्य भी। अतीत का मधु चितन इसका पृष्ठाधार है। स्वर्ग कल्पना की कमनीयता और मुग्धा का पक्ष है उसी का मटमैली धरती में परिणत होना कल्पना से वास्तविकता के धरातल पर उतरना है। यौवन का स्थान प्रौढ़ावस्था ले लेती है और तब रोमास की भूमि पैरों के नीचे से खिसकने लगती है। कल्पना के गगन में उड़ने वाला प्राणी वास्तविकता के

धरातल पर आ जाता है और धरती के काटो से लहूलुहान हो जाता है ।

२ प्रतीक

लेकिन जिन्दगी का हिसाब मेरा साफ नहीं रहा । आगे उसका व्यापार चलाने के लिए सोचता हूँ कि एक बार बेलेन्स शीट बनाकर देख लेना चाहिए । नही तो दिवाला पिट जायगा । उसके लिए कुछ रोज जीने का काम धाम स्थगित रहे तो हर्ज नही है । जीने के साथ ही सब स्पृहाओ को छोडकर सिर्फ रहा भर जाय । (पृ० ६०)

प्रतीकार्थ

जिन्दगी का हिसाब लाभ हानि की ओर सकेत करता है । बेलेन्स शीट इसी लाभ हानि का जायजा है । दिवाला नुकसान की चरम सीमा है और व्यापार की समाप्ति का द्योतक । स्पृहाओ से तात्पर्य जीवन की कामनाओ से है जो कभी पीछा नही छोडती । प्रमाद इन्ही से विरत होकर जिया चाहते हैं ।

३ प्रतीक

पैसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त है । वह है क्योंकि उस पर सरकारी मुहर है । मोहर की वजह से कोरा कागज भी कितनी कीमत का हो जाता है और सरकार वह जो प्रशासन के बल पर समाज को अनुशासन में रखती है । शासन की इस सस्था मे समाज की स्थिति बनती है । मुझे लगता है कि इस सुविधा के लिए शासन का होना और उसके अधीन शासित का होना अनिवार्य है । यो तो ससद है धारा-सभाएँ हैं जनतत्र को लोकतत्र की दिशा मे उठाते जाने के श्रेय यत्न है बीच-बीच मे इसके लिए क्रान्तिया भी होती हैं और शासन द्वारा पक्तिबद्ध होकर मानव समूह रह रहकर आपस मे युद्ध लड लिया करते हैं । नही तो बताइये लोगों की बेहताशा बढती फूलती सख्या कैसे काबू मे आये ? शासन से इसकी व्यवस्था हो जाती है । बिना ऊपर सरकार हुए सोचिये कि प्रजा मे से फौजें कैसे बनें ? फौजें हो भी तो लडाई कैसे छिडे ? लडाई की तैयारी न हो तो सुरक्षा कैसे सुरक्षित रहे ? इस तरह सरकार बहुत ही साधक सस्था है । उस सहारे युद्ध बन और ठन पाते हैं । —सरकारो के अलग अलग सिक्को मे ठडा युद्ध तो निरन्तर ही चलता रहता है । सिर धड उसमे सीधे कटते नही दीखते तो यह नहीं कि आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा का यह जग कम विकट होता है । अस्त्र युद्ध की तो अवधि भी है । यह अर्थ-युद्ध तो सतत आवश्यक है कारण उससे पैसे के चलन मे तेजी आती है । विविध राष्ट्र-शरीरो

का रक्त-प्रवाह सभी दुःख-सुख झेलकर होता है। यह देखता हूँ और मन का मैं पूरा भार देता हूँ—पर राष्ट्र-समाज का कभी यदि मानव-समाज बनना हुआ तो—? तो उसके लिए युद्ध से पार पाना ही होगा। उस शिखर के लिए युद्ध को प्रायः पूरा पछाड़ना छोड़ना होगा। शक्ति-साधना से शान्ति पर उतरना हो आत्म-साधना। पर सपना है उसमें भी कुछ सार है। (पृ० १०१ १०२)

प्रतीकवाद

दुनिया के सारे काम धाम धन से ही सम्पन्न होते हैं यदि समाज में गति-शीलता कायम रखता है। धन दरअसल समाज की गति का प्रवाह है। वह कि वही तो और कागजों पर मोहर लगाकर उन्हें चलता करता है और इस प्रकार उनकी कीमत बन जाती है। इन सारे आदान प्रदान के लिए शासक और शासित का होना भी आवश्यक बनी है। संसद् और धारासभाएँ मानव सत्ता की प्रतीक हैं इन्हीं के द्वारा राजतन्त्र को लोकतन्त्र का रूप दिया जा सका है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी क्रान्ति भी आवश्यक हो उठती है। सरकार द्वारा कभी-कभी युद्ध में भाग लेना अनिवार्य हो उठता है तब वह शक्ति के प्रसार के रूप में आदमी को मार देती है इसी से जन-संख्या पर नियन्त्रण हो पाता है। सैनिक प्रजा में से ही आते हैं और इन्हीं के द्वारा लड़ाई लड़ी जाती है। यदि ऐसा न हो तो अलग अलग राष्ट्रों की सुरक्षा कैसे सम्पन्न हो? इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि सरकार बहुत ही उपयोगी संस्था है। धन के जोर पर सबल राष्ट्रों के बीच शीतयुद्ध तो निरन्तर चलता ही रहता है। यह ठीक है कि इस शीत-युद्ध में आदमी को मौत के घाट नहीं उतरना पड़ता पर आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा तो आदमी को कभी भी चैन नहीं लेने देती। इस अर्थ-युद्ध के कारण ही राष्ट्रों के मध्य आर्थिक विनिमय तीव्रता से सम्पन्न होता है। राष्ट्रों के संकीर्ण धरातल से ऊपर उठकर यदि मानव-समाज को एक होना है तो इस शीत-युद्ध से मुक्ति चाहनी होगी। जो पूँजीपति हैं उन्हें अर्थ-संग्रह छोड़ना होगा। इस सारे अर्थ चक्र और परस्पर प्रतिस्पर्द्धा में सब निरर्थक हो। हो ऐसा भी नहीं है। हो सकता है कि संसार की प्रगति के लिए यह भी किसी रूप में अनिवार्य हो।

उपर्युक्त उद्धरण में जैनेन्द्र ने विश्व की मूलग्राही चेतना को पकड़ने की चेष्टा की है और अनेक प्रतीकों के सहारे अपनी बात को अर्थवत्ता प्रदान की है। संसद्, धारा-सभा, छत्रतन्त्र लोकतन्त्र आदि सभी तो मानवीय सत्ता के प्रतीक हैं और इन्हीं के माध्यम से विश्व प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

४ प्रतीक

चारु धमपत्नी है और मैं पति पत्नी का बहुत ऊचा स्थान देती हू। द्रौपदी पाचा पाडवो की धमपत्नी हो चुकी है, वह और ऊची रही हागी। राधा पत्नी थी ही नही, कृष्ण की धमपत्निया के समुदाय स बाहर थी। पत्निया के लिए श्रीकृष्ण पुरुष रहे होंगे। राधा के लिए साक्षात् विराट परमेश्वर अनन्त लीलामय। इसलिए राधा द्रौपदी से भी ऊची हो जाती है। छोडिये, मैं क्या बक रही हूँ आप हँसते हागे। लेकिन मेरे लिए हँसने की बात नही है, तिल तिल जलने की बात हो गई है। होटल के एक ही कमरे म आदित्य के साथ हूँ। वह मुझे चाहते हैं। ऐसी चाह मे कि जिसम काई अपन का निछावर कर आये, ईश्वर बसता है। मैं परम कृतज्ञता और मुक्ति से उस कामना के प्रति नमन करती हूँ लेकिन पत्नी स मैं धम की बन गई हूँ इसलिए पुरुष का दे सकू, ऐसा मेरे पास बचता ही क्या है?—नही जानती कब तक यह यज्ञ चलेगा—क्या कितना किसका उसमे स्वाहा होगा। लेकिन मुझे आशा है कि चारु का सौभाग्य सम्पूर्ण बनेगा और उसकी धरोहर उसे अक्षुण्ण प्राप्त होगी। (पृ० ११८ १६)

अपरा के मन म सती पत्नी के प्रति बहुत ही गौरव गरिमा का स्थान है। भारतीय इतिहास म द्रौपदी और राधा भिन्न व्यक्तित्व वाली नारियाँ रही हैं द्रौपदी ने पाचा पाण्डवा की धमपत्नी बनकर एक विलक्षण आदश की स्थापना की थी। इस द्रौपदी के प्रति अपरा के मन म एक अजीब सभ्रम और व्यग है। हमारे धम ग्रन्थो म राधा का जिस प्रकार वरणन मिलता है उसके आधार पर उस पत्नीत्व की परिधि म नही लिया जा सकता वह प्रेमिका की प्रतीक कही जा सकती है। राधा के लिए कृष्ण साक्षात् विराट परमेश्वर थे जो अपनी अनन्त लीलाओ मे उस रिझाते थे। यो राधा का दर्जा द्रौपदी से भी ऊचा ठहरता है। इन उदाहरणो से अपरा यही सिद्ध किया चाहती है कि सकुचित पत्नीत्व की परिधि स बाहर भी नारी का अपना स्थान हा सकता है। अपरा के मन मे आदित्य की चाह के लिए सम्मान की भावना है लेकिन चूकि उसने अपना सपूरण जीवन धम के प्रति समर्पित कर लिया है इसलिए पुरुष को दे सकने लायक उसक पास क्या बच रहा है? इस प्रकार अपरा का जीवन आत्माहुति का एक विराट यज्ञ है जिसमें उस अपना सब-कुछ स्वाहा करना होगा। उस पूरण विश्वास है कि आदित्य स उसका जा कुछ भी सम्बन्ध है उससे चारु के दाम्पत्य जीवन को कोई आच न आयगी। उसका पति अपने सम्पूरण रूप मे उसे पुन प्राप्त होगा।

द्रौपदी और राधा नारी-जीवन के नये साँचे हैं। मीरा का उदाहरण भी

जैनेन्द्र ने इसी रूप में सुनीता में उपस्थित किया है। इनसे वे यही सिद्ध किया चाहते हैं कि परकीयत्व ही सब-कुछ रहा है, उससे परे भी नारी-जीवन की गरिमा और अस्तित्व हो सकते हैं। यों द्रौपदी, राधा और मीरा नारी जीवन के नये प्रतीक कहे जा सकते हैं।

५ प्रतीक

दादा, बाबूजी दुनिया बड़ी तेजी से नई हो रही है। उसके नये मूल्य होंगे। कमाई धमाई वहाँ कोई नहीं पूछेगा। मैं समझना चाहता हूँ कि किस लिए मैं जी रहा हूँ? परिवार के जुए के चक्कर के लिए? हिन्दुस्तान में कुनबा एक बालू होता है। सबको उसमें जुत और पिसपाता रहे। ऐसे क्या फिर नई दुनिया लाने के लिए वह बचा रह सकता है? मैंने इण्टर साइन्स से किया। आपने चाहा और अब एम० कॉम० हूँ। पर मैं बहुत विज्ञान को समझना चाहता हूँ—फिर इन्सान और समाज के विज्ञान को भी। आगामी इतिहास को लाने में लगना चाहता हूँ।

आश्चर्य कि मैं सुनता रहा। कहने को क्या था! मैंने देख लिया नई दुनिया का इन्हें लाने देना है और स्वयं अपने को चुपचाप पुराना बन गिरकर रहना है। (पृष्ठ १६४ ६५)

प्रतीकार्थ

प्रसाद पुरानी पीढ़ी के और प्रकाश नई पीढ़ी का प्रतीक है। प्रकाश के मन में नई दुनिया के प्रति बड़ी ललक है। समाज के पुराने ढाँचे में पैसे का बड़ा मूल्य रहा है इसीलिए कमाई को ही मानवीय गरिमा का मानदण्ड समझा जाता रहा है। किन्तु नये समाज में इसका महत्त्व गौण हो जायगा यह निर्विवाद है। कुनबे ने आदमी की आजादी को छीन लिया है और व्यक्ति कोल्हू के बैल की तरह उसके इर्द गिर्द चक्कर काटने को विवश है। प्रकाश इस परम्परा के प्रति विद्रोह किया चाहता है। वह नई दुनिया को लाने के लिए विकल है। उसने विज्ञान और वाणिज्य की शिक्षा प्राप्त की है। इस शिक्षा से वह नई दुनिया को लाने में चरितार्थ किया चाहता है। यदि शिक्षा विश्व में परिवर्तन नहीं लायगी तो वह चुक जायगी। ऐसी स्थिति में पुरानी पीढ़ी के लिए समझदारी इसी में है कि वह इस परिवर्तन और हलचल के मंच से अपने आपको खिसका ले और नई पीढ़ी जो कुछ करना चाहती है, उसको करने दे। कोल्हू परम्परा के अनुवर्तन का प्रतीक है। परिवार का जुटना व्यक्ति स्वातन्त्र्य के अपहरण का प्रतीक है।

६ प्रतीक

1 पर कहीं हुई है छुट्टी ?—चक्कर है जो चल रहा है। मैं उसके बीच हूँ और हैरान हूँ। सब अपने अपने मे हैं। कया है और उसका धाम है। आदित्य है और इण्डस्ट्री है। गुरू है और लोक सेवा है। अपरा है और बस वह है। चारू है और उसकी गिरस्ती है। रामेश्वरी है, और समस्या के तौर पर मै उसके लिए बहुतेरा हू। ऐसे चू-चू करता हुआ सब चल रहा है। और मैं बराबर मे लग्न हुआ हूँ। ग्यारह बज गया है। रामेश्वरी सो गई है मैं समझता हू। वह समझती है मैं सो गया हू। (पृ० १६६)

प्रतीकार्थ

प्रस्तुत अनुच्छेद मे दुनिया को गोरख धन्धे के प्रतीक रूप म प्रकट किया गया है। आदमी इस गोरख धन्धे से छुट्टी चाहता है, पर क्या वह उसे मिल सकी है? कया ने शान्तिधाम को अपनी जीवन सिद्धि का प्रतीक बनाया है। आदित्य उद्योग धन्धो मे फलना फूलना चाहता है। गुरू को लोक सेवा म ही सिद्धि की प्रतीति होती है। अपरा के बारे में कुछ कहा नहीं गया है पर यह स्वयंसिद्ध है कि वह इन सबके बीच समाजिका का कार्य कर रही है, और यो सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन उठी है। चारू ने गृहस्थी की परिधि म ही अपनी जीवन सिद्धि का साक्षात्कार किया है। रामेश्वरी के लिए प्रमाद की समस्याओ का निबटाना ही जीवन सिद्धि का प्रतीक है। जगत् अपनी गति से आगे बढता चला जा रहा है उसके आगे बढने म गाडी की चू चू का प्रतीक समाहित है। यह जीवन का खड चित्र है और इसी खड चित्र क प्रतीक म सपूर्ण विश्व से साक्षात्कार किया जा सकता है। यो बिन्दु म सिन्धु समाया हुआ है।

निष्कर्ष

शब्द शक्तिपरक अनुसधान और प्रतीकार्थ की विवेचना के उपरान्त हमारे सामान्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं

(१) जैनेन्द्रजी के उपन्यासो म वस्तु व्यजना का उपयोग सर्वाधिक हुआ है द्वितीय स्थान पर भाव-व्यजना तथा तृतीय स्थान पर प्रयोजनवती लक्षणा आती है। एक मूलग्राही दार्शनिक द्वारा वस्तु-व्यजना का ही सर्वाधिक उपयोग स्वाभाविक है मनोविश्लेषण के आधिक्य के कारण भाव व्यजना द्वितीय स्थान की अधिकारिणी बनी है। छायावादी परिवेश के कारण प्रयोजनवती लक्षणा भी अपने उचित स्थान पर है।

(२) कुछ ऐसे प्रयोग हैं जिन्हें किसी शब्द शक्ति की परिधि मे तो नही लिया जा सकता पर जिनका विधान एव स्वरूप इतना वैशिष्ट्यपूर्ण है कि

हमने उन्हें विशिष्ट पद रचना के रूप में अभिहित किया है। इनमें जनेन्द्र की वाक्य रचना एवं शब्द-चयन की विलक्षणता देखी जा सकती है। मुहावरों का उपयोग एवं बोलियों की व्यंजना स्पष्ट रूप में मार्मिक बन पड़ी हैं।

(३) यह निर्विवाद है कि कोई भी रचनाकार शब्द-शक्तियों को दृष्टि में रख कर वाक्य विधान नहीं करता पर फिर भी उसकी अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता में, शब्द शक्तियाँ स्वतः ही आ जाती हैं। प्रतीक विधान भी सृजन प्रक्रिया में अनायास ही आता है। इससे अभिव्यक्ति में प्रांजलता आती है और उसके सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

(४) यह एक विचित्र ही स्थिति है कि रचनाकार ने सभी शब्द-शक्तियों का अनजाने ही न्यूनाधिक रूप में उपयोग किया है। इनमें उसके रचना-संसार के वैविध्य का स्पष्ट ही आभास मिलता है। मुहावरों के धड़ल्ले से उपयोग के ही कारण रूढ़ि-लक्षणा के भी अच्छे-खासे दर्शन होते हैं।

(५) यह शब्द शक्ति-निरूपण अन्तिम नहीं है और न ही इसे विवाद से परे कहा जा सकता है। कुछ प्रयोगों में दो या इससे भी अधिक भेद के दर्शन होते हैं ऐसी स्थिति में जो शब्द शक्ति सर्वप्रधान समझी गयी है उसी का उल्लेख है। कुछ प्रयोगों में जहाँ इस बात का निर्णय संभव न था एकाधिक शब्द शक्तियों का निर्देश किया गया है।

(६) प्रतीक विधान के तात्त्विक विवेचन में जिन तीन प्रकार के प्रतीकों की चर्चा हुई है—१ संकेतात्मक २ अभिव्यंजनात्मक और ३ आरोप मूलक—उनमें से, संख्या दो और तीन का पुष्कल मात्रा में उपयोग किया गया है। ये प्रकारान्तर से लक्षणा और व्यंजना के ही रूपान्तर हैं जैसा कि 'शब्द शक्तियाँ और प्रतीक-योजना' के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

(७) कल्पना शक्ति का वैभव इन प्रतीकों में द्रष्टव्य है यह छायावादी काव्य के समानान्तर ही विकसित हुआ है। जब जनेन्द्र का पहला उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ (सन् १९२८) तो छायावाद भावपक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से अभिनव प्रयोग करने में तल्लीन था। इन प्रयोगों की विकसित परिणति हम 'सुनीता और त्यागपत्र' के गद्य में देख सकते हैं। यही वह समय है जब प्रसाद की कामायनी पन्त का पल्लव और निराला की अनामिका प्रकाशित हुई। इनमें हम सुनीता त्यागपत्र और कल्याणी की कल्पना प्रवणता सूक्ष्म अर्थवत्ता मार्मिक प्रतीक योजना एवं शब्द-लाघवता की सहज ही तुलना कर सकते हैं।

(८) एक बात में इन कृतियों में छायावादी काव्य से पृथकता भी है और वह यह कि बोल-चाल की शब्दावली के आग्रह के कारण तद्भव शब्दों का प्रयोग एवं मुहावरों का आधिक्य, एक विभाजक रेखा के समान स्पष्ट दिखायी देता है। छायावादी काव्य में इन दोनों तथ्यों के प्रति स्पष्ट ही अवहेलना का भाव है। यद्यपि पन्त के ब्रजभाषा के प्रयोग और निराला की मुहावरदानी की प्रवृत्ति इसके किंचित् अपवाद कहे जा सकते हैं।

(९) एक और बात में छायावादी काव्य से इसमें भिन्नता लक्षित होती है और वह यह है कि प्रकृति से रचनाकार का संबंध क्रमश: क्षीण होता गया है। प्रारम्भिक कृतियों में जहाँ कट्टो के घर की जामुन की शीतल छाँव है, काश्मीर की प्रकृति नटी का रम्य चित्र है, सुनीता और त्याग पत्र में आवश्यकतानुसार, नदी और समुद्र का (चाहे कल्पना में ही क्यों न हो) आंशिक वर्णन है वहाँ परवर्ती कृतियों में आवश्यक होने पर भी प्रकृति की एकान्त उपेक्षा की गयी है। अनन्तर के बहुत बड़े भाग की क्रियाएँ माउण्ट आबू के अंचल में घटित होती हैं वहाँ परवर्ती उपन्यासों में प्रकृति और परिवेश की चरम उपेक्षा विस्मयकारी भी कही जा सकती है। इसे उपन्यासकार की बढ़ती हुई नागरता का ही परिणाम समझा जा सकता है। कैसी अद्भुत बात है कि फोन पर बम्बई कलकत्ता दिल्ली और आबू का मेल तो हो सकता है पर मानवीय आत्मा का अपने चरणों में फैली हुई प्रकृति से कोई तादात्म्य नहीं।

(१०) प्रतीक विधान में प्रकृति की उपेक्षा सम्भव नहीं है इसलिए अधिकांश प्रतीकों का मूल स्रोत प्रकृति ही रही है। कहीं सागर के सिसकने, पत्ते के मानिंद हिलने और भावना के सहराने की बात आयी है तो कहीं पशु-पक्षी जगत् से भी रचनाकार ने प्रतीकों के उपकरण जुटाये हैं। यों प्रकृति प्रतीक विधान की अक्षय निधि प्रमाणित हुई है। प्रतीक विधान के जो उदाहरण दिए गये हैं उनमें सैकड़ों प्रकृति-संबंधी प्रतीक विद्यमान हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि रचनाकार साधारण रूप में प्रकृति वर्णन से विरत हो सकता है किन्तु प्रतीक विधान में वह अंतरंग सहचरी की तरह उसकी कृति के रूप को संवारती भी है और आवश्यकता पड़ने पर बिगाड़ भी देती है।

(११) जैनेन्द्र के उपन्यासों में क्रमश: उनकी सूक्तिप्रियता बढ़ती गयी है जो इस बात का प्रमाण है कि लेखक दार्शनिक मुद्रा की स्थिति में जीवन

और जगत् का पर्यालोचन करने लगा है। इसमे जहा उसकी रचना की जीवन्त उष्णता म कमी आयी है वहाँ उसका दार्शनिक ठहराव बढ़ता गया है जिसके परिणामस्वरूप रूक्षता एव एकरसता क्रमश पैर पसारती गयी है। इस प्रकार उनके उपन्यास उनके निबन्धो के अधिक निकट आने लगे हैं और उपन्यास-कला स दूर पडते जा रहे हैं।

परिच्छेद—१०

शोध-निरूपण

जैनेन्द्र के उपन्यासों की शोध प्रक्रिया के सन्दर्भ में मनस्तत्त्व और शैलीतत्त्व की अविच्छिन्नता सर्वप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। वस्तुतः जैनेन्द्र एक ऐसे शब्द शिल्पी हैं जो कम-से-कम शब्दों के सहारे अधिक-से अधिक अर्थ की व्यंजना करते हैं। इसका एक परिणाम होता है यथातथ्य चित्रण और यह व्यंजना शैली मुझे एक प्रदर्शनी में देखी गयी काच विनिर्मित उस नारी शरीर की याद दिलाती है, जिसे लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने जर्मन-गणतन्त्र के दिल्ली स्थित मण्डप में देखा था। उसका अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही मुखर थे—प्रत्येक नाड़ी अंग प्रत्यंग शिराओं और धमनियों में दौड़ता हुआ रक्त—सब वहां इतना मुखर था कि आन्तरिक शरीर की परिकल्पना स्पष्ट रूप में साकार हो जाती थी। ऐसी ही कुछ स्थिति जैनेन्द्र के मनस्तत्त्व एवं शैली तत्त्व की है। मनस्तत्त्व के परिधान में लेखक की मानसिक प्रक्रिया, स्वभाव और संस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। इस प्रकार मनोविज्ञानपरक शैलीतात्त्विक अध्ययन से अभिप्राय यह हुआ कि हम किसी भी रचनाकार के शैली-तत्त्व का जब अध्ययन करें, तो यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि उसकी लेखन-शैली में उसकी कौन सी मानसिक कुंठाएं, स्वभाव एवं संस्कार अपने आपको व्यक्त करते हैं। विचार और रूप एक-दूसरे से गहन रूप में सम्बन्धित हैं। विचार एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो कि किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर प्रतिक्रियास्वरूप मन में प्रकट होती है। जब किसी विचार को हम शब्द-बद्ध करने लगते हैं तो शैली का स्वरूप आकार ग्रहण करने लगता है।

इससे यह निष्कष निकला कि लेखक की अभिव्यक्ति मे जो प्रचलित से भिन्न रूप होता है, वही शली का मूलाधार है।

मनोविज्ञानपरक शली-तात्विक अध्ययन का आज क युग म बडा महत्त्व ह, क्योंकि वचारिक प्रक्रिया का विभिन्न विज्ञान भाषा शास्त्र एव सौदय शास्त्र की जटिल प्रक्रियाए प्रभावित एव नियत्रित कर रही ह। इस प्रभाव का क्षेत्र एक ओर बहुत विस्तृत है तो दूसरी ओर अत्यन्त सूक्ष्म एव गहन भी है। जब हम किसी उपन्यासकार के शली तत्त्व का अध्ययन करते हैं, तो उसके मन के चेतन, अवचेतन एव अचेतन मे जो भी मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं, उनकी बुनावट को उधेडकर देखने का प्रयत्न करते हैं। शलीतात्त्विक अध्ययन से नये-नये तथ्यों की प्राप्ति होती है और हम सहज ही उपन्यासकार के मनोलोक म प्रविष्ट हो जाते हैं। उसकी रचना का जो भी रूप हम प्रत्यक्ष मे दिखायी देता है उसके मूल म कुछ अन्त प्रेरणाए काय करती हैं। इन अन्त-प्रेरणाओं का सधान ही मनोविज्ञानपरक शलीतात्त्विक अध्ययन का उद्दिष्ट है।

कथा-शली

इस अध्याय म अन्तगत हमने आरम्भ म प्रत्यक उपन्यास की कथा रेखाओं को सक्षेप मे प्रस्तुत करते हुए उसके मनोवज्ञानिक हतु का अनुसधान किया ह और हम इस निष्कष पर पहुचे हैं कि 'परख स 'अनन्तर' तक जनेन्द्र की औपन्यासिक यात्रा म पाच प्रयोग मुख्य रूप स दृष्टिगत होत हैं

१ सवप्रथम 'परख' और 'तपोभूमि' का कच्चा-मीठा प्रयोग है, जिसम लखक की औपन्यासिक सम्भावनाओं के बीज स्पष्टत गोचर होत हैं। परख की सबसे बडी उपलब्धि कट्टो-जैसी जीवन्त बलिदानमयी पात्री का सृजन है। 'तपोभूमि' अपन विषय-वविध्य एव विस्तार के कारण जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि म बेमेल-सी लगती है। (या व तपोभूमि' को अपनी रचना भी स्वीकार नहीं करते, उनका अश इसम बहुत न्यून है।)

२ दूसरा प्रयोग 'सुनीता' और 'सुखदा' के रूप मे हम मिलता है जहा दो सौन्दयमयी नारिया अज्ञात रूप म क्रान्तिकारियों क सम्मोहन म फस जाती हैं और उनका ववाहिक जीवन पगु होते-होते बचता है। इन उपन्यासों की लेखन-शली पर छायावादी गद्य की गरिमा एव मादव का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

३ 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' के रूप म हम तीसरा औपन्यासिक प्रयोग पाते हैं, जिसम कि मध्यवग की दो विशिष्ट नारियों की यातना का लखक न चित्रित किया है।

४ 'व्यतीत' और 'विवत' में चौथे औपन्यासिक प्रयोग के दर्शन होते हैं। 'व्यतीत' के सबध मे पहली महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पुरुष प्रधान उपन्यास है, जबकि अन्य उपन्यासो म नारी-पात्रो की प्रधानता है। 'व्यतीत' तो 'विवत' का ही सहजात उत्पादन है।

५ 'जयवधन', 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' मे हम पाचवें औपन्यासिक प्रयोग के दर्शन करते है जहा कि पात्रों के जीवन पर राजनीतिक आवरण डाला गया है और समसामयिक सन्दर्भो को मुखर किया गया है। 'जयवर्धन' अपने विशाल कलेवर के कारण जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि मे एक विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचायक है। 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' मूलत रेडियो प्रसारण के लिए लिखे गये है। 'अनन्तर' मे सस्मरणात्मक स्वर मुखर है। मूल कथाश के अनुसधान की प्रक्रिया म लेखक की जीवनानुभूति अत्यन्त वयक्तिक एव सीमित है। लगता है, जसे लेखक इक्के दुक्के कथानको के ढाचो को ही पुन-पुन नयी भूमिका मे प्रस्तुत कर रहा है।

जनेन्द्र के उपन्यासो म मूल रूप से वर्णनात्मक शैली और आत्मकथात्मक शली अपनायी गई है। आत्मकथात्मक शली लेखक के लिए अधिक मौजू है। जयवधन को छोडकर सभी उपन्यास लघु उपन्यासो की कोटि मे आते हैं। सभी उपन्यासा के विश्लेषण के उपरान्त हम इस निष्कष पर पहुँचे हैं कि जनेन्द्र हिन्दी मे न केवल लघु उपन्यास के प्रवतक हैं, बल्कि आत्मकथात्मक शैली के 'मास्टर' भी हैं। दशन म हम जिसे आत्मसाक्षात्कार कहते हैं वही उपन्यास म आत्मकथात्मक शैली का प्रेरणा बिन्दु है। इन उपन्यासो के सृजन की मनोभूमि का सधान करने पर हम पाते हैं कि वहा कुछ वकील हैं, कुछ रिटायड जज हैं और कुछ पीडित, सतप्त एव अभिशप्त नारिया हैं, जिनकी यातना को साकार करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। जनेन्द्र के नारी-पात्रो में क्रान्तिकारियो के प्रति सम्मोहन की बात पुन-पुन आयी है, जिससे यही सिद्ध होता है कि लेखक क्रान्तिकारियो को एक अजूबे के रूप मे प्रस्तुत करना चाहता है। जनेन्द्र के सभी पात्र व्यक्ति ही हैं। जनेन्द्र मे गाधी का प्रभाव उथला उथला-सा ही है, किन्तु विचारों के मौसम की दृष्टि से वे श्रुत रूप में फ्रॉयड के अधिक निकट हैं, इसका अधीत रूप तो केवल 'कल्याणी' में ही मिलता है।

वर्णन-शली

वर्णन-शली की दृष्टि स जनेन्द्र के उपन्यासा को चार श्रेणिया म विभाजित किया गया है। (१) सवप्रथम, विभिन्न पात्रा की मनःस्थिति के वर्णन म हम उधेडबुन, सकल्प विकल्प और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वचारिक प्रतिक्रियाओं के

दर्शन करते हैं। इनमें इतना वैविध्य एवं विस्तार है कि जनेन्द्र का विचार जगत् इन्हीं के आधार पर टिका हुआ लगता है। (२) ऐसे ही प्रसंगों के माध्यम से उपन्यासकार दार्शनिक विवेचन की सीमा तक पहुँच जाता है और अपने दर्शन की रेखाओं को उरेहने लगता है। ऐसे विवरणों से उनकी औपन्यासिक सृष्टि आक्रान्त है। जीवन और जगत् के मूल तत्त्वों को यहाँ उन्होंने पकड़ने की चेष्टा की है और वे इस दिशा में इस सीमा तक सफल हुए हैं कि उन्हें प्रायः दार्शनिक उपन्यासकार कहा जाता है। यह उनकी वर्णन शैली की द्वितीय श्रेणी है। (३) तृतीय श्रेणी में पात्रों का अंतरंग एवं बाह्य वातावरण आता है। बाह्य वातावरण में प्रकृति-वर्णन का जीवंत रूप आरम्भिक उपन्यासों में तो मिलता है, किन्तु परवर्ती उपन्यासों में यह रूप क्षीण से क्षीणतर होता गया है। पूर्ववर्ती उपन्यासों का प्रकृति-वर्णन छायावादी कविता के प्रकृति वर्णन से तुलनीय है। (४) परवर्ती उपन्यासों में समसामयिक राजनीति उनके सृजन पर इतनी हावी हो गई है कि वे प्रकृति के जीवंत रूप को तो विस्मृत ही कर बैठे हैं और राजनीतिक ऊहापोह में इतने तल्लीन हो गए हैं कि नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष, सत्ता का परित्याग, नयी दुनिया के प्रति वैचारिक आकुलता, उनके उपन्यासों में मुखर होने लगे हैं।

जनेन्द्र की भाषा शैली सर्वत्र एक से ही साँचे में ढली हुई मिलती है। उसके दो रूप सुलभ हैं (१) उसका प्रवृत्त रूप पात्रों की पारस्परिक वार्ता में मिलता है, जहाँ वे स्वाभाविक लहजे में मुहावरेदार शब्दावली के द्वारा जीवन का उष्ण-संस्पर्श देते हुए उन्हें बुलवाते हैं। (२) द्वितीयतः, उनकी भाषा शैली मानसिक ग्रंथियों के विश्लेषण में उपलब्ध होती है। यहीं हम रहस्योन्मुख प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। जनेन्द्र सहजता से जटिलता की ओर अग्रसर हुए हैं। 'परख' की भाषा शैली में धीर मंथर प्रवाह है, 'सुनीता' में अलंकृति और चटकीलापन है, 'त्यागपत्र' में वैचारिक परिपक्वता है, 'कल्याणी' में अधीत मनोविज्ञान की अनुगूंज है। 'व्यतीत', 'विवर्त' और 'सुखदा' में वैचारिक रूक्षता आ गई है। 'जयवर्धन' तक आते आते उनकी भाषा शैली में एक ठहराव आने लगता है। यहाँ उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त संश्लिष्ट एवं अप्रयगभत्व से परिपूर्ण है। 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' में ह्रास के लक्षण स्पष्ट दिखायी देने लगते हैं। यहाँ उनका आत्मकेन्द्रित एवं संस्मरणात्मक रूप मुखर होता है और वे पुनरावृत्ति के भँवर में फँसते हुए-से प्रतीत होते हैं।

सम्भाषण तथा संवाद

दो पात्रों की पारस्परिक वार्ता को हमने संवाद के अन्तर्गत लिया है।

सभाषण मे कोई विशिष्ट पात्र धाराप्रवाह रूप मे किसी विषय या प्रसग-विशेष पर अपने विचार प्रकट करता है। दोनो ही स्थितियों मे श्रोता की अपेक्षा रहती है पर सवाद म श्रोता एक सक्रिय अभिवक्ता भी होता है जबकि सभाषण मे श्रोता निष्क्रिय होता है। सवादो एव सभाषणो को कई वर्गों मे विभाजित किया गया है। कहीं इनके द्वारा मन स्थिति का निरूपण किया जाता है, तो कही वैयक्तिक जीवन के प्रसग मुखर हो जाते हैं जिनके मूल मे कोई घटना विशेष होती है। इसका तीसरा वग तात्त्विक प्रसगो स परिपूर्ण कहा जा सकता है, इनम किसी तत्त्व विशेष का प्रतिपादन होता है और अपनी बात को दार्शनिक गहराई के साथ प्रकट किया जाता है। चतुथ श्रेणी मे राज नीतिक एव समसामयिक सन्दर्भों के सवाद एव सभाषण परिगणित किए गए हैं। इस प्रकार के सवाद एव सभाषण परवर्ती उपन्यासों मे प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। पचम श्रेणी में हम प्रेयस प्रेयसी के मध्य सम्पन्न हुए सवादो एव सभाषणों को ले सकते हैं। इस श्रेणी म अतरगता अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर लेती है। जैनेन्द्र के सभी पात्र लेखक की ही शब्दावली म बात करते हैं। कही व्यग्य विनोद, तो कही वक्रोक्तिया के भी दशन होते हैं। पूववर्ती उप न्यासों में जनेन्द्र के सवादो एव सभाषणों मे जिस स्वाभाविक ऊर्जा के दशन हुए थे, वह क्रमश क्षीण होती गई है। परवर्ती उपन्यासों मे सवाद जीवन की ऊष्मा से सप्लावित प्रतीत नहीं होते। एक दार्शनिक की-सी जडता उनम आती जा रही है। सवादो मे बात-चीत की सहज भगिमा रहती है और स्थान स्थान पर मुहावरो के प्रयोग से एक तीखापन भी आ जाता है। मन के अतल गहन गह्वरो की प्रवृत्ति को उनकी शब्दावली मूत करने म सक्षम है।

सवादो की तुलना मे सभाषणो मे उपन्यासकार क पास इस बात का अधिक अवसर रहता है कि वह अपनी विचारधारा को पूर रूप मे प्रकट कर सके। सभाषणो मे प्राय विशेष शली के दर्शन होते हैं। सभाषणो म गद्य काव्यात्मकता के लिए भी पर्याप्त अवसर रहता है ऐसे स्थलो पर भावो का प्राजल प्रवाह एक समा बाध देता है। कही-कहीं सभाषण आत्मकथात्मक सस्मरण का भी रूप ले लेते हैं विशेष रूप से उनके परवर्ती उपन्यासो म यह प्रवृत्ति अत्यन्त मुखर है। सभाषणों में दार्शनिक मन स्थिति के उद्घाटन के लिए विशेष अवसर रहता है। कोई भी पात्र, जीवन के किसी प्रसग को लेकर असे उसे अपने विचारों की चिमटी मे पकड लेता है और उसका अपनी अन्तद ष्टि से ऐसा 'स्क्रीनिंग' प्रस्तुत करता है कि चित्र का अतरग एव बहिरग दोनों ही सभाषणों की सीमा में आबद्ध हो जाते हैं। कभी-कभी किसी विशिष्ट पात्र के पत्र भी सभाषण का रूप ले लेते हैं वहा उनकी गद्यकाव्यात्मक छटा

देखने ही बनती है। ये पत्र ये गद्य-काव्य और ये समापरण उपन्यासकार के महत् उद्देश्य और उसके जीवन दर्शन को प्रकट करने में एक उल्लेखनीय भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

शैली के मनोवेगगत रूप तथा स्थिति

भारतीय साहित्य-शास्त्र में शैली को पूर्वजा के रूप में रीति और वृत्ति का उल्लेख मिलता है। अनन्तर इस लिखने के ढंग के रूप में परिकल्पित किया गया और इसके तीन भेद बतलाए गए

(१) व्यास शैली
(२) समास शैली
(३) प्रलाप या विशेष शैली।

शैली के गुणों के रूप में ओज, माधुर्य एवं प्रसाद की परिकल्पना की गई। पाश्चात्य साहित्य में शैली के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं किन्तु बफन के मत शैली ही व्यक्तित्व है को अधिक मान्यता प्राप्त हुई। चेस्टरफील्ड शैली को विचारों का परिधान मानते हैं। प्लेटो की मान्यता है जब विचार को तात्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है। अरस्तू की धारणा है कि 'शैली से वाणी में वशिष्ट्य का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त भी पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अनेक परिभाषाओं का उल्लेख मिलता है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य परिभाषाओं का सर्वसम्मत रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है " व्यक्ति, विषय भाषा एवं प्रयोजन के वशिष्ट्य के अनुसार अभिव्यंजना-पद्धति में जो वशिष्ट्य आ जाता है वही शैली है।

मनोवेग मन के वेग हैं, जो किसी परिस्थिति विशेष में कारण विशेष से समुत्पन्न होते हैं। ये ही कार्यशक्ति के मूल प्रेरक हैं और इन्हीं के ताने-बाने से किसी भी उपन्यास की कथा का पट बुना जाता है। मनोवेगों से पात्रों के व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होती है ये मनोवेग शैली को भी नियंत्रित एवं नियमित करते हैं। कोई उपन्यासकार जब आत्मकथात्मक शैली को अपनाता है तो उसका यही मंतव्य होता है कि वह व्यक्ति के अहं को उसके व्यक्तित्व के वशिष्ट्य को अधिक महत्त्व दे रहा है जब वह वर्णनात्मक शैली को अपनाता है, तो वह व्यष्टि से अधिक समष्टि के भावों की व्यंजना करता है। स्वाभाविक ही है कि ऐसी स्थिति में वह आपबीती' के स्थान पर जगबीती' का अधिक दर्शाए।

भावों के तीन प्रकार बताए गए हैं

(१) इन्द्रियजनित भाव
(२) प्रज्ञात्मक भाव, और

(३) गुणात्मक भाव।

इन्ही के अन्तर्गत हमने जनेन्द्र के विभिन्न उपन्यासो के पात्रो के मनोभावो का विश्लेषण एव सश्लेषण किया है और इस निष्कष पर पहुचे हैं कि जनेन्द्र के उपन्यासो म वसे तो सभी प्रकार की शलियो एव मनोवेगो के दर्शन होते हैं किन्तु ऐसे मनोवेगों की अभिव्यजना मे वे अधिक सक्षम हैं, जो मरणजन्य एव मरणधर्मा हैं। हर्षवेग या उत्साहजन्य जीवनधर्मा मनोवेगो का केवल प्रेमी युगलो के हास्यविनोद एव कुहल मे ही किंचित् आभास मिलता है। अधिकाश पात्र गहरे चिन्तन का आवरण ओढे रहते हैं। फलत जीवन की सूक्ष्म वृत्तियो का पर्याप्त विवेचन मिलता है। जनेन्द्र के सवादो म दनन्दिन जीवन का मुहावरा बडी कुशलता एव मार्मिकता से अभिव्यक्त हुआ है। प्राय सभी उपन्यासो मे शली-तत्त्व का आधार वास्तविकता न होकर कल्पना-तत्त्व रहा है। गहन दाशनिक स्थिति के विश्लेषण में यही कल्पना-तत्त्व, बुद्धि-तत्त्व का आधार अपना लेता है। जीवनधर्मा प्रवृत्तियो के स्थान पर मरणधर्मा प्रवृत्तियो की प्रधानता के कारण इनकी गद्य शली मे एक विशेष प्रकार के नराश्य की अन्तर्धारा सवत्र प्रवाहित है। अन्तत हम इसी निष्कष पर पहुचते हैं कि जनेन्द्र की मनोवेगात्मक शली का एक विशिष्ट रूप है, जो हिन्दी उपन्यास-साहित्य मे एक पृथक स्थान और विशिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी है। कहीं से और किसी भी स्थिति मे जनेन्द्र के किसी एक वाक्य को लेकर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि ऐसा वाक्य तो उनकी ही टकसाल मे गढा जा सकता है।

शली का विचारगत रूप

मानव-जीवन मे भाव-तत्त्व एव विचार तत्त्व का सहअस्तित्व है। भाव तत्त्व में हमारी सौन्दर्य-चेतना प्रसुप्त रहती है तो विचार तत्त्व को जीवन का मरुदण्ड कहा जा सकता है। शली-तत्त्व मे विचार-तत्त्व का बडा महत्त्व है, क्योंकि शली रूपी शरीर का यही मूलाधार है। उपन्यासकार के कथ्य म जो बारीकी आई है उनके उपन्यासो में मन को मथ डालने की जो सामर्थ्य है उसका आधार उनके मूलग्राही विचार ही हैं। आधुनिकता तभी मूत होती है, जबकि हम युग के विचारों का सावधानी से दोहन करते हैं। जनेन्द्र के उपन्यासो म विचार एव भाव पारस्परिक रूप से इतने जुड हुए हैं कि उनका पथक्करण प्राय सम्भव नही होता। वचारिक परिधि म कहीं नर-नारी-सम्बन्धो का विवेचन मिलता है, तो कही पूजीवाद की असगतिया सिर उठाती हुई प्रतीत होती हैं तो कही समाजवाद का स्वर अपने अविकसित रूप में झांकने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'परख', 'सुनीता' की भावुकता के उपरान्त त्यागपत्र

में उपन्यासकार चिंतन की परिपक्वता के अधिक निकट आ गया है। 'कल्याणी' एवं 'सुखदा' में मनोविश्लेषणात्मक विचारों के दर्शन होते हैं, तो 'विवर्त' एवं 'व्यतीत' में वे व्यक्ति को केन्द्र बनाकर उसकी व्यथता को प्रकट करने लग जाते हैं। 'जयवर्धन' की वैचारिक सघनता विस्मयकारी है। 'मुक्तिबोध' और अनन्तर में उनका वैचारिक सम्पर्क समसामयिक समस्याओं से हो जाता है। इन अंतिम रचनाओं में जनेन्द्र विचारों के गगन से सहज-सामान्य भूमि पर आ जाते हैं किन्तु फिर भी उनकी दार्शनिकता कुंठित नहीं होती। परवर्ती उपन्यासों में उनके विचार व्यंग्यात्मक परिधान धारण कर लेते हैं और वे प्रजातंत्र एवं राजतंत्र पर चुटीले व्यंग्य करने लगते हैं।

जनेन्द्र की विचारगत शैली पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप है। दार्शनिक ऊहापोह के कारण उनका चिन्तन सर्व एक उच्च धरातल पर रहा है। ज्यों-ज्यों उनकी औपन्यासिक सृष्टि में विचारों का जंजाल बढ़ता गया है त्यों-त्यों उनकी भावमय दृष्टि उपेक्षित होती गई है। यही कारण है कि उनके परवर्ती उपन्यास, उपन्यास के चौखटे में भी पूरी तरह फिट नहीं हो पाते। वैचारिक गहनता के कारण उनकी शैली अस्पष्टता के तटों को छूने लगी है और उस पर एक रहस्यमय आवरण सा पड़ा नजर आ रहा है। जनेन्द्र के पास दुनिया को देने के लिए सन्देश तो है, पर वे उसे शब्दावेष्टित नहीं कर पा रहे। फलतः उनके परवर्ती उपन्यास हलके में एक कटु तिक्त स्वाद छोड़ जाते हैं। जनेन्द्र के उपन्यासों में मनोविज्ञानपरक शैली-तत्व सर्वाधिक मुखर है। वे वस्तुतः विद्वान् पाठकों एवं मनोविश्लेषण में रुचि रखने वाले जिज्ञासुओं के उपन्यासकार हैं। उनकी विचारगत शैली में परम्परागत मुहावरे तो प्रायः हैं किन्तु आवश्यकतानुसार उन्होंने नये मुहावरों को भी गढ़ा है। प्रेरणा का जितना बाह्यीकरण होता गया है, उतनी ही उनकी औपन्यासिक सृष्टि औपचारिक बनती गई है।

१
चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति और भाषा-शैली

मनुष्य की मनोरचना अत्यन्त जटिल एवं संश्लिष्ट है। फ्रॉयड ने मानवीय चेतना को तीन भागों में विभाजित किया है — चेतन, अवचेतन और अचेतन। मन के ये तीन स्तर मनुष्य के चिंतन और उसके प्रकटीकरण में जो भाषा शैली की स्थिति होती है उसको बहुत दूर तक प्रभावित एवं नियन्त्रित करते हैं। इन्हीं आधारों पर हमने जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि में चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया के माध्यम से मनोविज्ञानपरक शैली-तत्त्व का संधान एवं अनुशीलन किया है। मनोविश्लेषण की प्रधानता होने के कारण उनकी अव

चेतन की अभिव्यक्ति ही कहीं प्रतीक का रूप ले लेती है, तो कहीं गहरे दार्श-निक विवेचन में उतर जाती है। इस सन्दर्भ में फ्रायड और उनके सहयोगी जुंग के विचारों को विशेष रूप से उद्धृत किया गया है। यह तो निर्विवाद ही है कि जैनेन्द्र ने इन मनोविश्लेषणवादियों का विधिवत् अध्ययन नहीं किया है। प्रारम्भ के उपन्यासों में श्रुत एवं अनुभूत आधार पर मनोवैज्ञानिक विवेचन है किन्तु 'कल्याणी' में अधीत मनोविज्ञान का रूप भी प्रस्फुटित होता दिखाई देता है। गुसलखाने वाले प्रकरण में स्पष्ट रूप से सभ्रम, आलक्ष्य एवं आत्म प्रक्षेपण का प्रभाव परिलक्षित होता है। फ्रायडीय मनोविश्लेषण की जो सीमाएं रही हैं, उनके प्रति भी हम जागरूक रहे हैं और प्रतिपक्ष के दृष्टिकोण को भी आवश्यकतानुसार उद्धृत किया गया है।

विभिन्न उपन्यासों से व्यापक रूप में उद्धरण देते हुए और उनका पुनराख्यान करते हुए हम इन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं कि इस दिशा में जैनेन्द्र ने प्रवर्तनकारी भूमिका प्रस्तुत की है। प्रेमचन्द की सीधी सपाट भाषा शैली एवं वर्णनात्मकता को उन्होंने मनोविश्लेषणात्मकता का धरातल प्रदान किया। नया पथ बनाते हुए उपन्यासकार को भाषा के धरातल पर तोड़ फोड़ करनी होती है, आवश्यकतानुसार खुदाई भी करनी पड़ती है और फिर उसे नये रूप में ढालकर एक परिनिष्ठित रूप प्रदान करना होता है। यदि हम कविता में मैथिलीशरण गुप्त और कामायनीकार प्रसाद की भाषा शैली तथा गद्य में प्रेमचन्द और जैनेन्द्र की भाषा शैली का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो हमें इन दोनों में स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होगा। जैनेन्द्र की भाषा में अराजकता, स्वेच्छाचारिता एवं अव्यवस्था तो है, पर यह नव निर्माण की आवश्यक शर्त होती है। किसी चीज को बनाने या उसे नया रूप देने में पुराने ढांचे को मलबे का रूप देना पड़ता है, और तब उसी मलबे में से नई इमारत, नई साज सज्जा एवं नये गठन-सौन्दर्य को लेकर उठ खड़ी होती है। आज हिन्दी-कथा-साहित्य में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, उषा प्रियम्वदा और शिवानी में हम भाषा का जो नया निखार देखते हैं उसका प्रारम्भ जैनेन्द्र के ही उपन्यासों में हुआ था।

चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति में लेखक द्वारा नियोजित बातचीत बड़ी सूक्ष्म एवं भावप्रवण हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता कि अवचेतन में प्रसुप्त मनोवेग एक के बाद एक अंगड़ाइयाँ लेते हुए उठ रहे हों। हृदय के संक्षिप्त उद्गारों में लेखक बहुत-कुछ अनकहा छोड़ देता है। ऐसी स्थिति में जैनेन्द्र प्रायः शून्य चिह्नों (   ) का उपयोग करते हैं। इससे पाठक की कल्पना को एक भावोत्तेजना मिलती है और वह अधूरे चित्र को पूरा करने में सृजना

रमय आनन्दानुभूति में लवलीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में मौन ही वाचाल हो उठता है। ये मुखरित मनोवेग पारदर्शी भाषा शैली के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

चेतन और अवचेतन की प्रक्रियागत स्थिति में उपन्यासकार हाव भावों का चित्रण बड़ी बारीकी से करता है। उसके रंग चटकीले होते हैं और वह मन की चेतन अवचेतन स्थितियों को छू भर देता है। पाठक की कल्पना के लिए वह पर्याप्त उपकरण जुटाता है। इस प्रकार के विवरणों में एक प्रकार की गतिशीलता रहती है किंतु उपन्यासकार का मूलग्राही दृष्टिकोण ऐसी स्थितियों को उपलक्ष्य मात्र ही बनाता है वह इनमें न स्वयं भटकता है और न पाठक को भटकने देता है।

एक सृजनात्मक साहित्यकार होने के कारण जनेन्द्र ने अवचेतन की मधुरिमा में डुबाकर हिंदी हिंदुस्तानी को एक ऐसा रूप प्रदान किया है, जो सबके गले उतर सकता है। जनेन्द्र की दृढ़ मान्यता रही है कि हिंदी अपने अखिल भारतीय रूप में हिंदुस्तानी को आत्मसात् करके ही चल सकती है। इस मान्यता का प्रभाव उनके शैली-तत्त्व में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। जनेन्द्र ने अवचेतन को अभिव्यक्त करने के लिए जहां परम्परागत शब्दों एवं मुहावरों को काम में लिया है वहीं उन्होंने कुछ नये शब्द एवं मुहावरे भी घड़े हैं। उनकी वाक्य रचना, शब्द चयन एवं पद विन्यास प्रचलित से भिन्न हैं और इसके मूल में उनका अवचेतन बड़ा सक्रिय रहा है। अवचेतन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से जनेन्द्र को अत्यन्त सक्षम उपन्यासकार भी कहा जा सकता है। उनकी ऐसी अभिव्यक्ति में आयामों की विविधता, बहुरूपता एवं जीवन्तता, उन्हें हिंदी कथा-साहित्य में एक विलक्षण गौरव प्रदान करती है। अज्ञेय जैसा काव्यात्मक सौंदर्य उनके गद्य में भले ही न हो पर जीवन स्थितियों की विराट्ता एवं गहनता में, और परिणामस्वरूप दार्शनिक ऊहापोह में, वे अज्ञेय से आगे रहे हैं। यों कहिये कि अज्ञेय ने भाषा शैली के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रेरणा एवं दीक्षा जनेन्द्र की कृतियों से ही ली है।

परामानसिक स्थिति और भाषा शैली ,

परामानसिक स्थिति से तात्पर्य उस इंद्रियातीत स्थिति से है, जिसमें कि रचनाकार भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करता है और जिसकी अनुभूति इन्द्रियगम्य नहीं होती। इसका परामनोविज्ञान से घनिष्ठ संबंध है। फ्रॉयड ने मन को तीन भागों में विभक्त किया है (१) चेतन (२) अवचेतन और (३) अचेतन। जुंग फ्रॉयड के अचेतन को तो स्वीकार करते हैं

पर उनकी दृष्टि मे अचेतन के दो स्तर हैं (१) वैयक्तिक अचेतन और (२) समष्टिगत अचेतन। उसके अनुसार समष्टि-मन म निवास करने वाली भावनाए अस्पष्ट निराकार, अनियन्त्रित और अनिवचनीय होती हैं पर ये मानव जाति में निसग स प्राप्त हैं और युग-युग से मनुष्य मे निवास करती आई हैं। सत्य की खोज अदृश्य शक्ति म विश्वास, देवत्व और ईश्वरत्व म आस्था, हमारी चतना का अनादि काल से प्रभावित कर रहे हैं।

जनेन्द्र के पात्रो म वयक्तिक अचेतन एव समष्टिगत अचेतन का द्वन्द्व चलता है तो कुछ पात्रा म इन दोनो का सामजस्य इस रूप मे प्रस्फुटित होता है कि उनके व्यक्तित्व को एक पूणता मिल जाती है। जनेन्द्र के उपन्यासा म प्रथम वग के उदाहरण प्रचुर मात्रा म विद्यमान हैं, जबकि द्वितीय वग के उदाहरण अपेक्षाकृत न्यून हैं।

परामानसिक स्थिति के सर्वेक्षण के उपरान्त हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि जनेन्द्र का इस स्थिति के चित्रण मे असाधारण सफलता मिली है। वयक्तिक अचेतन और समष्टिगत अचेतन के द्वन्द्व को लेखक ने बडी ही सूक्ष्म एव व्यजनापूण शब्दावली द्वारा उरेहा है। परामानसिक भावो के विविध आयाम कही सकेतात्मक रूप म, तो कही सख्या भाषा म प्रस्फुटित हुए हैं। पूववर्ती उपन्यासो की तुलना म परवर्ती उपन्यासा म यह प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। लेखक क्रमश भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हुआ है। भौतिक स्तर पर उसकी शली म अधिक चटकीलापन है क्रमश यह चटकीलापन क्षीण होता गया है और उपन्यासकार की जीवन्तता भी परवर्ती उपन्यासों म मन्द से मन्दतर पडती गई है।

परामानसिक स्थिति के चित्रण म जनेन्द्र की भाषा शली एक नये निखार के साथ जीवनगत असगतियो का चित्रण करती है और अन्तश्चेतना म जो भी आडी तिरछी रेखाए होती हैं उनका फोटोग्राफिक विवरण प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की असाधारण क्षमता ही उसकी भाषा शली म प्रकट होती है। वे मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरगों के अद्भुत शिल्पी हैं। परामानसिक स्थिति के चित्रण में अनेक स्थलों पर जनेन्द्र की भाषा-शली रहस्यात्मक कुहेलिका के आवरण में लिपटी रहती है। यदि हम उसे कई बार पढें और उसका विश्लेषण करें तो उसका अन्त सौन्दय और अधिक निखार के साथ खिल उठता है। ऐसे स्थलो पर विचारो की गरिष्ठता तो रहती है किंतु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्त प्रवाह भी प्रशान्त गति स आन्दोलित होता रहता है।

अन्तत, हम इस निणय पर पहुचे हैं कि परामानसिकता की द्विविधापूर्ण स्थिति का परवर्ती उपन्यासो म अत्यन्त सटीक विवरण है। समष्टिगत अचेतन

में जमे हुए संस्कार पात्रों का अबूझ रूप में मार्गदर्शन करते हैं और चेतन क्रिया-कलाप में अथवा वयक्तिक अचेतन में इसके विपरीत ही आचरण होता है। ऐसे स्थलों पर लेखक की अभिव्यंजना प्रायः लड़खड़ाने लगती है। मन की सूक्ष्म वायवी तरंगों को पकड़ने की स्थिति में ही उपन्यासकार की यह नियति होती है। यहां उपन्यासकार घटना-परिधि को लांघकर दार्शनिक परिधि में पहुंच जाता है और प्रायः संध्या भाषा का प्रयोग करने लगता है।

शब्दशक्तिपरक अनुसंधान : प्रतीक-योजना

सामान्यतः शब्दशक्तियों का विवेचन काव्य के संदर्भ में ही मिलता है किन्तु हमने जैनेन्द्र के उपन्यासों के संदर्भ में शब्द शक्तियों के ४२८ उदाहरणों पर व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया है। इसके सन्दर्भ-सूत्र को आनन्दवर्धन से लगाकर नव्यतम साहित्यशास्त्रियों के विवेचन तक लाने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः शैली-तत्त्व का मूलाधार शब्दशक्तियां ही हैं। जब हम यह कहते हैं कि कथा-साहित्य में छायावादी शैली का प्रवर्तन जैनेन्द्र ने किया तो हमारा यही तात्पर्य होता है कि उन्होंने छायावादी की लाक्षणिक शैली का और व्यंजना के विविध प्रकारों को अपने लेखन में अनजान ही समाहित किया है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से अभिधा का उतना मूल्य नहीं है जितना कि लक्षणा और व्यंजना का है। हमारे शब्दशक्तिपरक अनुसंधान में लक्षणा के आठ उपभेदों का और व्यंजना के छः उपभेदों का समाहार है। कुछ ऐसी अभिव्यक्तियां भी हैं जो कठोर रूप में शब्द-शक्तियों के अन्तर्गत तो नहीं आतीं किन्तु वे अनेक शब्द शक्तियों का भ्रम अवश्य उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार की उक्तियों की गणना हमने विशिष्ट पद रचना के अन्तर्गत की है।

छायावादी काव्य-शैली की ही तरह छायावादी गद्य-शैली में भी प्रतीकों का विशिष्ट महत्त्व है। इन प्रतीकों का कोई-न-कोई मनोवैज्ञानिक आधार होता है। इनमें अभिव्यक्ति में एक विशेष प्रकार की अर्थवत्ता आ जाती है। भारतीय विद्वान् प्रतीकों और शब्द-शक्तियों में घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं। संकेतात्मक प्रतीकों का व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में वाच्यार्थ मुख्य होता है जबकि तथाकथित अभिव्यंजनात्मक प्रतीक विशेष प्रयोजन से प्रेरित होने के कारण लक्ष्यार्थ को अभिव्यंजना करते हैं। आरोपमूलक प्रतीकों में शब्दों पर नये अर्थ का आरोपण होता है तथा इनमें दो अर्थों—प्रस्तुत और अप्रस्तुत—की सहस्थिति रहती है। अतः इनके मूल में व्यंजना शक्ति की सत्ता स्वीकार की जा सकती है। वस्तुतः आरोपमूलक प्रतीक व्यंग्यार्थ की व्यंजना करते हैं। अस्तु प्रतीकों के तीनों प्रकार—संकेतात्मक, अभिव्यंजनात्मक एवं आरोपमूलक—क्रमशः अभिधा, लक्षणा

एव व्यजना शक्तिया पर आधारित हैं। जनेन्द्र ने अपने सभी उपन्यासों मे प्रतीको का पुष्कल मात्रा मे उपयोग किया है। इनके माध्यम से जीवन की ललक, स्फूर्ति एव व्यग्रता कही दर्शायी गई है, तो कही यौवन का दुर्दान्त रूप। नारी जीवन की यातना की बहुविध छविया प्रतीकों के ही माध्यम स ही दर्शायी जा सकती थीं। मनोविज्ञानपरक शैली तत्व के निर्वाह म भी इन प्रतीको से बडी सहायता मिली है। इन्ही की सहायता से कल्पना का वैभव और अनुभूति की द्रावकता मूत हो उठी है। शब्द-तूलिका के माध्यम म उपन्यासकार जब चित्र का निर्माण करता है, तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड आते हैं। कविता के उपमान भले ही मले पड जायें पर प्रतीकों मे इतनी विविधता एव नवीनता है कि उनके मले पडने की सभावना सहज में नहीं की जा सकती।

जनेन्द्र के उपन्यासो म वस्तु व्यजना का उपयोग सर्वाधिक हुआ है द्वितीय स्थान पर भाव-व्यजना तथा तृतीय स्थान पर प्रयोजनवती लक्षणा आती है। एक मूलग्राही दार्शनिक द्वारा वस्तु व्यजना का सर्वाधिक उपयोग ही स्वाभाविक है मनोविश्लेषण के आधिक्य के कारण भाव-व्यजना द्वितीय स्थान की अधिकारिणी बनी है, छायावादी परिवेश के कारण प्रयोजनवती लक्षणा भी अपने उचित स्थान पर है। शब्द शक्तियों और प्रतीक विधान के कारण अभिव्यक्ति म प्राजलता आई है और उनकी गद्य-सुषमा मे चार चाद लग गए हैं। यह एक विचित्र ही स्थिति है कि जैनेन्द्र ने सभी शब्द शक्तिया का मनजाने ही न्यूनाधिक प्रयोग किया है। इससे उनके रचना-ससार के वविध्य का स्पष्ट ही आभास मिलता है। मुहावरो के धडल्ले से उपयोग के कारण ही रूढि-लक्षणा के भी अच्छे-खास दर्शन होते हैं।

जनेन्द्र के प्रतीक विधान मे कल्पना शक्ति का वभव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यह छायावादी काव्य के समानान्तर ही विकसित हुआ है। जब जनेन्द्र का पहला उपन्यास १९२९ म प्रकाशित हुआ तो छायावाद भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से अभिनव प्रयोग करने म तल्लीन था। इन प्रयोगो की विकसित परिणति हम सुनीता त्यागपत्र और कल्याणी' के गद्य में देख सकते हैं। यही वह समय है जब प्रसाद की कामायनी पन्त का पल्लव और निराला की अनामिका प्रकाशित हुई। इनसे हम सुनीता' त्यागपत्र' और कल्याणी की कल्पना प्रवणता सूक्ष्म मयवत्ता मार्मिक प्रतीक-योजना एव शब्द-लाघवता की सहज ही तुलना कर सकते है। एक बात मे इन कृतियो म छायावादी काव्य स पथकता भी है, और वह यह कि बोल चाल की शब्दावली के आग्रह के कारण तद्भव शब्दो का प्रयोग एव मुहावरा का आधिक्य एक विभाजक रेखा के समान स्पष्ट दिखाई देता है। छायावादी काव्य म इन दोनों तथ्यो के प्रति एकान्त

उभरा है यद्यपि पत के ब्रजभाषा के प्रयोग और निराला की मुहावरेदानी की प्रवृत्ति, इसके किंचित् अपवाद कहे जा सकते हैं।

आरम्भिक कृतियों में यहाँ कट्टो के घर की जामुन की शीतल छाँह है कहाँ मीर की प्रकृति-नटी का रम्य चित्र है सुनीता', 'त्यागपत्र और विवर्त में आवश्यकतानुसार नदी और सागर का चित्र प्रस्फुटित हुआ है, वहाँ परवर्ती कृतियों में प्रकृति की एकान्त उपेक्षा ही मिलती है। किन्तु ठीक इसके विपरीत प्रतीक विधान में लेखक के द्वारा प्रकृति की उपेक्षा सभव न हो सकी, क्योंकि अधिकांश प्रतीकों का मूल स्रोत प्रकृति ही है। इससे यही प्रमाणित होता है कि रचनाकार साधारण रूप में प्रकृति-वर्णन से विरत हो सकता है किन्तु प्रतीक विधान में वह अतरंग सहचरी की तरह उसकी कृति के रूप को सवारती भी है और आवश्यकता पड़ने पर बिगाड भी देती है।

जनेन्द्र के उपन्यासों में क्रमश उनकी सूक्तिप्रियता बढ़ती गई है जो इस बात का प्रमाण है कि लेखक दार्शनिक मुद्रा की स्थिति में जीवन और जगत् का पर्यालोचन करने लगा है। इससे जहाँ उनकी रचना की जीवन्त उष्णता में कमी आई है वहीं उसका दार्शनिक ठडापन बढ़ता गया है जिसके परिणाम स्वरूप रुक्षता एव एकरसता क्रमश पर पसारती गई हैं। इस प्रकार उनके उपन्यास उनके निबन्धो के अधिक निकट आने लगे हैं और उपन्यास-कला की रुचिरता से दूर पड़ते जा रहे हैं।

आकार की दृष्टि से शब्द-शक्तिपरक अनुसधान और प्रतीक-योजना का प्रकरण प्रबध में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। प्रबध का एक तिहाई भाग इसी के द्वारा घेर लिया गया है। हम इसे प्रबध का मेरुदण्ड समझते हैं। इसमें कथा-साहित्य के सदर्भ में शोध की एक नई दिशा का उन्मोचन भी होता है।

सामान्य निष्कर्ष उपलब्धियाँ

शोध की परिष्कारिणी (रिफाइनरी) में जो अन्तिम निष्कर्ष मूलवर्ती उपलब्धियों के रूप में हमारे सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं—

१ जनेन्द्र के उपन्यासों में मनस्तत्त्व और शैली-तत्त्व की अविच्छिन्नता सर्वप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। लेखक की अभिव्यक्ति में जो प्रचलित से भिन्न रूप है, वही शैली का मूलाधार है। इसी के माध्यम से हम रचनाकार के मनोलोक में प्रविष्ट हो पाते हैं और उसके स्वभाव सस्कार एव अन्त प्रेरणाओं की नब्ज को पकड़ पाते हैं। इसी के अन्तर्गत मन के चेतन अव चेतन एव अचेतन में जो भी मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं उनकी बुनावट

को उघेडकर देखने से नये-नये तथ्यो की प्राप्ति होती है।

२ 'परख' से 'अनन्तर' तक जनेन्द्र की औपन्यासिक यात्रा के पाच सोपान हैं (१) 'परख' और 'तपाभूमि' का कच्चा मीठा प्रयोग (२) 'सुनीता' और 'सुखदा' को लेखन शली म छायावादी गद्य की गरिमा और मादव का दशन (३) 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' म गहन यातना की सूक्ष्म कहानी (४) 'व्यतीत' और 'विवत' मे पुरुष प्रधान उपन्यास की परिकल्पना एव सहजात उत्पादन की प्रक्रिया तथा (५) 'जयवधन', 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' म समसामयिक सन्दर्भों के मुखर एव सस्मरणात्मक स्वर का आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। 'जयवधन' वृहदाकार होने के कारण जनेन्द्र की औपन्यासिक सृष्टि म एक निराले व्यक्तित्व का परिचायक सिद्ध हुआ है।

उपन्यासकार की जीवनानुभूति अत्यन्त वयक्तिक एव सीमित प्रतीत होती है, लेखक इक्के दुक्के कथानका के ढाचा को ही पुन पुन नई भूमिका मे प्रस्तुत करता हुआ प्रतीत होता है। जनेन्द्र के उपन्यासा में आरम्भ म वर्णनात्मक शली और इसके कुछ ही अनन्तर—आद्यन्त—आत्म-कथात्मक शैली को ही अपनाया गया है। आकार की दृष्टि से जयवधन को छोडकर सभी लघु उपन्यास की कोटि म परिगणनीय है। जनेन्द्र मे गाधीवाद का प्रभाव अत्यन्त क्षीण एव सतही पाया गया किन्तु विचारा के मौसम की दृष्टि से फ्रायडवाद का प्रभाव अधिक मुखर है, विशेष रूप से 'कल्याणी' म।

३ वणन शली की दृष्टि स जनेन्द्र के उपन्यासो को चार भागो मे बाटा गया है (१) सूक्ष्मातिसूक्ष्म वचारिक प्रक्रियाओ का वणन जो कि आगे चल कर (२) दाशनिक विवेचन का रूप ले लेता है। (३) आरम्भिक उपन्यासो मे प्रकृति वणन का जीवन्त रूप मिलता है किन्तु परवर्ती उपन्यासो में वह क्षीण से क्षीणतर पाया गया तथा (४) परवर्ती उपन्यासो मे समसामयिक राजनीति का मुखर प्रभाव अपने आपको अभिव्यक्त करता है।

जनेन्द्र की भाषा शली के दो रूप है (१) प्रकृत रूप, पात्रो की मुहावरेदार शब्दावली स युक्त एव जीवन के उष्ण सस्पश स सप्लावित भाषा-शली। (२) द्वितीयत मानसिक ग्रन्थियो के विश्लेषण विवेचन मे तल्लीन भाषा शली। परख स अनन्तर तक क्रमश धीर मथर प्रवाह अलंकृति एव चटकीलापन, वचारिक-परिपक्वता अर्थात मनाविज्ञान की अनुगूज वचारिक रूक्षता सश्लिष्ट अभिव्यक्ति का अथगभत्व और अन्तत ह्रास के लक्षण मुखरित होते हुए प्रतीत होते हैं। परवर्ती उपन्यासा मे उपन्यासकार आत्मकेन्द्रीयता सस्मरणात्मकता एव पुनरावत्ति के भवर म आकण्ठ निमग्न दिखाई देता है।

४ जनेन्द्र के सभी पात्र लेखक की ही शब्दावली मे बात करते हैं। इनके

संवादों में व्यंग्य विनोद और वक्रोक्तियों के प्राय दर्शन होते हैं। पूर्ववर्ती उपन्यासों में जनेन्द्र के संवादों एवं संभाषणों में जिस स्वाभाविक ऊर्जा के दर्शन होते हैं वह क्रमश क्षीण होती गई है। परवर्ती उपन्यासों में उनके संवाद, जीवन की ऊष्मा से सम्प्लावित प्रतीत नहीं होते। एक दार्शनिक की-सी जड़ता उनमें आती जा रही है फिर भी मन के अन्तर-गहन गह्वरों की प्रवृत्ति को मूर्त करने में उनकी शब्दावली आज भी सक्षम है। इनके संभाषणों में गद्यकाव्यात्मकता सम्मरणात्मकता एवं भावों का प्राञ्जल प्रवाह स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है। कथावस्तु में आए हुए पत्र एवं संभाषण उपन्यासकार के महत् उद्देश्य और उसके जीवन-दर्शन को प्रकट करने में एक उल्लेखनीय भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

५ पौर्वात्य एवं पाश्चात्य परिभाषाओं के सवसम्मत रूप में शैली की रचना विधान इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है व्यक्ति विषय भाषा एवं प्रयोजन के वैशिष्ट्य के अनुसार अभिव्यञ्जना-पद्धति में जो वैशिष्ट्य आ जाता है वही शैली है। जनेन्द्र के उपन्यासों में भावों की त्रिविध स्थिति मिलती है (१) इन्द्रियजन्य भाव (२) प्रज्ञात्मक भाव और (३) गुणात्मक भाव। इन मनोभावों के विश्लेषण एवं संश्लेषण के उपरात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में वैसे तो सभी प्रकार की शैलियाँ एवं मनोवेगों के दर्शन होते हैं किन्तु एसे मनोवेगों की अभिव्यञ्जना में वे अधिक निपुण हैं जो नैराश्यजन्य एवं मरणधर्मा हैं। हर्षावेग या उत्साहजन्य जीवनधर्मा मनोवेगों का प्रेमी युगलों के हास्य विनोद एवं कुतूहल में ही किंचित् आभास मिलता है। अधिकांश पात्र गहरे चिंतन का आवरण ओढ़े हुए हैं। जनेन्द्र के संवादों में दैनन्दिन जीवन का मुहावरा बड़ी कुशलता एवं मार्मिकता से अभिव्यक्त हुआ है। अन्तत हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनेन्द्र की मनोवेगात्मक शैली का एक विशिष्ट रूप है जो हिन्दी उपन्यास-साहित्य में एक पृथक स्थान और विशिष्ट व्यक्तित्व का अधिकारी है।

६ जनेन्द्र के कथ्य में जो धारावाही आई है उनके उपन्यासों में मन को मथ डालने की जो सामर्थ्य है उसका आधार उनके मूलग्राह्य विचार ही हैं। एसा प्रतीत होता है कि उन्होंने युग के विचारों का बड़ी सतर्कता से दोहन किया है। परख से अनन्तर तक क्रमश भावुकता चिन्तन की परिपक्वता मनोविश्लेषणात्मकता मानवीय जीवन की व्यग्रता वैचारिक सघनता सम सामयिक समस्याओं का संस्पर्श अर्थतंत्र एवं राजतंत्र पर चुटीले व्यंग्य—इन सभी रूपों में उनकी वैचारिक गहनता के विभिन्न आयाम प्रस्फुटित होते हैं। ज्यों-ज्यों उनकी औपन्यासिक सृष्टि में विचारों का वात्याचक्र बढ़ता गया है

त्यों-त्यों उनकी सुरुचिपूर्ण सौन्दर्य चेतना उपेक्षित होती गई है। जनेन्द्र के पास दुनिया को देने के लिए सन्देश तो है, पर वे उसे शकरावेष्टित नही कर पा रहे, फलत उनके परवर्ती उपन्यास हलक में एक कटु तिक्त स्वाद छोड जाते हैं। उनकी विचारगत शैली म परम्परागत मुहावरे तो आए ही हैं, किन्तु आवश्यकतानुसार उन्होंने सूक्तियों के रूप में नये मुहावरे भी घडे हैं। प्रेरणा का वाह्यी करण उनके उपन्यासों म औपचारिकता को जन्म देता है। ।

७ मानव की सश्लिष्ट मनोरचना के सन्दभ मे जनेन्द्र की मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति अवचेतन के उन्मोचन म विशेष रूप से सफल हुई है। अवचेतन की अभिव्यक्ति कहीं प्रतीक का रूप लेती है, तो कहीं गहरे दार्शनिक विवेचन म उतर जाती है। प्रारम्भिक उपन्यासो मे श्रुत एव स्वानुभूत आधार पर मनोवैज्ञानिक विवेचन मिलता है किन्तु परवर्ती उपन्यासो मे अधीत मनोविज्ञान का रूप भी प्रस्फुटित हुआ है। इस दिशा मे जनेन्द्र की प्रवर्तनकारी भूमिका उल्लेखनीय है। हिन्दी-उपन्यास की सीधी-सपाट भाषा-शैली एव वर्णनात्मकता को उन्होंने मनोविश्लेषण के उच्चतम शिखरो तक पहुँचा दिया है। जनेन्द्र की भाषा म अराजकता, स्वेच्छाचारिता एव अव्यवस्था तो है पर यह नव निर्माण की आवश्यक शत के रूप म ही है। नवलेखन के शिल्पगत वैशिष्ट्य एव नये सन्दर्भों की अथवत्ता के लिए हिन्दी कथा-साहित्य जनेन्द्र का ऋणी है। भावोत्तेजना के परिणामस्वरूप, पाठक को सृजनात्मक आनन्दानुभूति होती है, इस दिशा मे जनेन्द्र की उपलब्धियाँ विस्मयकारी हैं।

८ परामानसिक स्थिति के सदभ मे जैनेन्द्र ने वैयक्तिक अचेतन एव समष्टिगत अचेतन इन दोनो ही तटो का सफलता के साथ सस्पश किया है और इनकी द्वन्द्वात्मक व्यजना को विस्मयकारी कुशलता के साथ उरेहा है। परामानसिक भावों के विविध आयाम कहीं सकेतात्मक रूप मे तो कहीं सन्ध्या भाषा म प्रस्फुटित हुए हैं। भौतिक स्तर पर उनकी शैली म अधिक चटकीलापन रहा है और आध्यात्मिक स्तर पर वह मद पडता गया है। वे मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरगो के अद्भुत शिल्पी हैं। परामानसिक स्थिति के चित्रण म अनेक स्थलो पर उपन्यासकार की भाषा शैली रहस्यात्मक कुहेलिका के आवरण म लिपटी हुई है। ऐसे स्थलो पर विचारों की गरिष्ठता रही है किन्तु इस गरिष्ठता के नीचे मूलग्राही चेतना का अन्तःप्रवाह पाठक के मन को आन्दोलित करने म पूर्णत समथ है।

९ शब्द-शक्तियों के ४२८ उदाहरणो पर विचार करने के उपरांत हम इस निष्कष पर पहुचे हैं कि एक मूलग्राही दार्शनिक होने के कारण उन्होंने वस्तु-व्यजना का सर्वाधिक उपयोग किया है। मनोविश्लेषण के आधिक्य के

कारण भावव्यजना द्वितीय स्थान की अधिकारिणी बनी है। छायावादी परिवेश के कारण प्रयोजनवती लक्षणा तृतीय स्थान पर अधिष्ठित है। शब्द-ध्वनियाँ और प्रतीक विधान के कारण उनकी अभिव्यक्ति म प्राजलता आई है और उनके प्रतीक अपनी विविधता एव नवीनता म उपमानो की तरह मन्द नही पड़े हैं। शब्द-तूलिका के माध्यम से उपन्यासकार जब चित्र का निर्माण करता है तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड आते हैं। इस प्रकार उनमे प्रतीक एव शब्द-शक्ति का धूप-छाही सम्मिश्रण एक नयी अर्थवत्ता को जन्म देता है।

१० जयवर्धन को छोडकर जनेन्द्र के सभी उपन्यास लघु उपन्यास की परिधि म आते हैं। कण्ठ-छेदी प्रतियोगिता के इस युग म, जब मनुष्य के निकट समयाभाव की शिकायत निरन्तर बढती जा रही है तब लघु उपन्यास की धारा म बाढ का आ जाना स्वभाव ही है। हिन्दी म लघु उपन्यास का उद्गम-स्थल जनेन्द्र की प्रतिभा म ही सन्निहित है। उन्होंने अपने प्रयोगो द्वारा लघु उपन्यास के शिल्प को एक अद्भुत निखार प्रदान किया है। इस सन्दर्भ मे 'त्यागपत्र' को उनकी सर्वोच्च देन कहा जा सकता है। 'जयवर्धन लिखकर जैनेन्द्र ने यह प्रमाणित करना चाहा है कि वे महाकाव्यात्मक बृहद्-कलेवरीय उपन्यास भी लिख सकते हैं, किंतु इस प्रयास म उन्हें वाछित सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि उनकी मूल प्रवृत्ति एव प्रतिभा तो लघु उपन्यास की लाघवता म केन्द्रित है।

११ अन्तत हम यही कहेंगे कि जनेन्द्र के उपन्यासो का सर्वाधिक मुखर तत्त्व है शैली-वशिष्ट्य। उनके व्यक्तित्व का वशिष्ट्य प्रत्येक पक्ति म मुखर है। मनस्तत्त्व की चाशनी म पगे हुए उनके शब्द, उनके वाक्याश एक निजी व्यक्तित्व के अधिकारी हैं। उनके चिंतन और मनोवेगो की स्वाभाविक स्फुरणा नितान्त निजी है। ज्यो-ज्यों रचनाकार की प्रौढ़ता बढ़ती गयी है उसके लेखन पर चिन्तन हावी होता गया है, पर शली का मूलभुत गुण आज भी सुरक्षित है। इस मूलभूत गुण की परिधि म आते हैं—

(१) रचनाकार की स्वाभाविकता
(२) मनस्तत्त्व की चाशनी म पगे हुए वाक्याश
(३) सलापोचित शब्दावली का प्रामुख्य,
(४) मुहावरों एव लोकोक्तियो का समुचित प्रयोग तथा आवश्यकता पड़ने पर नये मुहावरो का निमाण
(५) आत्मा के रस मे भीगी हुई शब्दावली
(६) रचनाकार की निरीहता की अभिव्यक्ति जो प्राय उनके प्रमुख पात्रो के सिर पर जादू की तरह चढ़कर बोलती है, एव

(७) सटीक प्रतीक विधान और उसके माध्यम से दुरूहतम भाव-कुहेलिका की अभिव्यक्ति।

इन सब आधारों पर जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक शैली तात्विक अध्ययन अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ है, और उसने हिन्दी कथा-साहित्य की अभिव्यंजना-शैली को नयी अर्थवत्ता, नये सन्दर्भ एवं जीवन के घात प्रतिघात के बहुविध आयाम प्रदान किए हैं।

कारण भावव्यजना द्वितीय स्थान की अधिकारिणी बनी है। छायावादी परिवेश के कारण प्रयोजनवती लक्षणा तृतीय स्थान पर अधिष्ठित है। शब्द-शक्तियो और प्रतीक विधान के कारण उनकी अभिव्यक्ति म प्राजलता आई है और उनके प्रतीक अपनी विविधता एव नवीनता म उपमानो की तरह मले नही पडे हैं। शब्द-तूलिका के माध्यम से उपन्यासकार जब चित्र का निर्माण करता है, तो प्रतीक उसकी सहायता को दौड आते हैं। इस प्रकार उनम प्रतीक एव शब्द शक्ति का धूप छाही सम्मिश्रण एक नयी अर्थवत्ता को जन्म देता है।

१० जयवधन' को छोडकर जनेन्द्र के सभी उपन्यास लघु उपन्यास की परिधि म आते है। कण्ठ छेदी प्रतियोगिता के इस युग मे, जब मनुष्य के निकट समयाभाव की शिकायत निरन्तर बढती जा रही है तब लघु उपन्यास की धारा म बाढ का आ जाना स्वभाव ही है। हिन्दी म लघु उपन्यास का उद्गम-स्थल जनेन्द्र की प्रतिभा म ही सन्निहित है। उन्होने अपने प्रयोगो द्वारा लघु उपन्यास के शिल्प को एक अद्भुत निखार प्रदान किया है। इस सदभ मे 'त्यागपत्र को उनकी सर्वोच्च देन कहा जा सकता है। जयवधन लिखकर जैनेन्द्र ने यह प्रमाणित करना चाहा है कि वे महाकाव्यात्मक वृहद्-कलवरीय उपन्यास भी लिख सकते हैं, किंतु इस प्रयास म उन्हें वांछित सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि उनकी मूल प्रवृत्ति एव प्रतिभा तो लघु उपन्यास की लाघवता मे केन्द्रित है।

११ अन्तत हम यही कहेगे कि जनेन्द्र के उपन्यासो का सर्वाधिक मुखर तत्त्व है शैली वशिष्टय। उनके व्यक्तित्व का वशिष्टय प्रत्येक पक्ति मे मुखर है। मनस्तत्त्व की चाशनी म पगे हुए उनके शब्द, उनके वाक्याश, एक निजी व्यक्तित्व के अधिकारी हैं। उनके चिंतन और मनोवेगो की स्वाभाविक स्फुरणा नितान्त निजी है। ज्यो-ज्यों रचनाकार की प्रौढ़ता बढ़ती गयी है उसके लेखन पर चिन्तन हावी होता गया है, पर शैली का मूलभूत गुण आज भी सुरक्षित है। इस मूलभूत गुण की परिधि म आते हैं—

(१) रचनाकार की स्वाभाविकता,
(२) मनस्तत्त्व की चाशनी म पगे हुए वाक्याश,
(३) सलापोचित शब्दावली का प्रामुख्य,
(४) मुहावरो एव लोकोक्तियो का समुचित प्रयोग तथा आवश्यकता पडने पर नये मुहावरो का निर्माण ।
(५) आत्मा मे रस मे भीगी हुई शब्दावली,
(६) रचनाकार की निरीहता की अभिव्यक्ति जो प्राय उनके प्रमुख पात्रो के सिर पर जादू की तरह चढकर बोलती है, एव

(५) सटीक प्रतीक विधान और उसके माध्यम से दुरूहतम भाव-कुहेलिका की अभिव्यक्ति।

इन सब आधारों पर जनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक शैली तात्विक अध्ययन अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ है, और उसने हिन्दी कथा-साहित्य की अभिव्यंजना शैली को नयी अर्थवत्ता नये सन्दर्भ एवं जीवन के घात प्रतिघात के बहुविध आयाम प्रदान किए हैं।

●

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

●●●

(क) आधार-ग्रन्थ (उपन्यास)

१ परख, २ सुनीता, ३ तपोभूमि ४ त्यागपत्र ५ कल्याणी, ६ सुखदा ७ विवर्त ८ व्यतीत ९ जयवर्धन १० मुक्तिबोध और ११ अनन्तर।

(ख) उपन्यासेतर ग्रन्थ

कहानी

१ फाँसी २ वातायन ३ एक रात ४ नीलमदेश की राजकन्या, ५ दो चिड़ियाँ, ६ पाजेब ७ ध्रुवयात्रा, ८ जयसंधि, ९ जनेन्द्र की कहानियाँ (नौ भाग)।

प्रश्नोत्तर एवं निबन्ध

१ जनेन्द्र के विचार २ प्रस्तुत प्रश्न ३ जड़ की बात, ४ पूर्वोदय ५ सोच विचार ६ साहित्य का श्रेय और प्रेय, ७ काम और परिवार, ८ मंथन, ९ समय और हम १० इतस्तत ११ परिप्रेक्ष्य और १२ राष्ट्र और राज्य।

अनुवाद

१ मन्दालिनी २ प्रेम में भगवान ३ पाप और प्रकाश, और ४ यामा।

संस्मरण

(१) ये और वे।

आलोचना

१ कहानी अनुभव और शिल्प, २ प्रेमचन्द एक कृती व्यक्तित्व।

(ग) जनेन्द्र पर आलोचना एव शोध साहित्य

(१) जनेन्द्र और उनके उपन्यास रघुनाथसरन मालानी
(२) जनेन्द्र साहित्य और समीक्षा डा० रामरतन भटनागर
(३) जैनेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व स० सत्यप्रकाश मिलिंद
(४) जैनेन्द्र व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक सं० बाकेबिहारी भटनागर
(५) जनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन डा० देवराज उपाध्याय
(६) आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय
(७) कथा के तत्त्व डा० देवराज उपाध्याय
(८) साहित्य और मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय
(९) हिन्दी-उपन्यास शिवनारायण श्रीवास्तव
(१०) हिन्दी-उपन्यास और यथार्थवाद डा० त्रिभुवनसिंह
(११) हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास डा० कमला जौहरी
(१२) हिन्दी उपन्यास डा० सुषमा धवन
(१३) हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन डा० गणेशन
(१४) हिन्दी उपन्यास मे चरित्र चित्रण का विकास डा० रणवीर राग्रा।
(१५) हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास डा० सुरेश सिन्हा
(१६) हिन्दी उपन्यास-साहित्य का उद्भव और विकास डा० लक्ष्मीकान्त सिन्हा
(१७) हिन्दी उपन्यास मे नायिका की परिकल्पना डा० सुरेश सिन्हा
(१८) हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा
(१९) आज का हिन्दी उपन्यास डा० इन्द्रनाथ मदान
(२०) मधुरे साक्षात्कार नेमिचन्द्र जैन
(२१) हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास डा० प्रतापनारायण टण्डन
(२२) हिन्दी उपन्यास-कला डा० प्रतापनारायण टण्डन
(२३) हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास डा० ओम

(२४) हिन्दी उपन्यास-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन डा० लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री
(२५) विवेक के रंग डा० देवीशंकर अवस्थी
(२६) हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा डा० रामदरश मिश्र

(घ) इतिहास ग्रन्थ
(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल
(२) आधुनिक साहित्य नन्ददुलारे वाजपेयी
(३) हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी नन्ददुलारे वाजपेयी
(४) नया साहित्य नया प्रश्न नन्ददुलारे वाजपेयी
(५) हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष शिवदानसिंह चौहान
(६) आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
(७) आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास डा० श्रीकृष्णलाल
(८) आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० भोलानाथ
(९) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य डा० रामगोपालसिंह चौहान
(१०) हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास ना० प्र० सभा, काशी
(११) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

(ङ) उपन्यासालोचन के संदर्भ में अंग्रेजी पुस्तकें
(१) स्टाइल इन द फ्रेंच नावल स्टीफन उल्मा
(२) द टवेंटीएथ सेंचुरी नावल्स जे० डब्ल्यू० बीच
(३) माडर्न फिक्शन जे० मुलर
(४) नावेल एण्ड द पीपल रल्फ फाक्स
(५) हिस्ट्री आफ द इंग्लिश नावल (दस खंड) बेकर
(६) आस्पेक्ट्स आफ द नावेल ई० एम० फोस्टर
(७) स्टाइल एफ० एल० ल्यूकस
(८) लिटरेचर एण्ड साइकालोजी एफ० एल० ल्यूकस
(९) स्ट्रक्चर आफ नावेल एडविन म्यूर
(१०) इंग्लिश नावलिस्ट्स डी वरचोडल द्वारा सम्पादित

(च) मनोविज्ञान की पुस्तकें (हिन्दी अंग्रेजी)
(१) मनोविज्ञान वुडवर्थ और मार्क्विस
(२) दैनिक जीवन और मनोविज्ञान इलाचन्द्र जोशी

(३) असामान्य मनोविज्ञान हंसराज भाटिया
(४) नवीन मनोविज्ञान लालजीराम शुक्ल
(५) मनोविज्ञान और शिक्षा डा० सरयूप्रसाद चौबे
(६) साइकालोजीकल रिफलैक्शन्स सी० जे० जुग
(७) एन इण्ट्रोडक्शन टू जुग ज साइकालाजी फ्रेडा फोडहम
(८) इण्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइको एनेलेसिस फ्रायड
(९) आउट लाइन्स आफ एब्नामल साइकालाजी डब्ल्यू० मेग्डूगल
(१०) साइकॉपैथालाजी आफ् एवरी-डे लाइफ एस० फ्रायड
(११) साइकालोजी आफ वूमन हेलेन ड्यूटस
(१२) अवर इनर कान्फ्लिक्ट के० हर्नी
(१३) मनोविश्लेषण और मानसिक प्रक्रियाएँ डा० पद्मा अग्रवाल

(छ) विविध

(१) आधुनिक समीक्षा डा० एन० के० देवराज
(२) साहित्य चिन्ता डा० एन० के० देवराज
(३) साहित्यालोचन डा० श्यामसुन्दर दास
(४) काव्य के रूप डा० गुलाबराय
(५) साहित्य विज्ञान डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
(६) साहित्य की समस्याए शिवदानसिंह चौहान
(७) आस्था के चरण डा० नगेन्द्र
(८) काव्यशास्त्र की रूपरेखा डा० रामदत्त भारद्वाज
(९) काव्य-दर्पण रामदहिन मिश्र
(१०) शोध प्रक्रिया डा० सरनामसिंह शर्मा
(११) अनुसधान की प्रक्रिया स० डा० सावित्री सिन्हा एव डा० विजयेन्द्र स्नातक
(१२) अनुसधान का स्वरूप डा० सावित्री सिन्हा
(१३) वचारिकी शचीरानी गुर्टु
(१४) डिक्शनरी आफ लिटररी टर्म्स शिपले
(१५) हिन्दी साहित्य-कोश स० डा० धीरेन्द्र वर्मा
(१६) कामायनी पल्लव अनामिका और ग्राम्या प्रसाद पन्त और निराला

(ज) पत्र-पत्रिकाए

(१) आलोचना का इतिहास अक, शेषाक उपन्यास विशेषाक, स्वात-

न्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक (चार खण्ड), (२) साहित्य-संदेश का उपन्यास अंक और आधुनिक उपन्यास अंक, (३) माध्यम, (४) हिन्दी अनुशीलन (५) कल्पना (६) ज्ञानोदय, (७) मधुमती (८) वातायन (९) प्रतीक (१०) विकल्प, (११) समालोचक, (१२) साप्ताहिक हिन्दुस्तान एवं (१३) धर्मयुग।

वार्षिक पत्रिकाएं

(१) हिन्दी वार्षिकी, (२) गद्यदीप, (३) साहित्य-संदेश का प्रगति अंक एवं (४) अनुशीलन एवं अन्वेषण, (५) साहित्य-द्रष्टा।